कामाख्यातन्त्रम्

'ज्ञानवती'-हिन्दीभाष्येण विभूषितम्

व्याख्याकारः सम्पादकश्च
आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी

ग्रन्थ-परिचय

आगमशास्त्र एवं तान्त्रिक-साधना अनादि है। आध्यात्मिक उत्कर्ष एवं पूर्णत्व-लाभ के लिये तान्त्रिक वाङ्मय अत्यन्त सहायक माना गया है। 'कामाख्या' एक ऊर्जस्विक्त सिद्धपीठ है। इसकी अधिष्ठात्री कामाख्या देवी की कृपा-प्राप्ति के लिये उपयोगी समस्त विषयवस्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में साङ्गोपाङ्ग संकलित है। कौल-परम्परा में दीक्षित एवं कामाख्या देवी की सिद्धि के लिये उत्सुक साधकों के लिये यह ग्रन्थ परम उपादेय है।

The

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHMALA

KĀMĀKHYĀ-TANTRAM

With

Jñānavatī Hindi Commentary

Commented upon and Edited

By

Prof. RADHESHYAM CHATURVEDI

Vyākaraṇācārya, M.A., Ph.D., (Gold medalist)

Department of Sanskrit, Faculty of Arts,

Banaras Hindu University

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

VARANASI

ॐ

धारित्री कीलालं शुचिरपि समीरोऽपि गगनं
त्वमेका कल्याणी गिरिशरमणी कालि सकलम् ।
स्तुतिः का ते मातर्निजकरुणया मामगतिकं
प्रसन्ना त्वं भूया भवमनु न भूयान्मम जनुः ॥

—कर्पूरस्तव

चञ्चन्मनःकुञ्जरबद्धशृङ्खलां
संवित्समुल्लासविसारिणीं कलाम् ।
चिन्ताचिताशान्तिनदीं सरज्जलां
कौलाः पिबन्तीह सुधां समुज्ज्वलाम् ॥

—कौलविलास
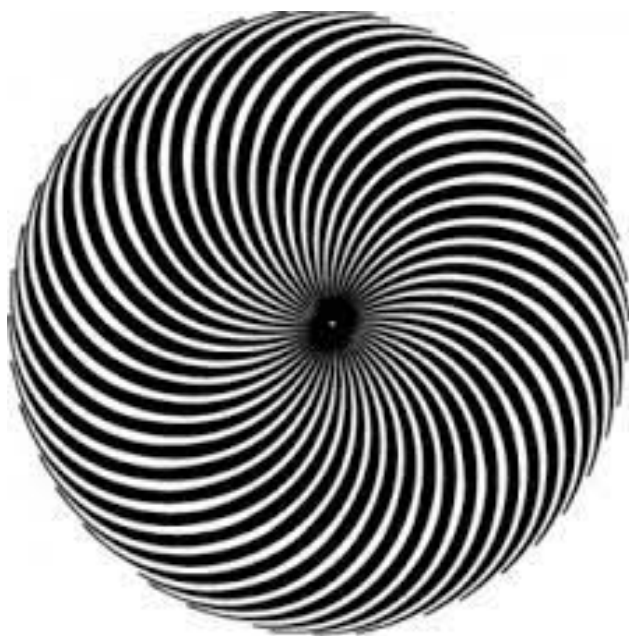
ध्यान मन्त्र व केंद्र
त्रीं

पुरोवाक्

विश्व में प्राणीमात्र आनन्द की गवेषणा में नित्य निरत है । परम सत्ता निज स्वातन्त्र्यवश अपने असीम चित् आनन्द स्वरूप को विस्मृत कर देती है । पश्चात् पुनः उस स्वरूप को प्राप्त करने के उद्देश्य से अनेक मार्गों का प्रवर्त्तन करती है। ये प्रवर्त्तित मार्ग लोक में सम्प्रदाय के नाम से जाने जाते हैं । प्रत्येक सम्प्रदाय किसी न किसी धर्मद्रष्टा के द्वारा प्रवर्त्तित होता है । पुराकल्प में कहा गया है—

'यां सूक्ष्मां नित्यामतीन्द्रियां वाचं ऋषयः साक्षात्कृतधर्माणः मन्त्रदृशः पश्यन्ति तां असाक्षात्कृतधर्मभ्यः परेभ्यः प्रतिवेदयिष्यमाणा बिल्मं समामनन्ति, स्वप्ने वृत्तमिव दृष्टश्रुतानुभूतमाचिख्यासन्ते ।'

जिन्होंने धर्म का साक्षात्कार कर लिया है वे मन्त्रद्रष्टा ऋषिगण नित्य इन्द्रियातीत सूक्ष्मावाक् का दर्शन करते हैं । जिन्हें धर्म का साक्षात्कार नहीं हुआ है ऐसे लोगों को सूक्ष्मावाक् का दर्शन कराने के लिये वे बिल्म का समाम्नान अर्थात् उपदेश करते हैं । बिल्म का अर्थ है—निगमागम और उनके अङ्ग ।

शाक्तमतानुसार यह सूक्ष्मावाक् परमशिव की पराशक्ति है । यही शास्त्र के रूप में प्रकट होती है । तत्तत् सम्प्रदाय के लोग इस शास्त्र का अनुसरण कर अपने को कृतार्थ करते हैं ।

तान्त्रिक वाङ्मय में छह सम्प्रदायों का स्वीकार किया गया है । इन्हें आम्नाय कहते हैं । ये हैं—पूर्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय, दक्षिणाम्नाय, ऊर्ध्वाम्नाय तथा अधराम्नाय । कोई-कोई विद्वान् अधराम्नाय को अस्वीकृत कर अनुत्तराम्नाय की चर्चा करते हैं । तथ्य यह है कि अनुत्तराम्नाय ऊर्ध्वाम्नाय दोनों एक हैं । परशुरामकल्पसूत्र के अनुसार—'संसार लीला के अनुरञ्जक भगवान् शङ्कर ने दर्शन, स्मृति शास्त्र एवं अट्ठारह विद्याओं की रचना करने के अनन्तर संविन्मयी भगवती आद्याशक्ति के प्रत्यक्ष के लिये अपने सद्योजात वामदेव अघोर तत्पुरुष और ईशान नामक पाँच मुखों से पञ्चाम्नाय को प्रकट किया ।' उपर्युक्त पाँचों सम्प्रदायों का उद्देश्य मनुष्य के भीतर निहित विद्युत् पुञ्ज के समान उद्दीप्त जीवनशक्ति की उपासना कर उसका साक्षात्कार करना है । इन सम्प्रदायों में

कौलसम्प्रदाय को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है । तन्त्रालोक का वचन है—

'नभ:स्थिता यथा तारा न भ्राजन्ते रवौ स्थिते ।
एवं सिद्धान्ततन्त्राणि न विभान्ति कुलागमे ॥
तस्मात् कुलादृते नान्यत् संसारोद्धरणं प्रति ।'

जिस प्रकार आकाश में सूर्य के विद्यमान रहने पर तारायें प्रकाशित नहीं होतीं उसी प्रकार कौल सम्प्रदाय के रहने पर सिद्धान्त तन्त्र महत्त्वहीन हो जाते हैं। इस कारण संसार से उद्धार के लिये कौलमार्ग से भिन्न अन्य मार्ग समीचीन नहीं है ।

जीव के अन्दर निहित ऊर्जस्वल शक्ति के साक्षात्कार के लिये तमस् रजस् एवं सत्त्व गुण के आधार पर साधकों के तीन प्रकार के भावों की चर्चा शास्त्रों में आती हैं । वे हैं—पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव । इन तीनों के अन्दर तीन-तीन अनुभाव हैं—

पशुभाव — १. वेदाचार, २. वैष्णवाचार, ३. शैवाचार
वीरभाव — १. दक्षिणाचार, २. सिद्धान्ताचार, ३. वामाचार
दिव्यभाव — १. अघोराचार, २. योगाचार, ३. कौलाचार

कौलाचार को ज्ञानाचार, संन्यासाचार, अवधूताचार निराचार भी कहते हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि कौलाचार सर्वश्रेष्ठ मार्ग है । इस तथ्य को निम्नलिखित श्लोक के द्वारा व्यक्त किया गया है—

'वेदाच्छैवं ततो वामं ततो दक्षं ततस्त्रिकम् ।
त्रिकात् परं कुलं प्रोक्तं कौलात् परतरं न हि ॥'

कामाख्यातन्त्र कौलसाधना का प्रतिष्ठापक ग्रन्थ है । बारह पटलों में निबद्ध इस ग्रन्थ में भगवती कामाख्या का स्वरूप, मन्त्रोद्धार, ध्यान, पूजा, मन्त्रवर्णन, साधनापद्धति, गुरुतत्त्व, कामकलासाधनपद्धति, अनुष्ठानविधि, अभिषेक, मुक्तितत्त्व, कामाख्या देवी का स्वरूप, कामाख्या सहित अन्य सिद्ध पीठों का वर्णन, मन्त्रों की कुल्लुकाओं का वर्णन, कालिकापुराणान्तर्गत कामाख्यावर्णन आदि का समावेश है ।

इस ग्रन्थ के सानुवाद सम्पादन एवं प्रकाशन के लिये मैं अपनी इष्टदेवता पराम्बा भगवती गायत्री का साष्टाङ्गप्रणामपूर्वक आधमर्ण्य प्रकट करता हूँ । उनकी अमेय कृपाकिरण से मेरा मन इस ग्रन्थ के सानुवाद सम्पादन में प्रवृत्त हुआ । अपने दीक्षागुरु श्री१६ शिव चैतन्यजी वर्णी का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने दीक्षा के साथ मुझे गायत्री-साधना का विशाल साहित्य प्रदान किया । इस ग्रन्थ

की भूमिका के लेखन में जिन विद्वज्जनों अथवा ग्रन्थों का साहाय्य मुझे उपलब्ध हुआ उनके प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ । सतत् प्रेरणा एवं सक्रिय सहयोग के लिये मैं अपने मित्र डॉ० सुधाकर मालवीय के प्रति कृतज्ञ हूँ । इस ग्रन्थ के अक्षर संयोजन के लिये परम प्रिय पं० रामरञ्जन मालवीय को मैं हृदय से आशीर्वाद देता हूँ । इस महनीय ग्रन्थ के मुद्रण एवं प्रकाशन में निष्ठापूर्वक योगदान करने वाले चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन के श्रेष्ठी श्रीबल्लभदास गुप्त साधुवाद के पात्र हैं । ग्रन्थ के अनुवाद एवं सम्पादन तथा भूमिका लेखन में यदि कहीं स्खलन है तो इसके लिये मैं सुधी विद्वद्वृन्द से क्षमाप्रार्थी हूँ । महाकवि कालिदास के शब्दों में—

'आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।'

के अनुसार यदि इस ग्रन्थ से किसी को किञ्चित् लाभ होता है तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूँगा ।

विद्वद्वशंवद

राधेश्याम चतुर्वेदी

शारदीय नवरात्र

सं० २०६०

संकेत सूची

का.तं.	कामाख्यातन्त्र
कु.तं.	कुलार्णवतन्त्र
कौ.ज्ञा.नि.	कौलज्ञाननिर्णय
कौ.वि.उ.	कौलविलास उत्तरार्ध
कौ.वि.पू.	कौलविलास पूर्वार्द्ध
तं.आ.वि.	तन्त्रालोक विवेक
तं.वि.	तन्त्रविज्ञान
पा.म.भा.प.आ.	पातञ्जलमहाभाष्य पश्पशाह्निक
पा.यो.सू.भा.	पातञ्जल योगसूत्र भाष्य
पा.सू.	पाणिनीसूत्र
ब्र.वि.उ.	ब्रह्मविन्दूपनिषत्
भ.गी.	भगवद्गीता
मी.सू.	मीमांसासूत्र
यो.चू.उ.	योगचूड़ामणि उपनिषत्
यो.शि.उ.	योगशिखोपनिषत्
श.ब्रा.	शतपथब्राह्मण
शि.दृ.	शिवदृष्टि
सौ.ल.	सौन्दर्यलहरी

भूमिका

श्रुतिस्तु द्विविधा प्रोक्ता तान्त्रिकी वैदिकीति च ।

महर्षि हारीत के इस वचन के आधार पर तन्त्र को भी श्रुति कहा जाता है । यह मान्यता असमीचीन नहीं है । जिस प्रकार वेदों को नारायण का निःश्वास कहा गया है (यस्य निःश्वसितं वेदाः) और वे अपौरुषेय तथा अनादि हैं उसी प्रकार तन्त्र भी शिवमुखोक्त शास्त्र हैं जो ऋषियों की गुरुशिष्य परम्परा में सतत प्रवहमान होते रहे हैं—

शैवादीनि रहस्यानि पूर्वमासन् मनीषिणाम् ।
ऋषीणां वक्त्रकुहरे...................... ॥ (शि० दृ० ७)

तन्त्र भी अपौरुषेय हैं और कल्पकल्पान्तर में शिव के द्वारा लोक में प्रवर्त्तित किये जाते हैं । यह मान्यता उन आस्तिक जनों की है जिनकी प्राच्य परम्परा में पूर्ण आस्था है । किन्तु एक वर्ग ऐसा भी है जो तत्काल उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर किसी वस्तु, शास्त्र या पारम्परिक व्यवस्था का निर्णय करता है । यह आधुनिक एवं तथाकथित विद्वानों का समूह है जो आधुनिक वैज्ञानिकों की भाँति प्रत्येक वस्तु का निश्चय प्रत्यक्ष या अनुमान के आधार पर करता है । यहाँ दोनों परम्पराओं को दृष्टि में रख कर तन्त्र के विषय में कुछ बिन्दुओं पर प्रकाश डाला जा रहा है ।

तन्त्र का स्वरूप—

वेद के छह अङ्ग हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष । वाराहीतन्त्र में तन्त्रशास्त्र को कल्प के अन्तर्गत माना गया है—

कल्पश्चतुर्विधः प्रोक्त आगमो डामरस्तथा ।
यामलश्च तथा तन्त्रं तेषां भेदाः पृथक् पृथक् ॥

जिसमें सृष्टि-प्रलय, मन्त्रनिर्णय, यन्त्रनिर्णय, देवतासंस्थान, तीर्थवर्णन, आश्रमधर्म, वर्णव्यवस्था, भूत आदि के संस्थान, ज्योतिष, पुराणाख्यान, शौचाशौचनिर्णय, दानधर्म, युगधर्म, लोकव्यवहार, आध्यात्मिक विषयों का विवेचन

हो उसे तन्त्र कहते हैं । निष्कर्ष यह है कि समस्त भौतिक विस्तार और समस्त आध्यात्मिक अनन्त तन्त्र की परिधि में आता है ।

तन्त्र का एक नाम आगम भी है । आगम शिवमुखोक्त शास्त्र हैं—

आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजाश्रुतौ ।
मतं च वासुदेवेन (कार्त्तिकेयेन)तस्मादागम उच्यते ॥

तन्त्र शिवमुखोक्त शास्त्र है जो पार्वती को सम्बोधित कर कहा गया है । तन्त्रशास्त्र के अवतरण में वासुदेव कार्त्तिक गरुड़ आदि का भी योगदान है । तन्त्र शब्द विस्तार का बोधक है । परमसत्ता अपनी इच्छा से अपनी ही भित्ति पर अपने अनन्त स्वरूप को संकुचित कर जड़ चेतन के रूप में अभिव्यक्त अथवा आभासित कर नाना प्रकार से क्रीड़ा करती है बाद में अनेक उपायों के द्वारा अपने इस सङ्कोच को हटा कर स्वयं को पूर्ण रूप में विस्तृततया प्रतिष्ठित करती है । इस प्रकार परमसत्ता का अपने पूर्णरूप को संकुचित करने और पुनः कुछ काल बाद उसे अपने पूर्ण रूप में प्रतिष्ठित करने की विधि का निर्वचन करने वाला शास्त्र तन्त्र कहलाता है । तन्त्र आत्मसाक्षात्कार कराने की एक पद्धति है; पूर्ण अहंभाव की ओर ले जाने का राजपथ है । परमशिव में समेवता चित् शक्ति दो प्रकार की है—पर और अपर । पर ज्ञान बोधात्मक है और अपर ज्ञान वागात्मक । यह वागात्मक ज्ञान शास्त्र रूप में प्रतिष्ठित है । विश्वसृष्टि के उन्मेषकाल में भगवान् परमशिव पर एवं अपर मुक्ति के सम्पादन के लिये ज्ञान को प्रकाशित करते हैं । यही ज्ञान वागात्मक होने पर जगत् में तन्त्र नाम से व्यवहृत होता है ।

तन्त्र के दो पक्ष हैं—१. लोक पक्ष या व्यवहार पक्ष, २. लोकोत्तर या अध्यात्म पक्ष । प्रकृति और प्रकृति से परे उस अवाच्य 'सत्' को विश्वविस्तार के माध्यम से समझना और फिर प्रकृति के रहस्यों पर पड़े आवरण को हटाते हुए उस प्रकृति को व्यक्ति के लिये उपयोगी बनाना तन्त्र का लोकपक्ष है और विस्तार का ज्ञान कर उसके मूलरूप को जानना इसका अध्यात्म पक्ष है । यही आत्मसाक्षात्कार या स्वरूपावस्थान है । इस अवस्था को प्राप्त मनुष्य गीता में कथित विशेषताओं वाला—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्ठाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥

(भ०गी० १४।२४-२५)

हो जाता है । यही स्वात्मस्थिति अथवा शिवत्वभाव की प्राप्ति तन्त्रसाधन का एकमात्र उद्देश्य है । वेद (= उपनिषद्) निवृत्तिपरक है अत एव केवल मुक्ति प्रदान करता है । धर्म अर्थ और काम उसके आनुषङ्गिक फल हैं किन्तु मुक्ति उसका चरम लक्ष्य है । चूँकि मुक्ति सामूहिक नहीं होती इसलिये वेद को व्यक्तिपरक माना जाता है । किन्तु तन्त्र प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों का मार्ग है । प्रवृत्ति के द्वारा वह व्यक्ति और समाज दोनों का हित करता है । प्रवृत्तिमार्ग से चलकर निवृत्तिमार्ग को अपनाते हुए सम्पूर्ण विश्व में एकत्व का दर्शन और उस रूप में अपना तादात्म्य स्थापित करना तन्त्र का चरम प्रतिपाद्य है । तन्त्र में सामूहिक मुक्ति की भी अवधारणा है । म.म. पं. गोपीनाथ कविराज और उनके गुरुदेव परमहंस स्वामी विशुद्धानन्द का यह निश्चित मत है कि एक समय ऐसा आयेगा जब अखण्ड महायोग की स्थिति होगी । अखण्ड महायोग का तात्पर्य है अनन्त प्रकार के अयुक्त और विक्षिप्त भावों का एक सूत्र में संयोजन और तादात्म्य स्वरूप में प्रतिष्ठा । शिव के साथ शक्ति का, आत्मा के साथ परमात्मा का, एक आत्मा के साथ दूसरी आत्मा का, महाशक्ति के साथ आत्मा का योग, लोक लोकान्तर का परस्पर योग, लोकों के साथ लोकातीत का योग इत्यादि सबके सब अखण्ड महायोग के अन्तर्गत हैं । इस अखण्डसत्तात्मक महायोग के निष्पन्न होने पर कुछ शेष नहीं बचता । सब प्रकार के अभावों का सर्वदा के लिये विनाश हो जाता है । यहाँ त्रिकाल नहीं, परिणाम नहीं, एक मात्र नित्य वर्त्तमान अखण्ड सत्ता है । इसकी प्राप्ति के लिये मनुष्य का श्रेष्ठ प्रयत्न तो आवश्यक है ही महाशक्ति की महाकरुणा रूप परम अनुग्रह अत्यन्त आवश्यक है । परमेश्वर की महा करुणा के बिना अखण्ड महायोग केवल कल्पना मात्र है ।

तन्त्र की विधायें—

कामिक आगम के अनुसार भगवान् सदाशिव के पाँच मुखों से पाँच प्रकार की तान्त्रिक धारा का उद्भव हुआ । वे हैं—पूर्वाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, पश्चिमाम्नाय (= कौलमार्ग) उत्तराम्नाय तथा ऊर्ध्वाम्नाय । (सदाशिव के अधोभाग से अधः आम्नाय या अधः स्रोत की भी चर्चा आती है । इस प्रकार तन्त्रशास्त्र षट्स्रोतस् शास्त्र कहा जाता है) इनमें से एक-एक के भी पाँच-पाँच प्रकार होने से तन्त्र की पचीस धाराओं का विवरण मिलता है । मृगेन्द्रतन्त्र ६६ शिवागमों की चर्चा करता है । १० शिवागमों तथा १८ रुद्रागमों के क्रमशः तीन-तीन और दो-दो प्रकार होने से (१०×३ = ३०) + (१८×२ = ३६) इस प्रकार इनकी संख्या ६६ होती है । निःश्वास संहिता में आगमों की संख्या पाँच प्रकार की बतलाई गयी है और इन्हें सूत्र नाम दिया गया है—(१) लकुलीश धर्मसूत्र (२) मूलसूत्र (३) उत्तरसूत्र (४) नयसूत्र और (५) गुह्यसूत्र । इनमें से उत्तर सूत्र में १८ सूत्र

(= अध्याय) हैं । इसके अतिरिक्त ६४ भैरवागमों की भी चर्चा आती है । इनको आठ अष्टकों में बाँटा गया है । ये है—(१) यामलाष्टक (२) भैरवाष्टक (३) मत्ताष्टक (४) मङ्गलाष्टक (५) चक्राष्टक (६) बहुरूपाष्टक (७) वागीशाष्टक और (८) शिखाष्टक । इनके अतिरिक्त ६४ शाक्त तन्त्रों का भी वर्णन मिलता है ।[१]

इनके नाम और विषय का विशेष विवरण तन्त्रालोक (चौखम्बा प्रकाशन) की भूमिका में देखा जा सकता है । उपर्युक्त द्विविध ६४ तन्त्रों के अतिरिक्त एक अन्य ६४ तन्त्रग्रन्थों की सूचना मिलती है । शुभागमपञ्चक में वशिष्ठ संहिता आदि पाँच संहिताओं की गणना की जाती है । इसके अतिरिक्त काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, बगला, मातङ्गी, कमला, भैरवी, छिन्नमस्ता और धूमावती नामक दश महाविद्याओं से सम्बद्ध २०० से अधिक ग्रन्थों का वर्णन मिलता है ।

भगवान् सदाशिव के ऊर्ध्वमुख से निस्सृत तन्त्र का उद्देश्य जीव को बन्धन से मुक्त कराना है । अतः इसका नाम मोक्ष तन्त्र है । पूर्वमुख से निःसृत धारा प्राणियों की विष से रक्षा के उपायों का वर्णन करती है अतः इसका नाम गारुड़तन्त्र है । दक्षिणमुख से निकले प्रवाह को भैरवतन्त्र कहा जाता है क्योंकि इसका विषय शत्रुओं का दमन है । पश्चिममुख से निकले शास्त्र को भूततन्त्र कहते हैं । यह दुष्ट आत्माओं अर्थात् भूत-प्रेत वेताल पिशाच राक्षस डाकिनी आदि को दूर भगाने की प्रक्रिया बतलाता है । उत्तरमुख से निकले हुए शब्दसमूह को सम्मोहनतन्त्र कहते हैं क्योंकि यह सबको सम्मोहित करने के उपायों का वर्णन करता है । ऊपर जितने तन्त्रों की चर्चा की गयी है सबके सब इन्हीं पाँच आम्नायों में से किसी न किसी के विस्तार हैं ।

वैदिक एवं तान्त्रिक सम्प्रदाय में आम्नाय शब्द बहुत प्रचलित है अतः यहाँ उसके स्वरूप का स्पष्ट विवेचन अप्रासङ्गिक नहीं होगा । आम्नाय शब्द 'म्ना' अभ्यासे धातु से 'घञ्' प्रत्यय जोड़कर बना है । आम्ना + घञ् होने के बाद आतो युक् चिण्कृतोः (पा.सू. ७।३।३३) से युक् होने से आम्नाय शब्द बनता है, आम्नायते = अभ्यस्यते इति आम्नायः । इस प्रकार आम्नाय शब्द का अर्थ है—वेद । 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' (पा.म.भा.प.आ.) वचन वेद के नित्य अभ्यास का निर्देश करते हैं । 'आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्' (मी.सू. १।२।१) वचन में भी आम्नाय शब्द का अर्थ वेद ही है किन्तु हैमकोश में आम्नाय शब्द अनेकार्थक

---

१. चतुःषष्ट्या तन्त्रैः सकलमतिसन्धाय भुवनं
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रः पशुपतिः ।
पुनस्त्वन्निर्बाधादखिलपुरुषार्थैकघटना
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम् ॥ (सौ.ल. ३१)

माना गया है—'आम्नायः कुल आगमे उपदेशे च ।' तन्त्र शास्त्र में आम्नाय का अर्थ है—मार्ग । शारदीनाममाला में कहा गया—'आम्नायः संम्प्रदायश्च गुरुक्रम-परम्परा ।' इस प्रकार आम्नाय शब्द का अर्थ हुआ गुरु के द्वारा सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिये उपदिष्ट मार्ग ।

ऊपर जिन छह आम्नायों की चर्चा की गयी उनमें दक्षिणाम्नाय की एक शाखा को छोड़कर शेष सभी आम्नाय वाममार्ग से ही प्रचलित थे । इसका कारण यह था कि वाम मार्ग विपरीत मार्ग नहीं किन्तु सुन्दर मार्ग है । इसीलिए मेरुतन्त्र में स्थान-स्थान पर वाममार्ग की चर्चा की गयी है—

पन्थास्तु दक्षिणः श्रेष्ठो वामःश्रेष्ठतरो मतः ।
यस्तु वामं विजानाति स एव परमो गुरुः ॥

मेरुतन्त्र में भगवान् शिव का वचन है—

'अहं जानामि सम्पूर्णं पादोनं सनकादयः ।
अर्धं चापि वशिष्ठाद्याः शक्राद्याः पादसम्मितम् ।
जानन्ति नाथाः षष्ठमंशं कोट्यंशमितरे जनाः ॥

(मैं वाममार्ग को पूर्णरूपेण जानता हूँ । सनक आदि तीन चौथाई जानते हैं । वशिष्ठ आदि आधा तथा इन्द्र आदि एक चौथाई जानते हैं । नाथपन्थी लोग षष्ठ अंश तथा अन्य लोग करोड़वाँ अंश जानते हैं ।)

अहिरावण के पास गमन के समय हनुमान जी ने पञ्चमुखी रूप धारण किया था । उन मुखों में-से एक मुख सिंह का था । इससे उनके वाम मार्ग का अनुयायी होने की पुष्टि होती है । हनुमान के आराध्य देव राम भी वाममार्गी थे, इसका प्रमाण वाल्मीकि रामायण आदि में मिलता है—

क्षेत्रपालो हनुमांश्च दक्षो गरुड़ एव च ।
प्रह्लादः शुकश्चैव रामो रावण एव च ॥
नारदश्च महावीराः कथिता कुलसाधकाः ।
महाविद्याप्रसादेन स्वस्वकर्मसमन्विताः ॥

क्षेत्रपाल, हनुमान, दक्ष, गरुड, प्रह्लाद, शुकदेव, रामचन्द्र, रावण, नारद—ये सब महावीर कौलसाधक थे । महाविद्या की कृपा से ये अपने-अपने कर्म में लगे हुए थे । तथा—

'श्रीकृष्णो वाममार्गं तु फाल्गुनायोपदिष्टवान् ।'

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को वाममार्ग का उपदेश दिया । श्रीकृष्ण इस मार्ग के

साधक थे । मेरुतन्त्र में वे स्वयं कहते हैं—

'बहवो वृष्णिकाद्याश्च वाममार्गेण मोचिताः ।'

(वृष्णि = यादव, आदि अनेक लोग वाममार्ग के अनुपालन के द्वारा मुक्त कराये गये ।)

वाममार्ग का ही उद्भवस्थान होने के कारण शिव को वामदेव कहा गया है और इसीलिये वे महादेव भी कहे जाते हैं । वैष्णव मार्ग के उपदेशक नारदपाञ्चरात्र आदि आगमों में भी वैष्णव के लक्षण में भस्मत्रिपुण्ड्रधारी कपालकरपात्री, व्यालहारी, मुण्डमाली त्रिशूलधारी को परमवैष्णव कहा गया है । गंभीर विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वाममार्ग अनादि है । यही सनातन मार्ग है । यह दुःख का विषय है बौद्धों एवं जैन धर्मावलम्बियों के प्रभाव में आकर यह सुन्दर मार्ग दुष्प्रचार के कारण सुन्दर मार्ग की जगह विपरीत मार्ग समझा जाने लगा । आज भी हम जोंक की तरह दुराग्रही इन तथाकथित धार्मिकों के चंगुल से अपने को मुक्त नहीं कर पा रहे हैं, अस्तु ।

वाममार्ग या कौलमार्ग का स्वरूप—

वेदादिभ्यः परं शैवं शैवाद् वामं च दक्षिणम् ।
दक्षिणाच्च परं कौलं कौलात् परतरं नहि ॥ (तं.आ.वि. १।१८)

(वेद की अपेक्षा शैवसिद्धान्त उसकी अपेक्षा वामकेश्वर तन्त्र, उसकी अपेक्षा दक्षिणाम्नाय उससे बढ़कर कुलदर्शन श्रेष्ठ है और कौल से बढ़कर कोई भी मार्ग या ज्ञान श्रेष्ठ नहीं है ।)

नभःस्थिताः यथा तारा न भ्राजन्ते रवौ स्थिते ।
एवं सिद्धान्ततन्त्राणि न विभान्ति कुलागमे ।
तस्मात् कुलादृते नान्यत् संसारोद्धरणं प्रति ॥ (तं.आ.वि. १।६)

(जिस प्रकार सूर्य के रहने पर आकाश में स्थित तारागण प्रकाशमान नहीं होते उसी प्रकार कौलतन्त्र के रहते हुए सिद्धान्त तन्त्र प्रभावहीन है । इस कारण कौलमार्ग को छोड़कर संसार से उद्धार के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है ।)

प्रवेशमात्राद्द्वयबोधदातुः प्रसह्य चेतःस्थिरताविधातुः ।
विकास मौलात् किल मार्ग चौलात्
कौलात् परः कोऽपि न मुक्तयेऽध्वा । (कौ.वि.पू.)

(प्रवेश मात्र से ही अद्वैत ज्ञान प्रदान करने वाले, चित्त को हठात् स्थिरता प्रदान करने वाले, विकास के मौलिस्वरूप तथा सभी मार्गों के शिखास्वरूप कौल

से बढ़कर मुक्ति के लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है ।)

इत्यादि वचन कौलमार्ग की सर्वश्रेष्ठता के प्रमाण हैं ।

कुल शब्द के अनेक अर्थ—

शक्तिः शिवः कुण्डलिनी वपुश्च
आचार आधार चतुर्दलञ्च ।
कुमारिकाम्नायसजातिवर्गाः
कान्तासहस्रच्छदगोत्रमार्गाः ॥
कुलं समुक्तं तदनुक्रमेण
सेवन्त एतानि यजन्ति यत्र ।
सम्मानयन्तोऽनुसरन्ति तेऽमी
भवन्ति कौलाः कुलसाधकाश्च ॥
शरीरं कुलमित्युक्तं तत्सम्बन्धात् कुलालयः ।
कुलकुण्डं कुलागारो भगः प्रोच्येत कोविदैः ॥ (कौ.वि उ. ३-५)

शक्ति, शिव, कुण्डलिनी, शरीर, योनि, कामिनी, उत्तम आचार (= व्यवहार), मूलाधारचक्र, उसमें स्थित चतुर्दल कमल, कुमारी, एक प्राचीन सम्प्रदाय, मस्तक में स्थित सहस्रदल कमल या सहस्रार, गोत्र और मार्ग को कुल कहा गया है । इनका जो सेवन करते हैं या इनका आदर करते हुए अनुसरण करते हैं वे सब कौल तथा कुलसाधक कहे जाते हैं । 'कौल' शब्द का एक और अर्थ है—कूल = संसार सागर के उस पार का किनारा । उसको जो प्राप्त करता है उसे भी कौल कहते हैं ।

एक अन्य व्याख्या के अनुसार 'कु' शब्द का अर्थ है—भोग और 'ल' का अर्थ है—लय अर्थात् प्रकृति । भोग या भोगसाधनों के द्वारा प्रकृति की लयावस्था अर्थात् अव्यक्तावस्था की प्राप्ति कुल है । इसको प्राप्त करने वाले कौल कहे जाते हैं । कौल शब्द एक और अर्थ में प्रयुक्त होता है—'कु' अर्थात् पृथिवी । यह जल आदि पाँचो तत्त्वों का उपलक्षण है । पञ्चमकार इनके संकेतक हैं । जैसे—(१) मुद्रा—इसका अर्थ होता है भुना या तेल में तला हुआ अन्न, जैसे बड़ा पकौड़ा नमकीन आदि । यह अन्न पृथिवी तत्त्व है । (२) मत्स्य—यह जल में उत्पन्न होता है अतः जलतत्त्व है । (३) मद्य—यह अग्नि तत्त्व है क्योंकि इसमें-से अग्नि पैदा होती है । (४) मांस—वायु तत्त्व का प्रतीक है क्योंकि शरीर वायु के कारण ही जीवित रहता है । (५) मैथुन—यह आकाश तत्त्व का बोधक है क्योंकि जैसे आकाश सबका लय स्थान है उसी प्रकार मैथुन भी अपनी चेतना

का लय स्थान है । इस प्रकार 'कु' शब्द पञ्चमहाभूतों का प्रतीक होते हुए पञ्चमकार का संकेतक है । इनका उपयोग कर इनके द्वारा 'ल' अर्थात् लय को प्राप्त हो जाना अर्थात् अपनी सत्ता को परमसत्ता में, मिला देना ही कुल कहलाता है । कुल को करने वाले कौल कहे जाते हैं ।

कौलपरम्परा—

'श्रुतिपरम्परा अनादि है' यह तथ्य सर्वसम्मत और प्रमाणसिद्ध है । यह भी सुनिश्चित है कि आगम या तन्त्रशास्त्र के मूल प्रवर्त्तक शिव हैं । चूँकि शिव अनादि हैं इसलिये उनके द्वारा प्रवर्त्तित आगम भी अनादि है । कौल परम्परा भी शिवप्रवर्त्तित है । इसे नाथ परम्परा भी कहा जाता है । अत: इस परम्परा के प्रवर्त्तक शिव आदिनाथ अर्थात् शिव हैं । शिव के बाद जिनका नाम आता है वे हैं मत्स्येन्द्रनाथ जो कि शिव के अवतार माने जाते हैं—

'अहं सो धीवरो देवि ! अहं वीरेश्वर: प्रिये !' (कौ.ज्ञा.नि. १२)

(हे देवि ! हे प्रिये ! मैं ही वह धीवर = मच्छेन्द्र या मत्स्यघ्न हूँ । मैं ही वीरेश्वर अर्थात् वीराचारी साधकों का गुरु हूँ) । ऐतिहासिक होने से इस मार्ग के प्रवर्त्तक मत्स्येन्द्रनाथ है । इनके अनेक नाम हैं, यथा—मत्स्यघ्न, मच्छघ्न मच्छेन्द्रनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, मीन, मीननाथ, मच्छेन्द्रपाद, मच्छन्द, मच्छिन्द्र, मच्छिन्द्रनाथपाद । इन नामों के पीछे कारण के रूप में कुछ लोककथायें प्रचलित है जिनका वर्णन यहाँ अप्रासङ्गिक नहीं होगा—

बंगाली कथा—गोरक्षविजय, मीनचेतन आदि ग्रन्थों के अनुसार विधाता ने शिव और चार सिद्धों की उत्पत्ति की । उन सिद्धों के नाम थे—मीन, हाडिफा, गोरखनाथ और कानूफा । शिव को गौरी नाम की एक कन्या दी गयी । इसी प्रकार गोरखनाथ को मीननाथ का और कानूफा को हडिफा का सेवक बनाया गया । एक बार की बात है—शिव ने अपनी पत्नी गौरी को समुद्र के मध्य में स्थित एक आसन पर गुह्य शास्त्र का उपदेश देना प्रारम्भ किया । मीननाथ मछली का रूप धारण कर शिव के आसन के नीचे छिप गये और उनके द्वारा उपदिष्ट समस्त गुह्य शास्त्र को सुन लिया । भगवान् शिव को जब पता चला तो उन्होंने मीन को शाप दे दिया कि वह इस गुह्यज्ञान को भूल जायेगा । इसके बाद जब शिव ने गौरी के माध्यम से अपने शिष्यों की परीक्षा ली तो गोरखनाथ को छोड़कर शेष सभी शिष्यों की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी । देवी की आज्ञा से मीननाथ कदली प्रदेश में जा पहुँचे जहाँ स्त्रियों का ही साम्राज्य था । वहाँ पहुँच कर मीननाथ स्त्रियों के मायाजाल में फँस गये और उस देश की १६०० सुन्दरियों के साथ विलासपूर्ण जीवन बिताने लगे । उन्हें अपने पूर्वजीवन का कुछ

भी स्मरण नहीं था । बाद में उनके शिष्य गोरखनाथ ने उन्हें वहाँ के जाल से मुक्त कराया । इस कार्य के लिये गोरखनाथ ने नर्तकी का रूप धारण किया और महिलाओं के राजमहल में प्रवेश कर गये । वहाँ पहुँचने के बाद उन्होंने एक मधुमक्खी का रूप धारण कर मीननाथ को उनके पूर्व जीवन का स्मरण कराया। इस रहस्य को कोई नहीं जान पाया । इस कथा में मीननाथ को मोछन्दर के नाम से उल्लिखित किया गया है ।

एक जनश्रुति के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ सिंहलद्वीप की रानी की प्रार्थना पर सिंहलद्वीप पहुँचे और वहाँ उसके प्रेमपाश में बँध गये । ध्यान करने पर गोरखनाथ को पता चला कि उनके गुरु सिंहलद्वीप के रनिवास में हैं । गोरखनाथ सिंहलद्वीप गये । वहाँ पुरुषों का प्रवेश निषिद्ध था । अत: गोरखनाथ अपने योगबल से उस तबले में घुस गये जिसे एक तबलावादक सङ्गीत सभा में सम्मिलित होने के लिये अपने साथ ले जा रहा था । रनिवास में पहुँच कर गोरखनाथ ने अपने गुरु का प्रच्छन्नरूप से दर्शन किया । जब सङ्गीत शुरु हुआ तो तबले से आवाज आयी—'जाग मछन्दर गोरख आया ।' यह सुनकर मत्स्येन्द्रनाथ गोरखनाथ के साथ सिंहलद्वीप से बाहर चले गये ।

नेपाली कथा—नेपाल में मत्स्येन्द्रनाथ के विषय में दो कथायें प्रचलित हैं । इनमें से एक पर बौद्धधर्म का तथा दूसरी पर ब्राह्मणधर्म का प्रभाव प्रतीत होता है ।

प्रथम विवरण के अनुसार एक बार गोरखनाथ अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ से मिलने के लिये नेपाल आये । मत्स्येन्द्रनाथ प्राय: कामारि पर्वत पर रहा करते थे। चूँकि उस पहाड़ी पर चढ़ना एक दुष्कर कार्य था इसलिये गोरखनाथ के मन में एक उपाय सूझा । उन्होंने नौ नागों को एक कछुये के नीचे बन्द कर दिया और उस पर बैठ गये । उनके परिणामस्वरूप आकाश सूख गया और पर्वत के नीचे की घाटी में १२ वर्षों तक बरसात नहीं हुई । पूरे देश में अकाल पड़ गया। नेपाल के राजा नरेन्द्रदेव के गुरु बन्धुदत्त को इसका कारण मालुम हो गया और उन्होंने उपाय भी जान लिया । वे राजा के साथ कपोतल पर्वत पर गये और वहाँ से अवलोकितेश्वर अर्थात् मत्स्येन्द्रनाथ को नीचे के राज्य में ले आने का प्रयास करने लगे । उन्होंने वहाँ अवलोकितेश्वर की पूजा की । पूजा से सन्तुष्ट होने पर मत्स्येन्द्रनाथ को नेपाल राज्य के ऊपर दया आ गयी । वे बन्धुदत्त के समक्ष प्रकट हुए और उनको एक गोपनीय मन्त्र बताया । बन्धुदत्त ज्ञानडाकिनी के पास लौट आये । ज्ञानडाकिनी का वे माता के समान आदर करते थे । अवलोकितेश्वर के द्वारा बताये गये विधान के अनुसार बन्धुदत्त ने शक्तिशाली मन्त्रों का जप किया । इसके फलस्वरूप अवलोकितेश्वर आकृष्ट होकर बन्धुदत्त के

पास आ गये । यहाँ इन्होंने एक भ्रमर का रूप धारण किया और बन्धुदत्त के कमण्डल में प्रवेश कर गये । इस समय राजा नरेन्द्रदेव निद्रा में निमग्न थे । बन्धुदत्त ने लात मार कर राजा को जगाया और राजा ने तुरन्त कमण्डल का मुख बन्द कर दिया । इस प्रकार अवलोकितश्वर को बन्दी बनाकर राजा नेपाल ले आये और उनको बूगम नाम स्थान में रख दिया । वहाँ अवलोकितेश्वर को सारे ऐश्वर्य उपलब्ध कराये गये थे । परिणामस्वरूप अत्यधिक वृष्टि हुई और नेपाल सूखे के चपेट से बच गया । आज भी बूगम पर भगवान् अवलोकितेश्वर की पूजा की जाती है और वहाँ वर्ष में एक बार यात्रा बड़े धूम-धाम से होती है। गोरखनाथ ने नागों को पकड़ने के बाद क्या किया या फिर गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ से मिले या नहीं इत्यादि के विषय में कोई कथानक नहीं मिलता ।

बुद्धपुराण की कथा—एक स्त्री को कोई सन्तान नहीं थी । उसने महादेव की तपस्या की । तपस्या से प्रसन्न होकर महादेव ने उसे कोई वस्तु खाने के लिये दी और कहा कि इससे तुमको एक पुत्र पैदा होगा । उस स्त्री ने महादेव के इस वचन पर विश्वास नहीं किया और उस वस्तु को गोबर के ढेर पर फेंक दिया । बारह वर्ष बाद एक बार जब महादेव उस रास्ते से गुजर रहे थे तो उन्होंने अपने वरदान दिये गये पुत्र को देखने की इच्छा प्रकट की । यह जानने के बाद कि उस स्त्री ने उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया, महादेव क्रुद्ध हो गये और स्त्री को आदेश दिया कि वह बच्चे को गोबर में से ढूँढ निकाले । स्त्री ने जब जाकर गोबर के ढेर को देखा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा । वहाँ उसे १२ वर्ष का एक छोटा बच्चा मिला । बाद में इस बच्चे का नाम गोरखनाथ रखा गया क्योंकि यह गोबर में सुरक्षित मिला था ।

एक बार गोरखनाथ नेपाल गये । वहाँ इनका स्वागत सत्कार नहीं हुआ इसलिये वे अत्यन्त क्रुद्ध हो गए । उन्होंने बादलों को बन्दी बना लिया और अपने आसन के नीचे १२ वर्षों तक रखा । परिणामस्वरूप नेपाल में १२ वर्ष तक सूखा और अकाल पड़ गया । सौभाग्यवश मत्स्येन्द्रनाथ नेपाल आये और उसी रास्ते से जा रहे थे जहाँ गोरखनाथ रहते थे । गोरखनाथ न तो अपने आसन से उठे और न गुरु का स्वागत किया । इस अनादर के परिणामस्वरूप बादल गोरखनाथ के बन्धन से छूट गये और नेपाल में भारी वर्षा हुई ।

उपर्युक्त दोनों कथायें मत्स्येन्द्रनाथ के जन्म के विषय में कोई सूचना नहीं देती; हाँ, इतना अवश्य बतलाती है कि वे गोरखनाथ के गुरु थे ।

कौलज्ञान निर्णय के अनुसार—मत्स्येन्द्रनाथ ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे । उनके मत्स्येन्द्र नाम पड़ने के बारे में एक श्लोक आता है—

मत्स्याभिधातिभिर्विप्रो मत्स्यघ्न इति विश्रुतः ।
कैवर्त्तत्वं कृतं यस्मात् कैवर्त्तो विप्रनायकः ॥ (कौ.नि. १६।३७)

(मछली मारने वाले मछुआरों के द्वारा यह ब्राह्मण मत्स्यघ्न के नाम से प्रसिद्ध हुआ चूँकि इसने धीवर का भी कार्य किया इसलिये यह विप्रनायक कैवर्त्त भी कहलाया ।)

मत्स्येन्द्रनाथ के अनेक नामों में एक नाम मच्छन्द भी है । इसके विषय में तन्त्रालोक की टीका में जयरथ कहते हैं—

मच्छाः पाशाः समाख्याताश्चपलाश्चित्तवृत्तयः ।
छेदितास्तु यदा तेन मच्छन्दस्तेन कीर्त्तितः ॥ (तं.आ.वि. १।७)

(मच्छ को पाश कहा गया है । ये पाश चञ्चलचित्तवृत्तियाँ हैं । चूँकि उन्होंने उनका छेदन किया इसलिये वे मच्छन्द कहलाये ।)

मत्स्येन्द्रनाथ के स्वरूप का वर्णन भी आचार्य अभिनवगुप्त ने किया है—

रागारुणं ग्रन्थिबिलावकीर्णं
यो जालमातानवितानवृत्ति ।
कलोम्भितं बाह्यपथे चकार-
स्तान्मे स मच्छन्दविभुः प्रसन्नः ॥ (तं.आ. १।७)

(जो लालरंग या प्रेम से अरुण है, माया ग्रन्थि रूपी बिल अर्थात् छिद्र अथवा भोगसाधन योनि से युक्त है, जो माया जाल के प्रसार में रहने वाला है, जिसने पृथिवी से लेकर कला तत्त्व तक को बाह्यपथ संकोच से बाहर कर दिया वह भगवान् मच्छन्द मेरे ऊपर प्रसन्न हों ।)

कथानक—एक बार शिव चन्द्रद्वीप में निवास कर रहे थे । उनकी पत्नी गौरी भी उनके साथ थी । भगवान् कार्त्तिकेय गौरी के पास शिव के रूप में उपस्थित हुए । भगवान् शिव के पास कौलशास्त्र का भण्डार सुरक्षित था । अज्ञान के वशीभूत होकर कार्त्तिकेय ने कौलशास्त्र को चुरा लिया और इसे समुद्र में फेंक दिया । वहाँ एक मछली इस शास्त्र को निगल गयी थी । भैरव जो कि मत्स्येन्द्र के अवतार थे, समुद्र में प्रवेश कर गये । उन्होंने उस मछली को पकड़ लिया । भैरव ने उसका पेट फाड़कर कौल शास्त्र को पुनः प्राप्त कर लिया ।

इस क्रिया से षडानन क्रुद्ध हो गये । उन्होंने एक सुरंग बनायी । उस सुरंग के रास्ते जाकर पुनः उस शास्त्र को चुरा लिया और समुद्र में फेंक दिया । एक बृहदाकार मत्स्य उसे निगल गया । इससे भैरव पुनः कुपित हुए । उन्होंने अपनी

दैवी शक्ति से एक जाल बनाया। उसमें उस मछली को फँसाया और खींचकर किनारे पर लाना चाहे। किन्तु मछली के पास भी वही भैरवीय अद्भुत शक्ति थी। वह किनारे पर न आ सकी। इसके अतिरिक्त उसके किनारे न लगने का एक कारण और था वह यह कि वह मछली कौलशास्त्र को अपने उपर में रखे थी। तब भैरव ने अपने ब्राह्मणत्व का परित्याग कर मछुआरे का रूप धारण किया ताकि वे मछली से भली-भाँति युद्ध कर सकें। तत्पश्चात् वह मछली उस आध्यात्मिक शक्ति से समान जाल के द्वारा किनारे पर लायी गयी एवं उसका पेट फाड़ कर कौलशास्त्र पुन: प्राप्त कर लिया गया। यद्यपि शिव ने ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था तथापि मछुआरे का कार्य करने के कारण उनका नाम मच्छघ्न आदि पड़ा।

उपर्युक्त कथाओं से निम्नलिखित तथ्य प्रकट होते हैं—(१) कौल मार्ग का उद्भव स्थान चन्द्र द्वीप है जो कि सम्भवत: बंगाल में स्थित सूर्य द्वीप है। (२) मत्स्येन्द्रनाथ कौलमार्ग या कौलशास्त्र के प्रथम उपदेष्टा पुरुष हैं। (३) इस शास्त्र का उपदेश प्रथमत: कामरूप (= कामाख्या) में दिया गया।

यदि हम बौद्ध कथानक को आधार मानें तो मत्स्येन्द्रनाथ १०वीं शती में विराजमान थे। उनके द्वारा प्रवर्त्तित कौल सम्प्रदाय का उद्भव ११वीं शती ईस्वी के प्रारम्भ में माना जा सकता है। किन्तु नेपाल अथवा भारत आदि में इसका प्रचार १५वीं शती ईस्वी के बाद हुआ।

कौल या नाथ सम्प्रदाय की परम्परा में गोरखनाथ का नाम सर्वप्रथम है। एक कथानक के अनुसार गोरखनाथ की उत्पत्ति स्रष्टा के भौंह के पसीने से मानी जाती है। एक अन्य कथानक के अनुसार भस्मासुर के भस्म होने पर भगवान् शिव मोहिनी के रूप को देखकर कामासक्त हो गये। मोहिनीरूप (विष्णु) के अन्तर्हित होने पर शिव का वीर्य एक गाय में स्थापित हो गया। उससे जो सन्तान उत्पन्न हुई वह गोरखनाथ कहलाये क्योंकि ये गाय से उत्पन्न हुए थे।

गोरखनाथ ने शिव के उपदेशों को प्रचारित किया। उनके १२ शिष्य थे— सन्तनाथ, रामनाथ, सांरगनाथ (या भारङ्गनाथ), धर्मनाथ, वैरागनाथ, दरियानाथ, कामिकनाथ, नागनाथ, गङ्गयीनाथ, धज्जानाथ और नीमनाथ।

कौलमार्ग—कौलमार्ग अनादि है क्योंकि इसके मूल पुरुष शिव अनादि हैं। श्रुति अथवा अन्य आगमिक परम्परा की भाँति कौल मार्ग की एक दीर्घकालिक अथवा अनादि ऐतिहासिक परम्परा रही है भले ही इस परम्परा से सम्बद्ध ग्रन्थों का प्रणयन बाद में हुआ है। इसी दृष्टि से हमने मत्स्येन्द्रनाथ को कौलपरम्परा का प्रथम पुरुष माना है। कौलज्ञान निर्णय में अनेक कौल सम्प्रदायों का संकेत

मिलता है । यथा—

एतत्ते कथितं देवि! रोमकूपादि कौलिकम् ।' (कौ.ज्ञा.नि. १४।३२)

हे देवि ! यह तुम्हें रोमकूपादि कौलमार्ग बतलाया ।

वृषणोत्थस्य कौलस्य कथितं तव सुव्रते ।
वह्निकौलस्य योऽभ्यासं कथयामि च साम्प्रतम् ॥
(कौ.ज्ञा.नि. १४।३३-३४)

हे सुव्रते ! वृषणोत्थ कौल का (अभ्यास) तुमको बतलाया अब जो वह्निकौल का अभ्यास (= साधनापद्धति) है वह तुमको बतला रहा हूँ ।

पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि कौलसद्भावमुत्तमम् । (कौ.ज्ञा.नि. १४।३७)

पुन: अन्य उत्तम कौलसद्भाव को बतलाऊँगा ।

पदोत्तिष्ठमिदं कौलं नात्मानं ज्ञाननिर्णयम् । (कौ.ज्ञा.नि. १४।४८)

यह पदोत्तिष्ठ कौल है न कि ज्ञाननिर्णय ।

इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के कौलमार्गों की भी चर्चा आती है—

महाकौलात् सिद्धकौलं, सिद्धकौलान् मत्स्योदरम् ।
(कौ.ज्ञा.नि. १६।४७)

महाकौल की अपेक्षा सिद्धकौल, सिद्धकौल की अपेक्षा मत्स्योदर सरल है ।

ज्ञानादौ निर्णीतिकौलं द्वितीये महत् संज्ञितम् ।
तृतीये सिद्धामृतं नाम कलौ मत्स्योदरं प्रिये ॥ (कौ.ज्ञा.नि. १६।४८)

ज्ञान आदि (= सत्ययुग) में निर्णीति कौल, द्वितीय (= त्रेतायुग) में महत् नाम वाला, तृतीय (= द्वापर) में सिद्धामृत कौल और हे प्रिये ! कलियुग में मत्स्योदर कौल श्रेयस्कर है ।

इसी प्रकार कौल सम्प्रदायों के अनेक ग्रन्थों के नाम २१वें पटल में भी कहे गये हैं—

कुलपञ्चाशिकामूलं तथा च कुलसागरम् ।
कुलौघो (कुल)हृदयं चैव, भैरवोद्यानकं तथा ॥
चन्द्रकौलं च वेष्टिं च तथा वै ज्ञाननिर्णयम् ।
अस्य मध्ये विनिष्क्रान्तं सम्बरं नामविश्रुतम् ॥
सृष्टिकौलं महाकौलं तिमिरं च तथा परम् ।
सिद्धामृतं तु कौलं मातृकौलं तथा परम् ॥

शक्तिभेदं तथा कौलमूर्मिकौलमनुत्तमम् ॥ (कौ.ज्ञा.नि. २१।१-६)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कौल मार्ग एवं कौल ग्रन्थ अनेक हैं। यह भी स्पष्ट हो गया कि कौलमार्ग चारो युगों में प्रचलित था और है। कलियुग में मच्छेन्द्रनाथप्रवर्त्तित कौलमार्ग का अनुपालन श्रेयस्कर है। इन्होंने योगिनीकौल नामक सम्प्रदाय को प्रवर्त्तित किया था। इसका अवतरण यद्यपि चन्द्रद्वीप में हुआ तथापि प्रचलन आजकल कामरूप (कामाख्या) में है—

चन्द्रद्वीपे इदं शास्त्रमवतीर्णं सुलोचने।
कामाख्ये गीयते नाथे महामत्स्योदरस्थितिः ॥ (कौ.ज्ञा.नि. २२।१२)

हे सुलोचने! यह शास्त्र कामरूप में अवतीर्ण हुआ। हे नाथे! यह महामत्स्योदरशास्त्र कामाख्या में प्रचलित है।

कौलमार्ग का स्वरूप—

भगवान् सदाशिव के पश्चिम मुख से निःसृत तथा पश्चिमाम्नाय के नाम से प्रसिद्ध मार्ग ही कौलमार्ग है। कौल शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है—

कुलं शक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते।
कुलेऽकुलस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयते ॥

(शक्ति को कुल और शिव को अकुल कहा जाता है। कुल के साथ अकुल का सम्बध कौल होता है।)

अकुलः शिव इत्युक्तं कुलं शक्तिः प्रकीर्त्तिता।
कुलाकुलानुसन्धानात् निपुणाः कौलिकाः प्रिये ॥ (कु.तं. १७।२७)

(शिव को अकुल और शक्ति को कुल कहते हैं जो कुल और अकुल का अनुसन्धान करने के कारण निपुण हो गये वे कौल कहे जाते हैं।)

वहीं पर शक्ति पद का विवेचन करते हुए कहा गया—

शतकोटिमहादित्ययोगिनीप्रीतिकारणात्।
तीव्रमुक्तिप्रदानाच्च शक्तिरित्यभिधीयते ॥ (कु.तं. १७।३२)

(सौ करोड़ महादित्य योगिनी को प्रसन्न करने तथा तीव्रता के साथ मुक्ति प्रदान करने के कारण शक्ति कही जाती है।)

कौल पद की व्याख्या करते हुए कहा गया—

कौमारादिनिरोधत्वाल्लयजन्मादिभञ्जनात्।
अशेषकुलसम्बन्धात् कौल इत्यभिधीयते ॥ (कु.तं. १७।४५)

(कौमार आदि अवस्था का निरोध, संहार और सृष्टि का नाश तथा समस्त कुल अर्थात् विश्व से सम्बन्ध होने के कारण यह मार्ग कौल कहा जाता है ।)

मकारसाजात्यनिरूप्यमाणा मद्यादयः पञ्च कुलं निरुक्ताः ।
तैरागमज्ञानुगुणं यजन्तः पराम्बिकां ते हि भवन्ति कौलाः ॥
(कौ.वि.उ. ७)

(कौलविलास में कहा गया है—मकार के सजातीय-मद्य आदि (= मांस मत्स्य मुद्रा मैथुन) पाँच को कुल कहा गया है । आगमशास्त्र को जानने वाले जब उनके अनुरूप अर्थात् पञ्च मकार के द्वारा पराम्बिका की पूजा करते हैं तब वे कौल होते हैं ।)

उपर्युक्त श्लोकों का निष्कृष्ट तात्पर्य यह है कि जिस मार्ग पर चलने से, जिस आचारसंहिता का पालन करने से, जिस उपदेश का अनुसरण करने से शक्ति शिव तथा विश्व एक रूप में प्रतीत अनुभूत और व्यवहृत होते हैं उस पद्धति या आचार को कौल मार्ग, कौल संप्रदाय, कौलाचार आदि कहा जाता है । इस मार्ग का अभ्यास करने वाले साधक कौल कहलाते हैं ।

कुल का अर्थ सुषुम्ना नाड़ी भी है—'कुलपथं सुषुम्नामार्गम्' (सौन्दर्यलहरी)। इसके अतिरिक्त मूलाधार में स्थित चतुर्दल कमल तथा मस्तक में स्थित सहस्रदल कमल या सहस्रार को भी कुल कहा जाता है—यह पहले कहा जा चुका है । कौलमार्ग में मूलाधार से लेकर सहस्रार तक के पहले स्थित आज्ञाचक्र तक का भेदन कर सहस्रार में पहुँच कर शिवशक्ति के युगल या युगनद्ध स्वरूप का दर्शन करने के बाद दोनों के निष्कल स्वरूप का ध्यान ही अन्तिम लक्ष्य होता है । यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थ में षट्चक्र की चर्चा नहीं की गई है तथापि समस्त कौलग्रन्थों में चक्रार्चन या चक्रपूजा का विधान वर्णित है । कौल सम्प्रदाय में प्रचलित यह चक्रपूजा बाह्य पूजा मानी जाती है । इसकी अपेक्षा आभ्यन्तर चक्रपूजा बहुत श्रेष्ठ है । कुण्डलिनी का उदबोधन एवं षट्चक्र का भेदन इसी का नामान्तर है। बिना इसके सहस्रार में निष्कल शिवशक्ति का साक्षात्कार अथवा दूसरे शब्दों में सायुज्य मुक्ति असंभव है । इसलिये यहाँ षट्चक्रों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है—

षट्चक्र—

छः चक्रों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, शाकिनी और आज्ञा । ये छहों चक्र क्रमशः पृथ्वी जल तेज वायु आकाश और मन सहित दश इन्द्रियों के प्रतिनिधिस्वरूप है । तात्पर्य यह है कि

'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' (जैसा इस पिण्ड अर्थात् शरीर में है वैसा ही सब ब्रह्माण्ड में है) इस उक्ति वाले पिण्ड ब्रह्माण्ड सिद्धान्त के अनुसार मूलाधार आदि एक-एक चक्र का क्रमशः भेदन करने अर्थात् उनके पृथक् अस्तित्व को समाप्त कर शुद्ध चैतन्य में उनको समाहित करने पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का भेदन हो जाता है और शिवैक्यभावना का अविर्भाव होता है । इसलिये चक्रबैठक या योनिपूजा या किसी अन्य प्रक्रिया के द्वारा साधक को षट्चक्र का भेदन करना ही पड़ता है । बिना इसके शिवसमावेश या शिवैक्यभावना या मोक्ष असम्भव है ।

कुण्डलिनी—

इसको शक्ति या चैतन्य या कुलकुण्डलिनी के नाम से भी जाना जाता है । जिस प्रकार इस ब्रह्माण्ड और विश्व में एक शक्ति सर्वत्र व्याप्त है उसी प्रकार इस व्यष्टि शरीर में भी शक्ति स्थित है । शरीर ब्रह्माण्ड और विश्व अथवा व्यष्टि समष्टि और महासमष्टि सब एक चित् शक्ति के द्वारा अधिष्ठित हैं । शिव जब अपने स्वरूप को छिपा लेते हैं तब वे जीव कहे जाते हैं और उनकी शक्ति जिसे कुण्डलिनी कहा जाता है, जीव के व्यष्टि शरीर में सुप्त हो जाती है। नाना योनियों में भ्रमण कर जब मनुष्य योनि में आकर वे पुनः किसी साधन से अपने छिपे हुए स्वरूप को पूर्वावस्था में लाना चाहते हैं तो सबसे पहले उस सुप्त शक्ति का उद्बोधन आवश्यक होता है । फिर वह शक्ति नीचे से ऊपर की ओर बढ़ती हुई सहस्रार में पहुँच जाती है । जीव शिव को परम शिव के पास पहुँचाने वाली या उनको अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित करने वाली शक्ति को कुण्डलिनी कहा जाता है ।

यह कोई स्थूल तत्त्व नहीं है बल्कि तेज है । रीढ़ की हड्डी जहाँ समाप्त होती है वहाँ पर नाभि के नीचे तथा मेढ्र के ऊपर पंक्षी के अण्डे के समान नव अंगुल का एक अङ्ग है जिसका नाम कन्द या मूलाधार है । वहाँ से ७२००० मुख्य नाड़ियाँ निकलती हैं—

ऊर्ध्वं मेढ्रादधोनाभेः कन्दो योनिः खगाण्डवत् ।
ततो नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः ॥ (यो. चू. उ. १४।१५)

उनमें इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना ये तीन नाड़ियाँ मुख्य हैं । सुषुम्ना के ही मूल में वह तेज सर्प के वलय के रूप में कुण्डली मार कर सुप्त रहता है । शिव जब अपने को आवृत कर जीव रूप धारण करते हैं तब प्राण के साथ उनका आवागमन इडा और पिङ्गला के माध्यम से होता है । किन्तु जब वे ऊर्ध्वगमन करते हैं अर्थात् जीवभाव को छोड़ कर शिवभाव को प्राप्त करते हैं तब उनका आरोहण सुषुम्नामार्ग से होता है । किन-किन क्षणों में कुलकुण्डलिनी

जाग्रत होती है इसका वर्णन निम्नलिखित है—

(१) एक वर्ष के बच्चे की कुण्डलिनी अस्थायी रूप में जाग्रत रहती है। इसके प्रभाव से शिशु समझता सब कुछ है किन्तु प्रकट नहीं कर सकता। (२) प्रचण्ड दु:ख और अत्यन्त सुख में भी कुण्डलिनी का अस्थायी जागरण होता है। (३) पुरुष और स्त्री के प्रथम सम्भोग की पराकाष्ठा में अस्थायी रूप से यह जागती है। (४) मृत्यु के ठीक पूर्व जब प्राण देह को छोड़ कर महाशून्य में मिलता है तब इसका अस्थायी जागरण होता है। (५) साधना में योगबल से। यह जागरण स्थायी होता है।

अब शरीर में विद्यमान षट्चक्रों का प्रतिपादन आवश्यक है। वे चक्र इस प्रकार हैं—

१. मूलाधार—

गुद मेढ्रान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम्।
शिवस्य जीवरूपस्य स्थानं तद्धि प्रचक्षते॥
यत्र कुण्डलिनी नाम पराशक्तिः प्रतिष्ठिता। (यो.शि.उ. १६८।१६९)

मूलाधार गुदा और मेढ्र के बीच में स्थित है। पृथिवी तत्त्व का प्रतिनिधि यह चक्र त्रिकोणाकार ▽ है। यही जीवरूप शिव का स्थान है। इसमें पराशक्ति कुण्डलिनी स्थित है। मूलशक्ति का आधार होने से अथवा विश्व में प्रवहमान शक्ति का मूल आधार होने से इसे मूलाधार कहा जाता है। यह कुण्डलिनी के ऊपर वर्त्तमान है इसका वर्ण रक्त है। इसमें रक्त वर्ण का चार दलों वाला कमल स्थित है। इन दलों का रंग स्वर्णिम है।

इस कमल के प्रत्येक दल में वं शं षं सं ये चार अक्षर विराजमान हैं। यही मूलाधार का मन्त्र है। इन वर्णों के बीच में पृथ्वी का बीज अक्षर लं स्थित है। सिद्धमहात्माओं का विचार है कि वं शं षं सं के जप से मूलाधार में रहने वाली डाकिनी सिद्ध हो जाती है। त्रिकोण स्थित त्रिभुज के मध्य में स्वयंभू लिङ्ग वर्त्तमान है, डाकिनी इससे संयुक्त रहती है। गुरु की कृपा और अपने पुरुषकार से इस चक्र का भेदन होता है और डाकिनी वश में होती है। यहीं पर कामरूप पीठ है। इसके अधिष्ठातृ देव ब्रह्मा है। इनका मण्डल चौकोर है।

२. स्वाधिष्ठान—

'स्वाधिष्ठानाह्वयं चक्रं लिङ्गमूले षडस्रके।' (यो.शि.उ. १।१७१)

लिङ्ग के मूल में स्वाधिष्ठान चक्र है। यह जल तत्त्व का प्रतिनिधि है। इस चक्र का रंग सिन्दूर वर्ण का है। यह षट्कोण चक्र है जिसमे षड्दल

कमल विराजमान है । एक-एक दल में एक-एक वर्ण है । यथा—बं भं मं यं रं लं । इसकी कर्णिका में वरुण या अमृत बीज व है । उक्त वर्णों में डाकिनियाँ रहती हैं । इसमें चन्द्राकृति उज्ज्वल शुभ्रवर्ण का एक मण्डल है । इसके अधिष्ठातृ देव विष्णु हैं ।

३. मणिपूर—

नाभिदेशे स्थितं चक्रं दशारं मणिपूरकम् । (यो.शि.उ. १।१७२)

मणिपूरचक्र नाभि देश में स्थित है । यह अग्नि तत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है । यह दशार अर्थात् दशदल कमल वाला है । इस चक्र का वर्ण नील है । अर्थात् मेघ के समान नील । दश दलों में रहने वाले वर्ण हैं—डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं । इस कमल की कर्णिका में अग्नि बीज रं स्थित है । यहाँ भी उक्त वर्णों में डाकिनियाँ रहती हैं । इसके चारो ओर रक्तवर्ण त्रिकोण युक्त अग्निमण्डल है । इसके अधिष्ठाता रुद्र हैं ।

४. अनाहत—

द्वादशारं महाचक्रं हृदये चाप्यनाहतम् ।
तदेतत् पूर्णगिर्याख्यं पीठं कमलसम्भवम् ॥ (यो.शि.उ. १।१७३)

हृदय में अनाहत नामक चक्र है । यह वायु तत्त्व का प्रतिनिधि है । इसमें द्वादशदल कमल है । यह कमल सिन्दूरी वर्ण का है । कं से लेकर ठं पर्यन्त बारह वर्णों के रूप में उज्ज्वल वर्ण वाले बारह पुरोहित इस आदि काल के मन्दिर में नित्य जप करते रहते हैं । उनके जपनीय मन्त्र हैं बारह अक्षर—जं झं ञं टं ठं कं खं गं घं ङं चं छं । कमल की गोलाकार कर्णिका या मण्डल में वायु बीज यं स्थित है । इसका रंग धूसर है । यहीं पर नाद रूप में समस्त वेद-वेदाङ्ग, तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र आदि स्थित है । यहीं पर पूर्णगिरि पीठ है । इसके अधिष्ठातृ देव आदि काल या रुद्र है ।

५. शाकिनी (विशुद्ध)—

कण्ठकूपे विशुद्धाख्यं यच्चक्रं षोडशारकम् ।
पीठं जालन्धरं नाम तिष्ठत्यत्र सुरेश्वर ॥ (यो.शि.उ १।१७४)

कण्ठकूप में विशुद्ध नामक जो चक्र है उसमें सोलह दल वाला कमल है । इस चक्र का वर्ण धूसर है । अ से लेकर अः तक के सोलह वर्ण इन सोलह दलों में स्थित हैं । ये वर्ण सोलह अवधूतिनी के रूप में स्थित रहते हैं ।

मध्य कर्णिका में आकाशबीज हं स्थित है । समस्त स्वर ताल लय मूर्च्छना आदि का उद्गम स्थान यहीं है । इसके अधिष्ठाता सदाशिव हैं ।

६. आज्ञा—

> **आज्ञा नाम भ्रुवोर्मध्ये द्विदलं चक्रमुत्तमम् ।**
> **उड्यानाख्यं महापीठमुपरिष्टात् प्रतिष्ठितम् ॥** (यो.शि.उ. १।१७५)

आज्ञा नामक चक्र दोनों भौंहों के बीच में स्थित है । इसमें दो दल वाला कमल है । यह कमल शुभ्र वर्ण का है । इसके ऊपर नीचे स्थित दोनों दलों में हं और क्षं दो वर्ण हैं । यह मन का मण्डल है । इसके ऊपर उड्यान नामक महापीठ स्थित है । इस कमल की कर्णिका में शिवशिवा विराजमान है ।

चक्र-भेदन—

ऊपर जिन चक्रों का संक्षिप्त परिचय दिया गया उनका भेदन किये बिना जीव की परम गति या पूर्णत्वप्राप्ति नहीं होती । यह चक्रभेदन गुरुकृपा के अनन्तर तीव्र पुरुषकार के द्वारा अथवा परमसत्ता के प्रति तीव्रतम भक्ति या अनन्य प्रेम के द्वारा सम्पन्न होता है । जीव के विकासक्रम में चौरासी लाख योनियों में घूमने के बाद अन्तिम देह मनुष्य की मिलती है । मनुष्य देह के नीचे के सभी शरीरों में अन्नमय और प्राणमय नामक केवल दो कोशों का ही विकास होता है । मनोमय कोश की क्रिया मात्र मनुष्य में होती है । यह क्रिया दीर्घ काल तक जन्मजन्मान्तर तक तब तक चलती रहती है जब तक कि पूर्ण अहन्ता की प्राप्ति नहीं हो जाती । दीर्घकाल तक भोग भोगने के बाद मनुष्य के मन में वैराग्य की भावना जाग्रत होती है और मन बहिर्मुखता का त्याग कर अन्तर्मुखी हो जाता है। यह भगवान् के अनुग्रह के कारण होता है । अब तक परमेश्वर के निग्रह (स्वरूपगोपन) जीव के कारण संसार का प्रारम्भ हुआ था और अब उनके अनुग्रह के कारण इस संसार की निवृत्ति की प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है । जीवभाव की निवृत्ति होकर शिवभाव का उदय होना ही षट्चक्र भेद का प्रतिपादन है । शिव की शक्ति चिद्रूपा होने पर भी जीवदेह में वह मूलाधार कुण्ड में अचिद्रूप से सोयी हुई है । वह जीव को अपने शिवरूप का अनुभव नहीं करने देती । अपने सत्य स्वरूप का आवरण तथा परकीय असत्य स्वरूप का ग्रहण इसके कार्य हैं । पञ्च महाभूत तथा चित्त ये छह तत्त्व केन्द्ररूप में रह कर उपर्युक्त छह चक्रों का निर्माण करते हैं । ये छह चक्र निरन्तर चक्कर लगा कर शुद्ध आत्मा को जीव रूप में घुमा रहे हैं ।

आत्मा जब अपने स्वातन्त्र्य के बल से जीवस्वरूप ग्रहण करती है तब उसकी स्वरूपशक्ति परावाक् उसी स्वातन्त्र्यवश जीव को आत्मविस्मृत कर देती है। इसके परिणाम स्वरूप जीव के अन्दर नये-नये प्रकार के असंख्य अर्थ बिना किसी कारण के उत्पन्न होने लगते हैं । इन अर्थों का पारिभाषिक नाम विकल्प

है। परावाक् से पश्यन्ती स्तर में आने पर ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय यह त्रिपुटी अत्यन्त अस्पष्ट रहती है । किन्तु मध्यमा और वैखरी स्तर तक आते-आते ये तीनों स्वरूप से अलग-अलग अनुभूत होने लगते हैं ।

शिव के जीवरूप धारण करने के साथ-साथ उनकी अविनाभूत चित्शक्ति भी जीवभाव की उपयोगिनी बन कर सुप्त रूप से जीवशरीर में स्थित रहती है । स्थावर से लेकर मनुष्य की पूर्वावस्था तक यह समस्त शरीरों में सुप्त रहती है । मनुष्य शरीर में वह स्वप्नावस्था में रहती है । जब यह शक्ति स्वप्नावस्था से जाग्रत अवस्था में आती है तब मनुष्य का स्वप्न टूट जाता है और मनुष्य का मन निरालम्ब हो जाता है । जो चैतन्य सुप्तावस्था में अपने स्वरूप को विस्मृत कर दिया था वह कुण्डलिनी के जागरण से अपने स्वरूप में पुनः प्रतिष्ठित हो जाता है । चैतन्य का यही सुप्त प्रबोध कुण्डलिनीजागरण का फल है ।

शब्द ब्रह्म या परावाक् बिन्दुरूप है । बिन्दु से नाद निकलता है जिसे पश्यन्ती वाक् कहते हैं । पश्यन्ती से मध्यमा वाक् प्रकट होती है । यह नादाभास है । फिर मध्यमा से वैखरी वाणी उत्पन्न होती है जिसमें पृथक्-पृथक् ५० वर्ण पृथक्-पृथक् ध्वनि के हैं । इन वर्णों से पद, वाक्य आदि का निर्माण होता है । वर्णों को मातृका कहा जाता है । ये मातृकायें अपने नाना प्रकार के संयोग से चित्त में नाना प्रकार के विचारों को उत्पन्न करती है जिन्हें विकल्प कहा जाता है । ये विकल्प ही बन्धन के कारण हैं । मुक्ति के लिये पहली आवश्यकता है कि इन वर्णों के पृथक्-पृथक् दृश्यमान स्वरूप को मिटाकर इनको इनके मूल रूप अर्थात् नाद में रूपान्तरित कर दिया जाय । तत्पश्चात् नाद को बिन्दुरूप में ला दिया जाय । तभी विकल्पों का अन्त सम्भव है । मातृकायें आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित पर बिन्दु के ही अंश हैं । इसलिये इन अंशों को एकत्र कर इनको इनके ऊर्ध्वगामी महास्रोत से युक्त करना पड़ता है । मन की गति ऊपर और नीचे दोनों ओर चलती है ।

'चित्तनदी नाम उभयतो वाहिनी, वहति पुण्याय वहति पापाय च'

(पा.यो.सू.भा. १।१२)

अधोगति विषयाभिमुख है; ऊर्ध्वगति शिवाभिमुख है । मन की अधो गति इडा और पिङ्गला के माध्यम से होती है । ये दोनों नाड़ियाँ रीढ़ की हड्डी के बाँये-दाँयें स्थित हैं । मन की ऊर्ध्वगति सुषुम्ना के माध्यम से होती है । यह नाड़ी रीढ़ की हड्डी के बीच में स्थित है । इसी के मूल में कुण्डलिनी शक्ति सुप्त अवस्था में पड़ी रहती है ।

शास्त्रों में जिन छह चक्रों अथवा कमलों का वर्णन मिलता है वे कोई

भौतिक मांसपिण्ड आदि नहीं हैं कि उन्हें इन आखों से या यन्त्र के द्वारा देखा जा सके । वे सभी पूर्वोक्त पचास वर्णों के द्वारा निर्मित एक प्रकार के सूक्ष्म यन्त्र हैं। इन वर्णों के द्वारा निर्मित विभिन्न विकल्प ही शरीर में काम क्रोध आदि वृत्तियों को उद्‌दीप्त करते हैं । यह ज्ञातव्य है कि छह चक्रों की स्थिति भी सुषुम्ना मार्ग में ही है । इसलिये वैखरी के इन वर्णों को विगलित कर नाद रूप में और फिर उसे नादमय विशुद्ध ज्योति के रूप में प्रकाशित करना पड़ता है । नादमय ज्योति से ऊपर उठकर शब्दब्रह्म का भेद होने पर परब्रह्म का साक्षात्कार होता है—

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति । (ब्र.वि.उ. १७)

इन वर्णों को विगलित करने का साधन एकमात्र चिदग्नि का ताप है । मन्त्र जप ध्यान कीर्त्तन आदि जिस किसी साधन से कुण्डलिनी के उद्‌बुद्ध होने पर जाग्रत कुण्डलिनी मन एवं प्राण ये तीनों मिलकर पहले मूलाधार में स्थित चार वर्णों को विगलित कर नाद रूप में परिवर्त्तित करते हैं । फिर वह नाद शक्ति मूलाधार के केन्द्रस्थ वर्ण को विगलित कर नाद रूप में बदल देती है । फिर वह पाँचों वर्णों का नाद सुषुम्ना के मार्ग से ऊपर उठ जाता है और मूलाधार चक्र शून्य हो जाता है । इसी प्रकार अन्य चक्रों के वर्णों को विगलित करते हुए सभी पचास वर्ण विगलित होकर पहले छः बिन्दुओं में फिर वे छः बिन्दु मिलकर एक विन्दु के रूप में स्थित हो जाते हैं । यही तृतीय नेत्र है जो भ्रूमध्य के ऊपर स्थित है । इस तृतीय नेत्र या आज्ञाचक्र के खुल जाने पर जीव शिव बन जाता है । उपर्युक्त प्रणाली के अतिरिक्त चक्रभेद की और भी प्रणालियाँ हैं । विस्तार के भय से यहाँ उनका वर्णन नहीं किया जा रहा है ।

दश महाविद्यायें—

कौलमार्ग शाक्त मार्ग है । यद्यपि शिव और शक्ति अभिन्न हैं तथापि कौलसाधक शक्ति को प्रधान मानते हैं । शक्ति मूल में एक है किन्तु भिन्न-भिन्न काल में भिन्न-भिन्न रूप में भिन्न-भिन्न उद्‌देश्य से अवतीर्ण होने के कारण उसके अनेक रूप और अनेक नाम हैं । कामाख्या काली और तारा का मिश्रित रूप है। कुछ विद्वान् इसे षोडशी का रूप मानते हैं । चारो प्रकार की वाणियों में कामाख्या परावाक् है । काली तारा और षोडशी की गणना दश महाविद्याओं में प्रथम द्वितीय और तृतीय स्थान पर है । एतदर्थ महाकाली तारा षोडशी सहित दश महाविद्याओं का वर्णन यहाँ प्रस्तुत है—

१. काली—इसके अनेक भेद हैं । जैसे—दक्षिणाकाली, वामाकाली, भद्रकाली, धनकाली, सिद्धकाली, चण्डीकाली आदि । यत्र तत्र द्वादश काली की

भी चर्चा मिलती है । काली के विषय में प्रसिद्ध तन्त्रग्रन्थों के नाम निम्नलिखित हैं—महाकाल संहिता (५० सहस्र से अधिक श्लोकात्मक ग्रन्थ), परातन्त्र, कालीयामल, कुमारीतन्त्र, कालीसुधानिधि, कालिकामत, कालीकल्पलता, कालीकुलार्णव, कालीसार, कालिकार्णव, कालिकाकुलसद्भाव, कालिकार्चादीपिका, कालीतन्त्र, कालज्ञान (कालोत्तर—कालज्ञान का परिशिष्ट), कालीसूक्त, कालिकोपनिषद्, कालीतत्त्व, भद्रकालीचिन्तामणि, कालीतत्त्वरहस्य, कालीकल्प (श्यामाकल्प), कालीऊर्ध्वान्वय, कालीकुल, कालीक्रम, कालिकोद्भव, कालीविलासतन्त्र, कालीकुलावलि, वामकेशसंहिता, कालीतत्त्वामृत, कालिकार्चामुकुर, काली (श्यामा) रहस्य, कालीसपर्याकलावल्ली, कालिकाक्रम, कालिकाहृदय, कालीखण्ड, कालीकुलामृत, कालिकोपनिषत्सार, कालिकाक्रम, कालीकुलक्रमार्चन, कालीसपर्याविधि, कालीतन्त्रसुधासिन्धु, कुलमुक्तिकल्लोलिनी, कालीशाबर, कौलावली, कालीसार, कालिकार्चनदीपिका, श्यामार्चनतरङ्गिणी, कुलप्रकाश, कालीतत्त्वामृत, कालीभक्तिरसायन, कालीकुलसर्वस्व, कालीसुधानिधि, कालिकोद्भव, कालीकुलार्णव, कालिकाकुलसर्वस्व, कालीकल्पलता, कालीपरा, कालिकार्चनचन्द्रिका इत्यादि ।

'नारदपाञ्चरात्र' आदि ग्रन्थों के अनुसार विश्वामित्र ने काली के अनुग्रह से ही ब्रह्मण्य प्राप्त किया था । 'शक्तिसङ्गमतन्त्र' के अनुसार काली और त्रिपुराविद्या समान हैं । कामाख्या तन्त्र के अनुसार काली ही कामाख्या है—

'या देवी कालिका माता सर्वविद्यास्वरूपिणी ।
कामाख्या सैव विख्याता सत्यं देवि च चान्यथा ॥'

(का. तं. १०।४)

यह दक्षिणा काली है ।

२. तारा—तारा के विषय में निम्नलिखित ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय हैं—तारिणीतन्त्र, तोडलतन्त्र, तारार्णव, नीलतन्त्र, महानीलतन्त्र, नीलसरस्वतीतन्त्र, चीनाचार, तन्त्ररत्न, ताराशाबरतन्त्र, तारासुधा, ताराभक्तिसुधार्णव, ताराकल्पलता, ताराप्रदीप, तारासूक्त, एकजटीतन्त्र, एकजटीकल्प, महाचीनाचारक्रम, तारारहस्यवृत्ति, वासनातत्त्वबोधिनी, तारामुक्तितरङ्गिणी, तारामुक्तितरङ्गिणी, तारामुक्तितरङ्गिणी, (क्रमशः काशीनाथ, प्रकाशानन्द, विमलानन्दकृत), महोग्रतारातन्त्र, एकवीरतन्त्र, तारिणीनिर्णय, ताराकल्पलतापद्धति, तारिणीपारिजात, तारासहस्रनाम, ताराकुलपुरुष, तारोपनिषद्, ताराविलासोदय ।

'शक्तिसङ्गमतन्त्र' के अनुसार तारा ही परावाग् और पूर्णाहन्तामयी है ।

३. षोडशी—षोडशी श्रीविद्या का नामान्तर है । त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरा, ललिता आदि भी उन्हीं के नाम हैं । इस महाविद्या से सम्बद्ध रचनायें निम्नलिखित हैं—

त्रिपुरोपिनिषद्, भावनोपनिषद्, कौलोपनिषद्, त्रिपुरातापिनी उपनिषद्, ललितास्तवरत्न, त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र, सौभाग्यहृदयस्तोत्र, योगिनीहृदय (उत्तरचतु:शती), पूर्व चतु:शती, ललितात्रिंशति, नवशक्तिहृदयशास्त्र, शक्तिसूत्र, श्रीविष्णुरत्नसूत्र, त्रैपुरसूक्त, बिन्दुसूत्र, ललितास्तव, सौभाग्योदयस्तुति, ललितासहस्रनाम, तन्त्रराज, मातृकार्णव, त्रिपुरार्णव, चन्द्रज्ञान, सुन्दरीहृदय, नित्याषोडशिकार्णव, मातृकासम्मोहन, वामकेश्वरतन्त्र, प्रस्तारचिन्तामणि, मेरुप्रस्तार, तन्त्रराज, तन्त्रराजोत्तर, परानन्दतन्त्र, सौभाग्यकल्पद्रुम, सौभाग्यकल्पलतिका, ज्ञानार्णव, श्रीक्रमसंहिता, दक्षिणामूर्तिसंहिता, स्वच्छन्दतन्त्र, कालोत्तरवासना, श्रीपराक्रम, ललितार्चनचन्द्रिका, सौभाग्यतन्त्रोत्तर, सौभाग्यरत्नाकर, सौभाग्यसुभगोदय, शक्तिसङ्गमतन्त्र, त्रिपुरारहस्य, श्रीक्रमोत्तम, अज्ञातअवतार, सुभगार्चापारिजात, सुभगार्चारत्न, चन्द्रपीठ, सङ्केतपादुका, सुन्दरीमहोदय, हृदयामृत, लक्ष्मीतन्त्र, ललितोपाख्यान, त्रिपुरासारसमुच्चय, श्रीतत्त्वचिन्तामणि, विरूपाक्षपञ्चाशिका, कामकलाविलास, श्रीविद्यार्णव, शक्तिक्रम, ललितास्वच्छन्द, ललिताविलास, प्रपञ्चसार, सौभाग्यचन्द्रोदय, वरिवस्यारहस्य, वरिवस्याप्रकाश, त्रिपुरासार, सौभाग्यसुभगोदय, सङ्केतपद्धति, परापूजाक्रम, चिदम्बरनट ।

षोडशी या श्रीविद्या गायत्री का ही एक प्रच्छन्न रूप है । इसका परमरूप वासनात्मक है; सूक्ष्मरूप मन्त्रात्मक और स्थूलरूप कर चरण आदि वाला है । इसके बारह मुख हैं । इन मुखों से १२ साधकों—मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ, अगस्त्य, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द, शिव, क्रोधभट्टारक (= दुर्वासा) ने सिद्धि प्राप्त की थी और उनके द्वारा प्रवर्तित १२ सम्प्रदायों में से केवल 'मन्मथ' और 'लोपामुद्रा' सम्प्रदाय ही कुछ जीवित हैं । त्रिपुरा की मुख्य शक्ति भगवती मालिनी है । लोपामुद्रा के पिता 'भगमालिनी' के उपासक थे । त्रिपुरा की उपासना से लोपामुद्र ने ऋषित्व प्राप्त किया था और उसके पति अगस्त्य ने उससे दीक्षा ग्रहण की थी ।

४. भुवनेश्वरी—भुवनेश्वरी की उपासना का प्रमुख ग्रन्थ 'भुवनेश्वरीरहस्य' है । भुवनेश्वरीतन्त्र, भुवनेश्वरीपारिजात, भुवनेश्वरी उपनिषद् भी उपासना ग्रन्थ हैं । पुरश्चर्यार्णव, शाक्तप्रमोद, तन्त्राह्निक, देवीभागवत मे इस देवी की अर्चनविधि का वर्णन है ।

सत्ययुग के प्रारम्भ में ब्रह्मा की कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर आदि शक्ति महेश्वरी 'क्रोधरात्रि' नाम से उत्पन्न हुई । इनकी योनि में सम्पूर्ण विश्व विराजमान है। प्रलयकाल में यह विश्व उसी योनि में तिरोहित हो जाता है । इनकी साधना के अनेक मन्त्र हैं तदनुसार ध्यान भी अलग-अलग हैं ।

५. **भैरवी**—कालभैरव की भार्या भैरवी का वर्णन परशुरामकल्पसूत्र में मिलता है। भैरव के भरण, पोषण, रमण आदि समस्त गुण इनमें विद्यमान हैं। ज्ञानार्णव, शारदातिलक, मेरुतन्त्र आदि ग्रन्थों में इनके कई रूपों का उल्लेख है। भैरवीतन्त्र, भैरवीरहस्य, भैरवीरहस्यविधि, भैरवीसपर्याविधि आदि ग्रन्थ भी साधकों के सहायक हैं। 'भैरवीशिखा' मूल तन्त्र ग्रन्थ है जो चौंसठ शाक्त तन्त्रों में मुख्य माना जाता है। 'भैरवीयामल' में इनकी महिमा और उपासना का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

६. **छिन्नमस्ता**—एक बार महामाया अपने पति शिव के साथ शृङ्गारलीला करते-करते वितृष्ण हो गयीं। शुक्रक्षरण के बाद इनके शरीर से 'डाकिनी' और 'वर्णिनी' नाम की दो सखियाँ प्रकट हुईं। इन दोनों के साथ महामाया प्रात:काल पुष्पभद्रा नदी में स्नान करने लगीं। दोनों सखियों के बुभुक्षित होने पर उन्होंने अपने नखों से अपना शिर काट डाला और कबन्ध से नि:सृत दो रक्तधाराओं से उनकी भूख शान्त की। तीसरी धारा से अपने शिर को आप्यायित किया। तब से उनका नाम छिन्नमस्ता हुआ।

दरभङ्गा से १० कोश पूर्व 'सरिसव' गाँव में छ: सौ वर्षों से भी प्राचीन छिन्नमस्ता का मन्दिर है। इससे दो कोश पूर्व 'उजान' विख्यात गाँव में श्मशानालय में 'मुड़कट्टी देवी' के नाम से प्रसिद्ध छिन्नमस्ता की चार सौ वर्ष प्राचीन प्रस्तर की प्रतिमा विद्यमान है। यह अपनी उग्रता के लिये विख्यात है। बिहार में रायगढ़ तहसील के रजरप्पा गाँव में इनकी प्राचीन प्रतिमा अपनी फलसिद्धि एवं उग्रता के लिए प्रसिद्ध है। वाराणसी रामनगर के दुर्गामन्दिर के परिसर के एक कोने में भगवती छिन्नमस्ता की सङ्गमरमर की प्रतिमा शिवशिवा की विपरीत मैथुनमुद्रा के ऊपर विराजमान है। छिन्नमस्ता से सम्बद्ध कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिलता। शाक्तप्रमोद, पुरश्चर्यार्णव, आगमकल्पलता, शक्तिसङ्गमतन्त्र, मन्त्रमहोदधि आदि ग्रन्थों में इनकी उपासनाविधि आदि का वर्णन किया गया है। भैरवीतन्त्र, शाक्तप्रमोद एवं विश्वसारतन्त्र में इनका क्रमश: कवच, स्तोत्र, सहस्रनाम एवं शतनाम मिलते हैं।

७. **धूमावती**—इनकी उत्पत्ति दो रूपों मे वर्णित है। १. प्रजापति दक्ष के यज्ञ में सती के देहत्याग से उत्पन्न धूम से। २. कैलासगिरि पर पार्वती द्वारा शिव से भोजन माँगने पर शिव ने विलम्ब किया। फलस्वरूप पार्वती ने शिव को ही निगीर्ण कर लिया। एक क्षण बाद उनके (= पार्वती के) शरीर से धूम निकलने लगा। इसलिये वे धूमावती कहलायीं। धूमावती अपने पति शिव के निगरण के कारण विधवा हैं। शाक्तप्रमोद, मेरुतन्त्र तथा ऊर्ध्वाम्नाय में इनकी उपासना आदि मिलती है। फेत्कारिणीतन्त्र इनसे सम्बद्ध विशेष ग्रन्थ है। इसके

अतिरिक्त धूमावतीपञ्चाङ्ग, धूमावतीपूजाप्रयोग, धूमावतीपद्धति, धूमावतीपटल आदि ग्रन्थ भी द्रष्टव्य हैं। ऐसी जनश्रुति है कि धूमावती को सिद्ध करने वाला साधक धूमावती के सिद्ध होने पर उसके मन्त्र को जपता हुआ दातौन करता रहता है। एक निश्चित संख्या में जप के पूर्ण होने पर जब वह दातौन को दो टुकड़ों में चीर कर फेंकता है उसी समय जिसके नाम से वह मन्त्र जपा जा रहा होता है, वह व्यक्ति मर जाता है।

८. बगलामुखी—प्राणियों के शरीर से अथर्वा नामक अतीन्द्रिय प्राणसूत्र निकला करता है। यह श्वास की प्राण शक्ति में विद्यमान रहता है। इस अथर्वशक्ति को वेद में 'बल्गा'[१] कहते हैं। वर्णव्यत्यय के कारण यह बल्गा बगला हो गया। एक आख्यान के अनुसार सत्ययुग में एक बार झञ्झावात के कारण प्रलय उपस्थित होने पर विष्णु ने सृष्टि के रक्षार्थ हरिद्रावर्ण के सिद्ध कुण्ड में तपस्या की। पीतवस्त्रधारी विष्णु के तप से प्रसन्न भगवती श्रीविद्या उस जलकुण्ड में क्रीड़ा करने लगीं और सृष्टि की रक्षा हुई। यह महापीत ह्रद सौराष्ट्र में विद्यमान है। मध्यप्रदेश के दतिया क्षेत्र में भगवती पीताम्बरा की प्रस्तरप्रतिमा आराधित होती आ रही है। यह सिद्धभूमि पीताम्बरापीठ के नाम से विख्यात है। तीस पटलों वाले शाङ्खायन तन्त्र में ईश्वरक्रौञ्चभेदनसंवाद के रूप में इस महाविद्या का विशेष वर्णन मिलता है। इनके सम्बन्ध में बगलाक्रमकल्पवल्ली, बगलापञ्चाङ्ग, बगलापटल, बगलामुखीक्रम आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

९. मातङ्गी—ब्रह्मयामल के अनुसार अतिक्रूर विभूतियों के वशीकरणार्थ मतङ्ग ऋषि ने कदम्ब नामक वन में चिर तपस्या की। वहाँ भगवती त्रिपुरसुन्दरी के नेत्र से तेजःपुञ्ज उद्भूत हुआ। वही तेजःपुञ्ज भगवती मातङ्गी देवी के नाम से विख्यात हुआ। कुब्जिका तन्त्र के अनुसार मतङ्गासुर का वध करने तथा मदशीलत्व के कारण इस महाविद्या का नाम मातङ्गी पड़ा। पुरश्चर्यार्णव में इनके अनेक रूपों का वर्णन है। मातङ्गी, उच्छिष्टमातङ्गी, राजमातङ्गी, सुमुखीमातङ्गी, वश्यमातङ्गी, कर्णमातङ्गी, आदि इनके नामान्तर हैं। इनको महापिशाचिनी तथा उच्छिष्टचाण्डालिनी भी कहा जाता है। मातङ्गीक्रम, मातङ्गीपद्धति एवं दशमहाविद्या से सम्बद्ध अन्य ग्रन्थों में इनका वर्णन मिलता है।

१०. कमला—भगवती लक्ष्मी का ही दूसरा नाम कमला है। ब्रह्मा की तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु के वक्ष स्थल पर विराजमान कोलासुर का वध करने के लिए इनका आविर्भाव हुआ। 'कमलापद्धति' इनकी उपासना के लिए परम उपादेय ग्रन्थ है। शारदातिलक, पुरश्चर्यार्णव, शाक्तप्रमोद, आगमकल्पलता,

---

१. अथ कश्चिद् द्विषन् भ्रातृव्यः कृत्यां बल्गां निखनति। तामेवैतदुत्किरति।

लक्ष्मीपञ्चाङ्ग, लक्ष्मीपति, लक्ष्मीपूजाप्रयोग, लक्ष्मीयामल, लक्ष्मीपूजाविवेक आदि ग्रन्थ भी इनके सम्बन्ध में द्रष्टव्य हैं ।

सामान्य उपासना विधी

उपासना दो प्रकार की होती है—आभ्यन्तर या मानसिक और बाह्य । मानसिक उपासना में मन के ही अन्दर इष्ट देव की पूजा की जाती है । बाह्य उपासना में उनकी मूर्त्ति या चित्र रखकर उसकी पूजा की जाती है । यह बाह्य उपासन भी दो प्रकार की होती है—(१) सम्पदुपासना और (२) प्रतीकोपासना । बाह्य मूर्त्ति में इष्ट देव का आरोप कर की गयी इष्ट देव की पूजा सम्पदुपासना कही जाती है जैसा कि एकलव्य ने द्रोणाचार्य की प्रतिमा बना कर उपासना की थी । इस उपासना में आरोप्य इष्टदेव प्रधान होते हैं और मूर्त्ति गौण 'आरोप्य-प्रधाना सम्पत्' । प्रतीकोपासना मे आलम्बन रूप मूर्त्ति ही प्रधान होती है, इष्टदेव गौण रहते हैं 'आलम्बनप्रधानः प्रतीकः' । राजस्थान के एक ब्राह्मण शालिग्राम की प्रतीकोपासना करते थे । वे शालिग्राम को लालवस्त्र में वेष्टित कर कण्ठ में बाँधकर रखते थे । शौच काल को छोड़कर कभी भी वे शालिग्राम को अलग नही रखते थे । एक दिन लालवस्त्र में वेष्टित शालिग्राम को एक चील्ह ने मांसखण्ड समझ कर उठा लिया और उड़ गयी । ब्राह्मणदेवता ने अन्न जल त्याग दिया । जब तक भगवान् शालिग्राम नहीं आयेंगे हम अन्न जल नहीं लेंगे—उन्होंने प्रतिज्ञा की । अन्ततः तीसरे दिन एक चील्ह या वही चील्ह पण्डित जी के आँगन में शालिग्राम को वस्त्रसमेत गिरा गयी और ब्राह्मण का मनोरथ पूर्ण हुआ ।

उपर्युक्त दोनों उपासनायें लघु और वृहद् दो प्रकार की होती हैं । लघु उपासना पञ्चोपचार से की जाती है । ये पाँच उपचार हैं—गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य । वृहद् उपासना षोडशोपचार या अष्टादशोपचार से की जाती है । षोडश उपचार निम्नलिखित हैं—आसन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवद्य, माल्य और आरती । इसमें यज्ञोपवीत अथवा स्त्रीदेवता के लिये दुकूल और पुनः आचमन जोड़ने पर अष्टादशोपचार हो जाता है ।—

उपर्युक्त उपासना के अतिरिक्त राजोपचार से भी उपासना होती है । इसमें आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, आचमन, शुद्धोदक स्नान, दुग्धस्नान, दधिस्नान, घृतस्नान, मधुस्नान, शर्करास्नान, पञ्चामृतस्नान, इक्षुरस-स्नान, शुद्धोदकस्नान, सुगन्धिततैलस्नान, उद्वर्त्तनस्नान, सुगन्धितजलस्नान, शुद्धोदकस्नान, अङ्गप्रोक्षण वस्त्र, परिधानीय वस्त्र, उपवस्त्र, आचमन,

चरणपादुका, मण्डपप्रवेश, सिंहासन, केशवेष्टन, (स्त्रीदेवता हो तो सिन्दूर), ललाट में कुंकुम-बिन्दु, कज्जल, ओष्ठराग, हाथ में अलक्तक, पैर में राग अलक्तक, शिर से लेकर पैर तक नाना आभूषण, गन्ध, चन्दन, कुंकुम, श्वेतचूर्ण, रक्तचूर्ण, अबीरगुलाल, नाना परिमल द्रव्य, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, पूर्वामधुरपान, आचमन, ताम्बूल, पूगीफल, राजोचित दक्षिणा, आरती, नीराजन, प्रदक्षिणा, विशेषार्घ्य, मन्त्रपुष्पाञ्जलि, प्रार्थना, छत्र, चामर, आदर्श (= दर्पण), अस्त्र, शस्त्र, वाहन, सैन्य, नृत्यगीतवाद्य, साष्टाङ्ग प्रणाम— ये सब उपचार होते हैं । (इसकी बृहद् जानकारी के लिये विशिष्ट विद्वान् या किसी उपासना ग्रन्थ का सान्निध्य प्राप्त करना चाहिए ।)

उपासना प्रारम्भ करने के पूर्व द्विजाति के लिये सन्ध्या एवं तर्पण आवश्यक है । जिनके पिता माता जीवित हों उनको केवल देव तर्पण एवं ऋषि तर्पण करना चाहिये । पितृतर्पण नहीं करना चाहिये । देवालय, तीर्थ, नदी के किनारे या समुद्र के तट आदि स्थानों में सन्ध्योपासन करने के लिये स्थान शुद्धि आदि की आवश्यकता नहीं होती । यात्रा आदि में परिस्थितिवश जल न मिलने पर निरुदका (= जलहीन) सन्ध्या का भी विधान शास्त्रों में है । इसी प्रकार किसी देवालय आदि में पहुँचने पर स्थूल उपचार न रहने पर पञ्चमहाभूतों के प्रतीक स्वरूप बीजाक्षरों से उस देवता की पूजा का विधान है । यथा—

ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि .... देवतायै नमः ।

ॐ हं आकाशात्मकं पुष्प समर्पयामि .... देवतायै नमः ।

ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं आघ्रापयामि .... देवतायै नमः ।

ॐ रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि .... देवतायै नमः ।

ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि .... देवतायै नमः ।

ॐ यं रं लं वं हं सौः मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि .... देवतायै नमः ।

तान्त्रिक उपासना—तान्त्रिक उपासना प्रायः सकाम उपासना होती है । ऊपर वर्णित पूजापद्धति सब जगह अपनायी जा सकती है । किन्तु ऐहलौकिक विशिष्ट कामना की पूर्त्ति के लिये विशिष्ट सावधानी की आवश्यकता होती है । इस विषय में संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

औषधियाँ—तन्त्रशास्त्र में अलग-अलग प्रयोजन की सिद्धि के लिये विशिष्ट औषधियों के प्रयोग का विधान है । जल पत्र पुष्प आदि को लाने के लिये उनके स्थानों पर एक दिन पहले जाकर उनको अक्षत सुपाड़ी अर्पित कर निमन्त्रण देना चाहिये कि 'कल मैं आपको अमुक कार्य की सिद्धि के लिये ले

जाऊँगा ।' दूसरे दिन स्नान आदि से शुद्ध होकर वहाँ जाकर उनकी पुष्प आदि से संक्षिप्त पूजा करने के बाद उनका ग्रहण करना चाहिये । औषधि लेने से पहले पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर शङ्कर को प्रणाम कर वृक्ष या लता को प्रणाम कर पुन: उस औषधि को लें ।

बिल में, कूँये में उगी हुई, मार्ग में पड़ने वाले वृक्ष के नीचे उगी हुई, मन्दिर और श्मशान में उगी हुई औषधि त्याज्य है । सड़ी गली, जली, सूखी, कीड़ों से खायी गयी, आवश्यकता से कम या बहुत अधिक औषधि निष्फल होती है । औषधि लाने के दिन वृक्ष की जड में—

वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपा: ।
अपसर्पन्तु ते सर्वे वृक्षादस्मात् शिवाज्ञया ॥ (तं०वि०)

यह मन्त्र पढ़कर अभिमंत्रित करें । फिर हाथ जोड़कर

नमस्तेऽमृतसंभूते बलवीर्यविवर्धिनि ।
बलमायुश्च मे देहि पापान्मे त्राहि दूरत: ॥ (तं०वि०)

इस मन्त्र से नमस्कार करें । जिस प्रयोग में वृक्ष की जड़ काम में आती है उसमें यह मन्त्र बोलता हुआ धरती खोदे । मन्त्र है—

येन त्वां खनते ब्रह्मा येन त्वां खनते भृगु: ।
येन हीन्द्रोऽथ वरुणो येन त्वामपचक्रमे ॥
तेनाहं निखनिष्यामि मन्त्रपूतेन पाणिना ।
मा पाते मा निपतिते ते तेजो ह्यन्यथा भवेत् ॥
अत्रैव तिष्ठ कल्याणि मम कार्यकरी भव ।
मम कार्ये कृते सिद्धे तत: स्वर्गं गमिष्यसि ॥ (तं०वि०)

इस मन्त्र से 'ॐ ह्रीं चण्डे हुं फट् स्वाहा' कहकर जड़ उखाड़ लें । जड़ को काटते समय 'ॐ ह्रीं सः: फट् स्वाहा' इस मन्त्र का जप करते रहें ।

जिन वृक्षों का केवल बन्दा लेना हो, जैसे वट, पीपल, गूलर (जब एक पेड़ में दूसरा पेड़ उगता है तो उगा हुआ पेड़ बन्दा कहलाता है) का बन्दा लेते समय—

'वनदण्डे महादण्डाय स्वाहा,' तथा 'शूद्रीकपालमालिनी स्वाहा' इस मन्त्र को सात बार जप करने के बाद बन्दा ग्रहण करें । जितने बन्दे लेने हों उतने को ही लें । प्रत्येक बन्दा को सात-सात बार अभिमन्त्रित करके लेना चाहिए । इन्हें घर में लाकर किसी कपड़े या डिबिया में बन्द करके ऊंचे स्थान में रख लेना

चाहिए, जहाँ किसी और का हाथ न लगे तथा गन्दगी न हो पाये । वृक्ष के पञ्चाङ्ग, ऋतु, वार, तिथि आदि के बारे में शास्त्रों की व्यवस्था है कि शरद् व हेमन्त में त्वचा व जड़, शिशिर में फल, मूल और सार, वसन्त मे पुष्प व पत्र और ग्रीष्म में फल एवं बीज ग्रहण करने चाहिए । क्योंकि उस-उस समय उन-उन त्वचा आदि में अन्य कालों की अपेक्षा शक्ति अधिक हो जाती है । यद्यपि तन्त्र-शास्त्र में प्रयोज्य वृक्षों के पुष्प, फल एवं बीजादि उन्हीं ऋतुओं में आते हैं जिस ऋतु में वे ग्रहणीय होते हैं फिर भी व्यतिक्रम की अवस्था में उस समय ले लेने चाहिए जिस समय वह ऋतु हो और वे उपलब्ध हों । एक दिन-रात में भी छहों ऋतु आवर्तित होती हैं । जैसे उषःकाल पौ फटने तक हेमन्त, दोपहर के पहले वसन्त, मध्याह्न में ग्रीष्म, तीसरे पहर में वर्षा, प्रदोष (सूर्यास्त से पहले व बाद का समय) शिशिर और आधी रात में शरद् ऋतु मानी जाती है ।

अपने समय और वर्षा में वृक्ष बलवान रहा करते हैं । जड़ सूख जाने पर आधा बल रहता है । ग्रीष्म, वर्षा व शरद् में सम्पूर्णता रहा करती है । फल व बीज जब आते हों तब लेने चाहिए । वन के वृक्ष रात में और फल के वृक्ष दिन में बली होते हैं । स्वाभाविक है कि तान्त्रिक प्रयोग में बलवान् वृक्ष ही शक्तिशाली व उपयोगी होता है ।

तन्त्र के द्वारा सकाम उपासना करने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह जब तक कार्य करे अर्थात् प्रयोगरत रहे तब तक मनसा, वचसा, कर्मणा शुद्ध सात्त्विक, परोपकारी और निरहङ्कार रहे । प्रयोग के समय जो कुछ अनुभव हो वह अपने गुरु से ही कहे किसी दूसरे से नहीं । ऐसा करने के दो प्रयोजन हैं—गुरु को बतलाने पर वह साधक यह जान सकेगा कि उसकी साधना किस तरह की चल रही है, कैसे चल रही है, दूसरी बात यह है कि दूसरे व्यक्तियों को कहने से ऐसे अनुभव होने बन्द हो जाते हैं ।

प्रयोग काल में विचारशुद्धि और कर्मशुद्धि नितान्त आवश्यक है । वशीकरण या आकर्षण के प्रयोगों में साध्य की कामना अवश्य करनी चाहिए पर उत्तेजित नहीं होना चाहिए । विचारों का भोजन के साथ बड़ा गहरा सम्बन्ध रहता है—कहावत है—'जैसा खावे अन्न वैसा रहे मन ।' इसलिए शास्त्रकारों ने आहार के सम्बन्ध में स्पष्ट निर्देश दिए हैं । साधनाकाल में—भले ही वह किसी मन्त्र की उपासना हो या किसी तांत्रिक प्रयोग के लिए औषधि लाना हो—साधक को हल्के पदार्थ भोजन के काम में लाने चाहिए । कन्द, मूल, फल, शाक, दूध, सत्तू, जौ या भिक्षान्न खाने चाहिए । ये पदार्थ भी भरपेट नहीं खाने चाहिए । पहला ग्रास ब्राह्मण, दूसरा ग्रास गाय, तीसरा अतिथि और चौथा ग्रास बाल-बच्चों

के लिए निकालकर शेष वस्तु खानी चाहिए । गृहस्थ व्यक्ति आठ ग्रास खाए । एक ग्रास का प्रमाण मुर्गी के एक अण्डे के बराबर होता है ।

किसी भी प्रयोग के लिए विश्वास पहली सीढ़ी है, श्रद्धा दूसरी, गुरुपूजन तीसरी, सबके प्रति समानभाव और परोपकार चौथी, इन्द्रियों पर नियन्त्रण पाँचवीं, थोड़ा भोजन छठी सीढ़ी है । मतान्तर में मनःसंयम, पवित्रता, मौन, मन्त्र के अर्थ का चिन्तन, प्रसन्नता, अचञ्चलता आदि मन्त्रसिद्धि के साधक होते हैं । साधना काल में ब्रह्मचर्य से रहना शीघ्रफलप्रद रहता है किन्तु दीर्घकाल तक चलने वाले प्रयोगों में यदि शरीर-धर्म के कारण काम वासना से मन बार-बार उद्विग्न और विकृत हो रहा हो तो स्नान संस्कार आदि की हुई पत्नी के साथ रात में समागम करना ब्रह्मचर्य का उल्लङ्घन नहीं माना जाता ।

तन्त्र में जिन औषधियों का प्रयोग किया जाता है उन सब औषधियों के भिन्न-भिन्न देवता अधिष्ठाता होते हैं । इसलिए सब देवताओं के अधिष्ठाता और आगमप्रणेता योगिराज शङ्कर को नमस्कार अवश्य कर लेना चाहिए । जहाँ जिन प्रयोगों में देवता का पूजन किया जाता है, उस पूजन को अवश्य करना चाहिए । तांत्रिक प्रयोगों में इष्ट देवता और मन्त्र देवता का पूजन आवश्यक है । पूजा षोडशोपचार और पञ्चोपचार दोनों से की जाती है ।

फूल, फल को सामने की तरफ मुख करके ही देवता को अर्पित करना चाहिए । अञ्जलि में फूल भरकर अर्पण करने में फूलों के ऊर्ध्वमुख या अधोमुख होने का विचार नहीं किया जाता । दीपक के लिए व्यवस्था है कि तेल का दीपक देवता के बायीं ओर तथा घी का दाहिनी ओर अर्पित किया जाए । धूप, दीप और प्रसाद सामने की तरफ भी अर्पित किया जा सकता है । इस विधि में भी देवता की प्राणप्रतिष्ठा और मानवीकरण की भावना ही स्पष्ट है । भोजन दाहिने हाथ से किया जाता है, प्रकाश सामने रहना चाहिए अथवा दाहिनी ओर —ये सब सुविधा की दृष्टि से अनुकूल रहते हैं । कौन जाने इस शास्त्रीयनिर्देश के अनुसार ही हम सब अपने जीवन में भी इस व्यवस्था का पालन करते हैं ।

पुष्प भारतीय अनुष्ठान में महत्त्वपूर्ण वस्तु है । यह एक तरफ हमारे ऋषियों के प्रकृति-प्रेम को प्रदर्शित करता है, दूसरी ओर पुष्पों के वर्ण, गन्ध, आकार का सूक्ष्म तांत्रिक महत्त्व प्रकट करता है । वैष्णवी उपासना में भी फूलों का प्रयोग होता है । विष्णु की उपासना में सफेद और पीले फूल, सूर्य और गणेश की पूजा में लाल रंग के फूल उपयुक्त रहते हैं । देवी को तथा अन्य देवताओं को प्रयोजनानुसार पुष्प अर्पित किए जाते हैं । आक (= मदार) और धतूरे के फूल विष्णु को; केवड़ा, कुन्द, केसर शङ्कर को; दूब, आक, मन्दार,

तगर देवी को और तुलसी सूर्य तथा गणेश को भूलकर भी अर्पित न करें ।

कार्यों के अनुसार ऋतु विचार—वशीकरण और आकर्षण के प्रयोग चाहे वे मन्त्र के हों या तन्त्र के औषधि लाने व (कहीं विशेष समय दिया गया हो उनको छोड़कर) प्रयोग करने तक के सभी कार्य ग्रीष्म ऋतु में करने चाहिए । विद्वेषण और स्तम्भन वर्षाऋतु में, मारण शिशिर में और शान्तिकर्म शरदृऋतु में करना उत्तम है । विशेष परिस्थितियों में दिन के जिस प्रहर में वह ऋतु वर्तमान रहती है उसमें भी वह प्रयोग किया जा सकता है । मुख्य ऋतु के चलते रहने पर तत्सम्बन्धी प्रहर में वह समय अत्यन्त स्पष्ट व बलवान रहा करता है । यह सामान्य नियम है । जहाँ इसमें परिवर्तन अपेक्षित है वहाँ शास्त्रों में इसका स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है।

तिथि विचार—सप्तमी को वशीकरण, तृतीया एवं त्रयोदशी को आकर्षण, द्वितीया एवं षष्ठी को उच्चाटन, चतुर्थी एवं चतुर्दशी तथा प्रतिपदा को स्तम्भन, अष्टमी एवं नवमी को मोहन, एकादशी एवं द्वादशी को मारण कर्म तथा पञ्चमी एवं पूर्णिमा को अभिचार कर्म का विधान है ।

वार विचार—शुक्रवार को लक्ष्मी प्राप्ति के लिये, शनिवार को मोहन और वशीकरण, बुधवार को उच्चाटन, मङ्गलवार को विद्वेषण और रविवार को मारण कर्म करने चाहिए ।

ईप्सित तिथि व वार का संयोग हो रहा हो तो यह उत्तम मुहूर्त माना जाता है । तांत्रिकों ने नक्षत्रों को इन्द्र, वरुण, अग्नि और वायु मण्डलचारी के रूप में वर्गीकृत किया है । इस दृष्टि से ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़, अनुराधा, रोहिणी इन्द्रमण्डल; उत्तराभाद्रपद, मूल, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, अश्लेषा; वरुणमण्डल स्वाती, हस्त, चित्रा, मृगशिरा, उत्तरा फाल्गुनी, पुष्य, पुनर्वसु अग्निमण्डल और अश्विनी, भरणी, आर्द्रा, धनिष्ठा, श्रवण, मघा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी, रेवती वायुमण्डल में सञ्चरण करने वाले नक्षत्र कहलाते हैं ।

स्तम्भन, मोहन और वशीकरण इन्द्र और वरुणमण्डल के नक्षत्रों वाले दिन में करना ठीक रहता है । विद्वेषण तथा उच्चाटन अग्नि और वायु मण्डल के समय में करना शीघ्र फलकारक होता है ।

अंगूठे व तर्जनी (= अंगूठे के पास वाली पहली अंगुली) से शांति के कार्य करने चाहिए । अंगूठे और मध्यमा से पुष्टि तथा सम्पन्नता के कर्म एवं अंगूठे और अनामिका से अभिचार कर्म करने चाहिए । अंगूठा सब कार्यों में सफलता देने वाला माना गया है । इसके साथ अंगुली का संयोग प्रत्यक्ष रूप में शक्तियोग होता है ।

कामाख्या का इतिहास

पूर्वकाल में प्रयाग में एकत्र होकर मुनियों ने एक महान यज्ञ किया । इस यज्ञ में ब्रह्मा जी सपरिवार सम्मिलित हुए थे । अपने गणों को साथ लिए शिवजी भी सती सहित उसमें आए । भगवान् विष्णु ने भी लक्ष्मी जी के साथ भाग लिया। अन्यान्य देवता भी अपनी-अपनी पत्नियों के साथ उस यज्ञ में पधारे थे । एक बार शास्त्रों में ज्ञान काण्ड पर विचार हो रहा था । सभी ऋषि-मुनि वहाँ उपस्थित होकर उस विचार विनिमय में आनन्द लेकर अपने-अपने मत प्रकट कर रहे थे कि इतने में प्रजापतियों के स्वामी दक्ष भी वहाँ आ पहुँचे और वे केवल ब्रह्मा जी को प्रणाम कर, उनकी आज्ञा से अपने आसन पर बैठ गए । पुनः सभी ऋषि, मुनि, देवादि ने दक्ष की बड़ी पूजा की, परन्तु परम स्वतन्त्र लीलाविहारी महेश्वर अर्थात् शिवजी अपने आसन पर ही बैठे रहे । उन्होंने दक्ष को प्रणाम भी नहीं किया । इसे दक्ष ने अपना घोर अपमान समझा । वे क्रोध से तिलमिला उठे । उन्होंने सभी के मध्य में सबको सुनाते हुए शिवजी को बहुत दुर्वाच्य कहा कि यह पाखण्डी, दुर्जन, पापशील, ब्राह्मणनिन्दक, बड़ों का अनादर करने वाला और सर्वदा स्त्री में आसक्त रहने वाला है । सम्बन्ध से तो यह मेरा दामाद है, परन्तु इतना धृष्ट है कि अपने आसन से उठकर इसने मुझे प्रणाम तक नहीं किया । अतः मैं इसे बहिष्कृत करता हूँ । अब आज से यह देवताओं के साथ यज्ञ में भाग का अधिकारी नहीं होगा ।

यह सुनते ही नन्दीश्वर की आँखे लाल हो गईं । उन्होंने दक्ष को बहुत डाँटा फटकारा । दक्ष ने नन्दीश्वर और शिवजी के समस्त गणों को भी शापित किया । अब नन्दीश्वर को और भी क्रोध आ गया । उन्होंने उस महागर्वित दक्ष से कहा—हे दुष्टबुद्धे ! क्या तू शिवतत्त्व को नहीं जानता । रे मूर्ख ! यह जो तूने भृगु आदि ऋषियों के बीच में महाप्रभु भगवान् शङ्कर का उपहास किया है इससे शिवजी के प्रभाव से मैं भी तुम सबको शाप देता हूँ कि तुम सब ब्राह्मण वेद का वास्तविक अर्थ न समझकर केवल अर्थवाद पर ही विश्वास करोगे । जब नन्दीश्वर ने इस प्रकार ब्राह्मणों को शाप दे दिया तब वहाँ बड़ा हाहाकार मच गया । तब भगवान् शङ्कर नन्दीश्वर को समझाते हुए बोले कि हे महाप्राज्ञ ! तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिए । मैं ब्राह्मण और वेद को माननीय जानता हूँ अतः

इनको शाप नहीं देता । तुम यह बात यथार्थ में जान लो कि दक्ष का शाप मुझे नहीं लगा है । अब तुम शान्त हो जाओ । इस प्रकार नन्दीश्वर को शान्त कर शिवजी अपने सब गणों को साथ ले अपने धाम को चले गए । दक्ष प्रजापति भी मित्रों और ब्राह्मणों को साथ ले अपने स्थान को चले गये । इस प्रकार भगवान् शिव और प्रजापति दक्ष का विरोध हुआ जो दिनों-दिन बढ़ता गया। दक्ष शिव से बहुत ईर्ष्या करने लगे ।

दक्ष यज्ञ—इसी बात को लेकर कनखल नामक तीर्थ में प्रजापति दक्ष ने एक बहुत बड़े यज्ञ का आयोजन किया । उस यज्ञ में दक्ष ने भृगु आदि तपस्वियों को ऋत्विज बनाया । सभी गन्धर्वों, विद्याधरों, सिद्धगणों, यक्षों, आदित्यसमूहों और सभी नागों का दक्ष ने अपने इस महायज्ञ में वरण किया । अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव, भृगु, दधीचि, भगवान् व्यास, भरद्वाज, गौतम, पैल, पराशर, गर्ग, भार्गव, ककुपसित, सुमन्तु, त्रिक, कङ्क और वैशम्पायन आदि सभी ऋषि मुनि उस यज्ञ में आए । त्रिमूर्तियों में ब्रह्मलोक से ब्रह्मा सपरिवार और वैकुण्ठ से श्री विष्णु जी अपने पार्षदों और परिवारसहित आए । इसी प्रकार अन्यान्य देवता भी सपरिवार दक्ष के यज्ञ में पधारे । परन्तु दक्ष ने उस यज्ञ मे शिवजी को निमन्त्रित नहीं किया । अपनी ईर्ष्या के कारण उसने यह तर्क दिया कि वे कपालधारी हैं । यहाँ तक कि उन्होंने अपनी प्रिय पुत्री सती को भी यही कहकर नहीं बुलाया कि वह कपाली की भार्या है ।

जब इस प्रकार यज्ञ आरम्भ हुआ तब उसमें भगवान् शिव को न आया देख दधीचि ने सब देवताओं और ऋषियों से पूछा कि इस महायज्ञ में भगवान शिव क्यों नहीं आए ? दधीचि का यह वाक्य सुनकर मूढ़बुद्धि दक्ष ने मुस्करा कर कहा कि देवताओं के मूल श्री विष्णु जी तो आ ही गए हैं, फिर शिव की इस यज्ञ में क्या आवश्यकता है? यह कहो कि मैंने ब्रह्मा जी के कहने से उसे अपनी कन्या दे दी, नहीं तो अकुलीन, माता-पिता से रहित, भूत-प्रेतों के स्वामी, आत्माभिमानी, मूर्ख, स्तब्ध, मौनी और ईर्ष्यालु को कौन पूछता? वह इस यज्ञ कर्म के कदापि योग्य नहीं है और इसीलिए मैंने उसे नहीं बुलाया है । मेरे इस यज्ञ को तो आप सब मिलकर सफल बनाएँ ।

दक्ष के ऐसा कहने पर दधीचि ने सब मुनियों को सुनाते हुए कहा कि आप लोग चाहे जो कहें पर भगवान् शिव के बिना तो यह यज्ञ अपूर्ण ही रहेगा और इस अनर्थ से आप सब नाश को प्राप्त होगें । ऐसा कहकर दधीचि ऋषि उस यज्ञ भूमि से अकेले ही निकल कर अपने आश्रम को चल दिए । प्रजापति दक्ष को हँसी आ गयी । उन्होंने अन्य ऋषियों एवं मुनियों से कहा कि ये दधीचि शिव-भक्त थे, चले गये, अच्छा ही हुआ । मैंने शिव तथा शिव भक्तों को

बहिष्कृत कर दिया है अतः बहिष्कृतों को मैं अपने यज्ञ में चाहता ही नहीं। विष्णु आदि सभी देवता तथा आप सब लोग वेद के वक्ता हैं, मेरे यज्ञ को सफल बनाइए। होनी तो होकर रहती है, अतः दक्ष की इस बात को सुनकर उन लोगों ने देवताओं की पूजा आरम्भ करा दी।

सती का दक्ष के यज्ञ में आना—सती देख रही थी कि सभी देवता तथा ऋषिगण अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर सपरिवार जा रहे हैं। सती को नारद जी ने भी उनके पिता के यज्ञ करने का समाचार दिया। फिर, जिस समय देवता और ऋषिगण उस यज्ञ में हँसते-बोलते हुए जा रहे थे, उस समय दक्षपुत्री सती अपनी सखियों के साथ गन्धमादन पर्वत पर धारागृह में कौतुकपूर्वक अनेक क्रीड़ाएँ कर रही थीं। उस समय सती ने देखा कि रोहिणी और चन्द्रमा भी दक्ष के यज्ञ में जा रहे हैं। रोहिणी भी दक्ष की कन्या है और चन्द्रमा उनके जामाता हैं। तब सती ने अपनी विजया नामक सखी से पूछा कि रोहिणी के साथ चन्द्रमा कहाँ जा रहे हैं तो सती के वचन सुनकर विजया शीघ्र ही चन्द्रमा के पास गयी और उनसे पूछा। चन्द्रमा ने विजया को दक्षयज्ञ महोत्सव का पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुन विजया ने आकर जो चन्द्रमा ने उससे कहा था, सती से कह दिया। यह सुन सती देवी अत्यन्त विस्मित हुईं और बार-बार शिवजी के लिए आमन्त्रण न आने का कारण विचार कर हृदय में चिन्ता करने लगीं। वह शिव के पास आईं और बोलीं कि मैंने सुना है कि मेरे पिता ने एक महायज्ञ रचा है, वहाँ इस समय बड़ा उत्सव हो रहा है। सभी ऋषिगण उसमें एकत्र हुए हैं। सम्भवतः आपको मेरे पिता का यज्ञ नहीं अच्छा लगता है, आप इसका कारण मुझे शीघ्र बताइए। सब काम छोड़ आप मेरी प्रार्थना से मेरे पिता के यज्ञ में चलिए। सम्बन्धियों का यही धर्म है कि समय पर प्रेम बढ़ाने के लिए उनके समीप जाँयें।

सती के ये वचन शिवजी के हृदय में बाण से लगे। फिर भी वे इस प्रकार मधुर वचनों में बोले कि हे देवि! तुम्हारे पिता दक्ष मुझसे विशेष वैमनस्य रखते हैं। इसी कारण उन्होंने मुझे निमन्त्रण नहीं दिया और जो बिना बुलाए दूसरों के घर आते हैं वे मरण से भी अधिक अपमान पाते हैं। इस कारण हमें और तुम्हें दक्ष के यज्ञ में नहीं जाना चाहिए। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि बाणों से विद्ध होने पर भी मनुष्य का हृदय इतना व्यथित नहीं होता जितना अपने सम्बन्धियों के आक्षेप और तीखी बातों से दुःखी होता है। यह सुन सती क्रुद्ध हो गईं और शिवजी से बोलीं—हे शम्भो! आप ही से यज्ञ सफल होता है। परन्तु इस पर भी मेरे दुष्ट पिता ने आपको नहीं बुलाया। अत एव मैं दुरात्मा अपने पिता और यज्ञ में आए दुरात्मा देवताओं और ऋषियों का यह

अभिप्राय जानना चाहती हूँ कि उन्होंने ऐसा क्यों किया । हे नाथ ! इसके लिए मैं अपने पिता के यज्ञ में जाती हूँ । हे परमेश्वर ! आप मुझे इसकी आज्ञा दीजिए ।

सती जी का यह दृढ़ विचार देख सर्वज्ञ भगवान् शङ्कर बोले—हे देवि ! यदि तुम्हारी वहाँ जाने की इच्छा है तो मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम अपने पिता के यज्ञ में जाओ । अपने सब आभूषण पहनकर नन्दीश्वर नामक मेरे बैल को सजाकर; इस पर चढ़कर महाराजाओं के ठाट-बाट से जाओ । शिवजी ने इस प्रकार कहा तब सती वस्त्राभूषण धारण कर पिता के घर को चल दीं ।

सती का अपमान—जहाँ दक्ष का विशाल यज्ञ हो रहा था, सती वहाँ जा पहुँची । सती को आई हुई देख कर उनकी माता ने तो यथोचित सत्कार किया, परन्तु बहिनों ने बड़ा अपमानजनक नाक-भौं सिकोड़ा । पुनः दक्ष तथा उसके अनुयायियों ने भी उनका आदर नहीं किया । बड़े दुःखी हृदय से सती ने माता-पिता दोनों को समान रूप से प्रणाम किया । तत्पश्चात् वे यज्ञ मण्डप में जा पहुँची । यज्ञ में विष्णु आदि सब देवताओं का पृथक्-पृथक् भाग देखा परन्तु शम्भु का भाग कहीं भी दिखाई न दिया । इससे सती को बड़ा क्रोध आया । फिर तो वे सभी को क्रूर दृष्टि से देखते हुए बोलीं कि हे पिताजी ! आपने भगवान् शङ्कर को क्यों नहीं बुलाया ? वे तो स्वयं 'यज्ञस्वरूप', 'यज्ञाङ्ग' और 'यज्ञों के दक्षिणास्वरूप' हैं । बिना उनके आए आपने इस यज्ञ का सम्पादन ही कैसे कर लिया ? क्या आप शङ्कर को कोई सामान्य देवता समझते हैं ? यह आपने उनका अपमान किया है । हे नीच पिता ! आज आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है । तभी तो इस समय आपने उन आदि-देव और देवों के देव भगवान् शङ्कर को नहीं पहचाना । फिर ये ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता और मुनीश्वर भी बिना शिवजी के तुम्हारे इस यज्ञ में सम्मिलित कैसे हुए ? इस प्रकार कहकर शिवस्वरूपा सती ने सब देवताओं को धमकाया और विष्णु जी को तो उन्होंने बहुत लज्जित किया । तब दक्ष अपनी पुत्री के वचन सुनकर क्रुद्ध हो उन्हें वक्र दृष्टि से देखते हुए बोले—हे भद्रे ! बहुत कहने से क्या लाभ ? तू यहाँ चली क्यों आई ? चाहे यहाँ रह चाहे चली जा । मुझसे तेरा कोई प्रयोजन नहीं । तेरा पति तो भूतों का राजा है, जो वेदबहिष्कृत, अकुलीन और अमाङ्गलिक है । इसी कारण तेरे कुवेषधारी पति शिव को मैंने यज्ञ में नहीं बुलाया ।

फिर तो जगत् को उत्पन्न करने वाली देवी अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने पिता से इस प्रकार बोली—'हे पिता ! जो शिव की निन्दा करता है अथवा सुनता है वे दोनों ही नरकगामी होते हैं । अपने स्वामी का अपमान सुनकर मेरे जीने से ही क्या लाभ ? अतएव मैं अग्नि में प्रवेश कर इस शरीर का त्याग करती हूँ ।'

सती का देहत्याग—इतना कहकर सती शङ्कर का स्मरण करती हुई उत्तराभिमुख होकर बैठ गयीं और आचमन कर नेत्र बन्द कर लिए तथा शरीर त्यागने की इच्छा से योगाग्नि द्वारा शीघ्र ही अपने शरीर को भस्म कर डाला। फिर तो आकाश और भूमि पर देवताओं और मुनियों को भयभीत करने वाला अद्भुत हाहाकार मच गया। उधर सती के प्राण छोड़ते ही शिवजी के गण हाथ में शस्त्र लेकर उठ खड़े हुए और सब ओर प्रलय मचाने लगे। उनके इस आक्रमण को देख विघ्नों की शान्ति के लिए महर्षि भृगु वेदमन्त्रों से अग्नि की आहुतियाँ देने लगे जिससे महाबलशाली ऋभु नामक बहुत से असुर उत्पन्न हो गए। उनसे शिवगणों का युद्ध होने लगा। उन्होंने शिवजी के गणों की शक्ति क्षीण कर दी और ये गण शिवजी के पास भाग गये।

आकाशवाणी—ठीक इसी समय दक्ष आदि देवताओं को सुनाते हुए यह आकाशवाणी हुई कि हे मूर्ख दक्ष! तूने यह बहुत बड़ा अनर्थ किया है। अपने घर में स्वत: आई हुई, साक्षात् मङ्गलस्वरूपा अपनी पुत्री सती का तूने अपमान किया है। रे मूर्ख! तूने सती और शङ्कर का पूजन नहीं किया। तुझे तो शङ्कर की अर्द्धांगिनी सती का आदर ही करना उचित था। वह अनादि शक्ति, जगत् की स्रष्ट्री, रक्षिका और संहारिका हैं। इस प्रकार भगवान् शङ्कर ही सबके स्वामी और सब देवों के कल्याणकर्त्ता हैं जिनके दर्शन मात्र से यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है। परन्तु तुझ दुष्ट ने उनका सत्कार नहीं किया। इस कारण तेरा यज्ञ नष्ट हो जाएगा क्योंकि जहाँ पूज्यों की पूजा नहीं होती वहाँ अमङ्गल ही होता है। रे दक्ष! जो तू यह समझता था कि शङ्कर की पूजा किए बिना ही तू अपना कल्याण कर लेगा, अब तेरा वह गर्व चूर्ण-चूर्ण हो जाएगा। सर्वेश्वर शिव और परमेश्वरी शिवा से विमुख होने पर कोई भी देवता तेरी सहायता करने योग्य नहीं रह जायेगा। इस आकाशवाणी को सुन सभी देवता और मुनि आश्चर्य करने लगे तथा भविष्य की आशङ्का से ग्रस्त होकर चिन्तामग्न हो गये।

वीरभद्र और महाकाली की उत्पत्ति—इधर भृगु के मन्त्रों से उत्पन्न भृगु गणों द्वारा मार भगाए गए शिवजी के गण उनकी शरण में पहुँचे और सती के शरीरत्याग आदि का सारा वृत्तान्त उनसे कह सुनाया। उसे सुन शिवजी के क्रोध का अन्त न रहा। लोकसंहारकारी शङ्कर ने अपनी एक जटा उखाड़ कर उसे एक पर्वत पर दे मारा जिससे उसके दो खण्ड हो गए। जटा के एक खण्ड से प्रलयकाल के समान एक भयङ्कर शब्द के साथ महाबलशाली वीरभद्र उत्पन्न हुए। जटा के दूसरे भाग से अत्यन्त भयङ्कर और करोड़ों भूतों से घिरी हुई महाकाली उत्पन्न हुई। तदनन्तर वीरभद्र ने शिवजी को प्रणाम करने के पश्चात् हाथ जोड़ निवेदन किया कि 'हे प्रभो! मैं क्या करूँ? मुझे शीघ्र ही आज्ञा

दीजिए । यदि आप कहिए तो मैं क्षण भर में ही समुद्र को सोख डालूँ, पर्वतों को चूर्ण कर दूँ, ब्रह्माण्ड को भस्म कर डालूँ अथवा देवताओं और मुनीश्वरों को भस्म कर दूँ । आपकी कृपा से मेरे लिए कोई कार्य करना अशक्य नहीं है ।' यह सुन मङ्गलापति भगवान् शिव किंचित् सन्तुष्ट हुए और वीरभद्र को आशीर्वाद देकर बोले—हे तात वीरभद्र ! ब्रह्मा का पुत्र दुष्ट दक्ष एक यज्ञ कर रहा है जो बड़ा अहङ्कारी और विशेषकर मेरा विरोधी है । तुम जाकर उसके यज्ञ का विध्वंस कर डालो और देवता, यक्ष, गन्धर्व कोई भी वहाँ हो तो आज उन सबको भस्म कर दो तथा ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, यम कोई भी बचने न पाये । तुम्हारे वहाँ पहुँचने पर विश्वेदेवा आदि तुम्हारी स्तुति करेंगे । परन्तु तुम उन्हें भी भस्म करके शीघ्र ही मेरे पास चले आना । जो देवता दधीचि ऋषि के कहने पर भी मेरे विरोधी बने वहाँ बैठे रहे और बैठे हैं उन्हें आकुल कर अग्नि में जला डालना और हे वीर ! दक्ष को तो उसकी पत्नी और बान्धवों सहित जला देने के पश्चात् जल में तिल मिलाकर तिलाञ्जलि दे आना । वीरभद्र से ऐसा कहकर क्रोध से आँखें लाल किए हुए भगवान् शङ्कर मौन हो गए ।

अब शिवजी को प्रणाम कर वीरभद्र अन्य प्रबल गणों और देवियों को साथ लेकर दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने चल पड़े । जैसे ही वीरभद्र पहुँचे, वैसे ही इन्द्र, विष्णु आदि सभी देवताओं का परिहास किया तथा युद्ध के लिए ललकारा । फिर एक-एक करके सभी देवताओं को उन्होंने अपने त्रिशूल से मार घायल कर पृथ्वी पर गिरा दिया । अब इस भयानक मार से सब देवता भाग चले ।

वीरभद्र का युद्ध और यज्ञविध्वंस—इसके बाद अपने गणों सहित वीरभद्र यज्ञमण्डप में पहुँचे । युद्ध से भागे देवता भी यह समाचार देने के लिए पहले ही विष्णु के पास पहुँचे और कहा कि हे रमानाथ! जैसे भी हो इस यज्ञ की रक्षा कीजिए । तब ऋषियों के ऐसा कहने पर विष्णु जी वीरभद्र से युद्ध करने के लिए चले । उन दोनों का बड़ा भयङ्कर तथा लोमहर्षक युद्ध हुआ । उस युद्ध में वीरभद्र ने भगवान् शङ्कर का स्मरण कर विष्णु के सभी पार्षदों को अपने त्रिशूल से मार-मार कर धराशायी कर दिया । पुनः विष्णु के वक्षस्थल में त्रिशूल मारा, इससे विष्णु मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े । पुनः होश आने पर उठकर अपना सुदर्शन चक्र ले वीरभद्र को मारने दौड़े । परन्तु वीरभद्र ने अपने अद्भुत तेज से चक्र को वहीं रोक दिया । वह विष्णु के हाथ में ही रह गया । विष्णु भी वहीं रुके रह गए । उनका स्तम्भन हो गया । यह देख याज्ञिकों ने यज्ञमन्त्रों का प्रयोग कर विष्णु का स्तम्भन छुड़ाया । पुनः विष्णु ने अपना शार्ङ्ग धनुष उठा उस पर बाण चढ़ाया । तब तक वीरभद्र ने तीन बाण मार कर उनके धनुष के तीन टुकड़े कर दिए । अब ब्रह्मा ने विष्णु को शिवजी के उस महागण का

परिचय दिया । विष्णु भी उस वीर को असह्य और अजेय जानकर अन्तर्हित हो अपने लोक को चले गए और ब्रह्मा भी पुत्र शोक से पीड़ित ब्रह्मलोक को चल दिए तथा सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए ।

तब ब्रह्मा और विष्णु दोनों के चले जाने पर वीरभद्र ने सबको जीत कर भृगु रूप धारण कर भागते हुए यज्ञ भगवान् को पकड़ा और उनका सिर काट डाला तथा प्रजापति, धर्म, कश्यप और अरिष्टनेमि आदि मुनियों को पकड़कर उन्हें लातों से मारा । देवमाता सरस्वती की नाक अपने नखों के अग्रभाग से काट डाली और अन्य देवताओं को भी पृथ्वी पर पटक-पटक कर मारा । मणिभद्र नामक प्रतापी गण ने भृगु जी की छाती पर पैर रखकर उनकी दाढ़ी उखाड़ डाली । पूषा शिवजी के शापित होने पर हँसे थे इसलिए चण्ड नामक गण ने उनके दाँत उखाड़ लिए । भग देवता की आँखें फोड़ डाली । फिर शिवजी के कुपित गणों ने दक्ष के यज्ञ में मलमूत्र की वर्षा कर उसे भ्रष्ट कर दिया और जो दक्ष यज्ञवेदी के भीतर जा छिपा था उसे वहाँ से पकड़ वीरभद्र ने उसकी छाती पर चढ़कर हाथ से ही उसका शिर मरोड़ कर तोड़ डाला और अग्नि कुण्ड में फेंक दिया ।

इस प्रकार शिवजी के आदेशानुसार सब कार्य कर वीरभद्र कैलास जा पहुँचे और सारा समाचार शिवजी से निवेदन किया । शिवजी ने प्रसन्न हो उन्हें अपने गणों का नायक बना दिया ।

ब्रह्मा का [illegible]—इधर जब रुद्र की सेना से घायल देवताओं ने ब्रह्मा जी के पास जाकर दक्ष के यज्ञविध्वंस का समाचार कहकर दक्ष के मारे जाने का समाचार दिया तो उनको बड़ा क्रोध हुआ । ब्रह्मा सोचने लगे कि अब देवताओं को सुखी करने के लिए मैं क्या करूँ कि दक्ष भी जीवित हो जाए और उसका यज्ञ भी पूर्ण हो जाए । ऐसा सोचकर ब्रह्मा जी लक्ष्मीजी सहित विष्णु का ध्यान करने लगे जिससे उनको ज्ञान हुआ । जब वे बैकुण्ठ लोक को गये और विष्णु भगवान् की स्तुति की तो उन्होंने ब्रह्मा से कहा कि दक्ष ने बहुत बड़ा अपराध किया जो अपने यज्ञ में शिवजी को भाग नहीं दिया, साथ ही परमेश्वरी सती का अपमान किया जिसके लिए हम सभी देवता शिवजी के अपराधी हैं । अत एव अब आप, हम और सभी देवता शिवजी की शरण में जाकर उनका चरण पकड़ उन्हें प्रसन्न करें, तभी शान्ति होगी, अन्यथा प्रलय उपस्थित हो जाएगा । ऐसा परामर्श कर भगवान् विष्णु, ब्रह्मा जी तथा अन्यान्य देवता कैलास पर गये । अलकापुरी से आगे उस विशाल वटवृक्ष के पास ये लोग पहुँचे जहाँ दिव्य योगियों से सेवित श्रेष्ठ शिवजी विराजमान थे । उनके चारों ओर उनके गण और यज्ञों के स्वामी कुबेर विराजमान थे । तब उनके निकट पहुँचकर विष्णु आदि

समस्त देवताओं ने बार-बार नमस्कार कर उनकी अनेक विभूतियों और नामों के सहित उनकी स्तुति की और कहा कि हे दयासागर ! हे महेश्वर ! आपकी कृपा के बिना हम सब नष्ट-भ्रष्ट हो गए हैं । अब हम आपकी शरण आये हैं, आप प्रसन्न होकर हमारी रक्षा कीजिये । हे शङ्कर ! हमें अनेक आपत्तियों से बचाइए ! हे नाथ ! आप प्रसन्न होकर दक्ष के यज्ञ को पूर्ण करें । भृग देवता की पहले जैसी आँखें हो जाएँ, यजमान जीवित हो, पूषा के दाँत उत्पन्न हो जाएँ तथा भृगु की दाढ़ी फिर पहले के ही समान ठीक हो जाए । आपकी कृपा से इन देवताओं को आरोग्यलाभ हो । हम लोग इस अवशिष्ट यज्ञ कर्म में आपको भाग देंगे । इस प्रकार सभी देवता श्री विष्णु सहित शिवजी के चरणों में प्रणाम करके बारम्बार स्तुति करने लगे ।

चतुर्भुज विष्णु आदि सभी देवताओं के इस प्रकार की स्तुति से भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो देवताओं को धैर्य बँधाते हुए बोले कि हे देवो! सुनो, मैं तुम पर क्रुद्ध हूँ फिर भी तुम सबको क्षमा करता हूँ । दक्ष के यज्ञ का मैंने विध्वंस नहीं किया है । जो दूसरों का बुरा चाहता है उसी का बुरा हो जाता है । देखो दक्ष ही उस यज्ञ का शिर है, अत एव उसका बकरे जैसा शिर होगा । भृग देवता सूर्य के नेत्र से यज्ञ भाग को देखेंगे तथा पूषा के टूटे हुए दाँत ठीक हो जाएँगे और यजमान के दिए हुए यज्ञ के भाग का उपयोग कर सकेंगे—यह मैं सत्य कहता हूँ । मेरा विरोधी भृगु बकरे की सी दाढ़ी पाएगा और मेरे गणों द्वारा मारे गए देवताओं के टूटे हुए अङ्ग भी ठीक हो जाएँगे और सभी अध्वर्यु प्रसन्न होंगे ।

शिव द्वारा दक्ष को जीवनदान—यह कहकर वेदों के अनुसरणकर्त्ता, परम दयालु, चराचरपति, भगवान् शङ्कर मौन हो गए । तब उनका यह कहना सुन देवताओं को बड़ी प्रसन्नता हुई तथा सबने शिवजी को धन्यवाद दिया । पुनः देवर्षियों सहित शिवजी को उस यज्ञ में आने के लिए आमन्त्रित कर ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त देवगण कनखल नामक स्थान में गये, जहाँ दक्ष ने यज्ञ का आरम्भ किया था । भगवान् शङ्कर ने वहाँ पहुँच कर वीरभद्र द्वारा नष्ट यज्ञ का निरीक्षण किया और देखा कि स्वाहा, स्वधा, पूषा, दृष्टि, धृति, सरस्वती और सभी ऋषि, पितर सभी टूटे-फूटे अङ्ग लिए विकल हैं और कोई मरे हुए पड़े हैं । यज्ञ की यह दशा देखकर वीरभद्र को बुला भगवान् शङ्कर ने हँसकर उससे कहा कि यह तुमने क्या किया, ऋषियों को इतना कठिन दण्ड इतने शीघ्र दे डाला । अच्छा तो अब तुम शीघ्र ही दक्ष का मृत शरीर यहाँ ले आओ । वीरभद्र ने शीघ्र ही शिररहित दक्ष का शरीर उनके सामने रख दिया । तब उसे शिररहित देख शिवजी ने पूछा कि इसका शिर कहाँ है? वीरभद्र ने सविनय उत्तर दिया कि उसे तो मैंने

पहले ही अग्नि में हवन कर दिया है । अब शिवजी ने देवताओं से कहा—देखो, मैंने जो पहले कहा था वही हुआ । पुनः भगवान् शङ्कर ने यथोचित पशु अर्थात् बकरे का शिर लेकर प्रजापति दक्ष के धड़ से जोड़ दिया और ज्यों ही कृपादृष्टि से देखा वह जीवित होकर उठ बैठा । उसने उठते ही प्रसन्नचित्त हो भगवान् शङ्कर का दर्शन किया जिसके फलस्वरूप उसका कलुषित हृदय निर्मल हो गया । फिर उसने भगवान् शिव की विनम्र भाव से स्तुति की । ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि देवताओं ने भी भावविह्वल होकर शङ्कर जी की स्तुति की ।

शिवजी की विनम्रता—इसके बाद अत्यन्त दुखित और उदास भगवान् शङ्कर उस यज्ञशाला में गए । वहाँ उन्होंने देखा कि सती का चिन्मय शरीर अग्नि में जल गया है, उसे देखते ही 'हा सती' ऐसा बार-बार पुकारते हुए भगवान् शिव ने उस मृत शरीर को उठाकर अपने कन्धे पर रख लिया तथा विक्षिप्त से होकर इधर-उधर देश-देश में भटकने लगे । इससे संसारचक्र रुक गया और प्रलय सा दृश्य आसन्न हो गया ।

विष्णु द्वारा सती के अंगों को काटना —भगवान् शिव की विक्षिप्तचित्तता को देख कर अब ब्रह्मा आदि देवताओं के मन में अत्यन्त भय और चिन्ता समा गयी । वे सब भगवान् विष्णु से प्रार्थना करने लगे कि हे भगवान् ! अब कोई ऐसा उपाय करें कि शिव सती को भूलकर पूर्ववत् हो जाएँ । भगवान् ने मुस्करा कर कहा कि हे देवताओं ! न तो शिव को सती भूल सकती है और न ही सती को शिव । ये दोनों अब भी एक हैं । ऐसा कह शिव-शिवा का स्मरण कर तुरन्त उन्होंने अपने सुदर्शन चक्र से भगवती सती के अङ्गों को काट डाला जिससे वे अङ्ग छिन्न-भिन्न होकर अनेक स्थानों पर जा गिरे । जहाँ कहीं वे शरीर-खण्ड गिरे वहीं शङ्कर जी की अनेक मूर्तियाँ प्रकट हो गयीं ।

शिवद्वारा देवीपीठों की मान्यता- शिव ने देवताओं से कहा—जो इन स्थानों पर भक्तिपूर्वक भगवती शिवा की उपासना करेंगे, उनके लिए संसार में कोई भी पदार्थ दुष्प्राप्य नहीं होगा । क्योंकि जहाँ-जहाँ शक्ति ने अपने शरीर-खण्ड का त्याग किया है वहाँ-वहाँ जगदम्बा निरन्तर निवास करेंगी और वे स्थान 'सिद्ध देवी पीठ' के नाम से प्रसिद्ध होंगे । और उन पीठों में काशी तथा कामाख्या प्रमुख होंगे । इन सभी स्थानों (= पीठों) में रहकर जो मनुष्य पुरश्चरण (= विशेष प्रकार का अनुष्ठान) करेंगे, उनके मन्त्र के सिद्ध होने में कोई सन्देह नहीं रहेगा । इतना कहने के बाद विरह से अधीर हो भगवान् शिव ने उन-उन स्थानों में जप, ध्यान तथा समाधि के द्वारा समय व्यतीत किया । जिन-जिन पीठों में देवी के जो-जो अङ्ग गिरे उनके नाम के साथ तथा जो शङ्कर (भैरव) वहाँ प्रकट हुए उनका वर्णन इस प्रकार है—

बावन शक्ति-पीठ

क्र. सं.	स्थान का नाम	देवी के अङ्ग	देवी तथा भैरव (शिव) का नाम
१.	हिंगुला	सती का ब्रह्मरन्ध्र	देवी कोटारी एवं भीमलोचन भैरव ।
२.	शर्कराय (करबीये)	तीनों चक्षु	देवी महिषमर्दिनी व क्रोधीश भैरव ।
३.	सुगन्धाय	नासिका	देवी सुगन्धा और त्र्यम्बक भैरव ।
४.	काश्मीर	कण्ठ	देवी भगवती व महामाया और त्रिसन्ध्येश्वर अमरनाथतीर्थ भैरव ।
५.	ज्वालामुखी	जिह्वा	देवी अम्बिका और उन्मत्त भैरव ।
६.	जालन्धर	वाम स्तन	देवी त्रिपुरमालिनी एवं भीषण भैरव।
७.	वैद्यनाथ	हृदय	देवी जयदुर्गा और भैरव वैद्यनाथ ।
८.	नेपाल	दोनों जाँघे	देवी महामाया और कपाली भैरव ।
९.	मानव क्षेत्र	बाएँ हाथ का आधा भाग	देवी दाक्षायणी और अमर भैरव ।
१०.	उत्कल (विराज क्षेत्र)	नाभि	देवी विमला और जगन्नाथ भैरव ।
११.	गण्डकी नदी का मध्य	दाहिना गाल	देवी गण्डकी चंडी और चक्रपाणि भैरव ।
१२.	बेहुलाय	वाम बाहु	देवी बहुला और भीरुख भैरव । (कटवा पश्चिम में केतु ग्राम-जिला बर्दवान)
१३.	उज्जयिनी	दक्षिण कोहनी	देवी मङ्गलचण्डी और कपिलाम्बर भैरव ।
१४.	चटगाँव	दाहिने हाथ का आधा भाग	देवी भवानी और चन्द्रशेखर भैरव ।
१५.	करनाट	दोनों कान	देवी जयदुर्गा और अभीरुख भैरव ।
१६.	त्रिपुरा	दाहिना चरण	देवी त्रिपुरसुन्दरी और त्रिपुरेश भैरव। (यह स्थान भी कामरूप देश में ही

			है और कामाख्या योनिमण्डल के अन्तर्गत है ।)
१७.	त्रिस्रोताय	वामपाद	देवी भ्रामरी और ईश्वर भैरव ।
१८.	कामरूप (कामाख्या)	महामुद्रा (योनिपीठ)	देवी कामाख्या और उमानन्द भैरव ।
१९.	प्रयाग	दोनों हाथों की अंगुलियाँ	देवी ललिता और भव भैरव ।
२०.	जयन्ती	वामजङ्घा	देवी जयन्ती और क्रमदीश्वर भैरव ।
२१.	कालीघाट	दाहिने पैर की अंगुलियाँ	देवी कालिका और नकुलेश्वर भैरव ।
२२.	किरीट	देवी का मुकुट	देवी विमला और सम्बर्थ भैरव ।
२३.	वाराणसी	कान का कुण्डल	देवी विशालाक्षी और काल भैरव ।
२४.	कोन्नाश्रम	पीठ	देवी सर्वाणी और निमिष भैरव ।
२५.	कुरुक्षेत्र	दाहिने पैर का गुल्फ (एड़ी)	देवी सावित्री और स्थान भैरव । (अश्वनाथ)
२६.	मणिबंध	कर ग्रन्थि	देवी गायत्री और सर्वानन्द भैरव । (पुष्कर)
२७.	श्रीहट्ट	ग्रीवा	देवी महालक्ष्मी और सम्बरानन्द भैरव ।
२८.	काञ्ची देश	शरीर की हड्डी का ढाँचा	देवी वेदगर्भा और रुरु भैरव । (पश्चिम बंगाल, बोलपुर)
२९.	कालमाधव	वाम नितम्ब	देवी काली और असिताङ्ग भैरव ।
३०.	सोननद	दक्षिण नितम्ब	देवी नर्मदा और भद्रसेन भैरव ।
३१.	रामगिरि	दक्षिण स्तन	देवी शिवानी और चन्द्र भैरव ।
३२.	वृन्दावन	केश	देवी उमा और भूतेश भैरव ।
३३.	सूचीदेश	ऊर्ध्वदन्तपङ्क्ति	देवी नारायणी और संहार भैरव ।
३४.	पञ्च सागर	आखोदन्त (चौघड़)	देवी वाराही और महारुद्र भैरव ।
३५.	करोनवा नदी के किनारे	जरायु	देवी अर्पणा और वामन भैरव ।

३६.	श्री पर्वत	दक्षिण गुल्फ	देवी सुनन्दा व नन्दभैरव। (लद्दाख)
३७.	विभाषके (तमलुक)	वाम गुल्फ	देवी भीमरूपा और सर्वानन्द भैरव ।
३८.	प्रभास	उदर	देवी चन्द्रभागा और रुक्कुतुन्द्रा भैरव। (मथुरा)
३९.	भैरव पर्वत	ऊर्ध्व ओष्ठ	देवी महादेवी और लम्बकर्ण भैरव ।
४०.	मगध	दक्षिण जङ्घा	देवी सर्वानन्दकरी और व्योमकेश भैरव ।
४१.	जनस्थान	चिबुक (ठुड्डी)	देवी भ्रमारी और विकृताक्ष भैरव । (खानदेश)
४२.	गोदावरी तीर	वाम गंड	देवी विश्वमातृका व दन्तपाणि भैरव।
४३.	रत्नावली	दक्षिण स्कन्ध	देवी कुमारी और शिव भैरव । (मद्रास) चेन्नई
४४.	खीरग्राम	दाहिने पैर का अंगूठा	देवी योगाद्या व क्षीर खण्डक भैरव।
४५.	मिथिला	वाम स्कन्ध	देवी महादेवी और महोदय भैरव ।
४६.	नलहटी	कंठनली	देवी कालिका और योगीश भैरव ।
४७.	कालीघाट	मुंड	देवी जयदुर्गा और क्रोधीश भैरव । (कटवा)
४८.	वक्रेश्वर	मनः भ्रूमध्य	देवी महिषमर्दिनी और वक्रनाथ भैरव (युवराजपुर)
	(इसी स्थान पर महामुनि अष्टावक्र ने सिद्धि प्राप्त की थी)		
४९.	जशोर (ईश्वरीपुर)	पानीपद्म	देवी यशेश्वरी और चण्ड भैरव ।
५०	अट्टहास	अधः ओष्ठ	देवी फुल्लरा और विश्वेश भैरव ।
५१	नन्दीपुर	गले का हार	देवी नन्दिनी और नन्दिकेश्वर भैरव । (सैंथिया)
५२.	(क) लङ्का (ख) विराट	नूपुर वामपादांगुली	देवी इन्द्राक्षी और यक्षेश्वर भैरव । देवी अम्बिका और अमृत भैरव ।

कामाख्या का वरदानाधिकार

(१)

आशुतोष भगवान् शङ्कर औघड़दानी, शीघ्र प्रसन्न होने वाले और अपने आशीर्वाद और वर से ब्रह्मा की भाग्यलेखनी को भी मिटा देने वाले हैं—यह तथ्य सर्वविदित है । एक बार उनकी इस प्रक्रिया से क्षुब्ध होकर ब्रह्मा जी भवानी के पास जाकर निवेदन करते हुए बोले—देवि ! आपने हमें जो सृष्टिक्रम का कार्य सौंपा है उसमें भोलेनाथ विघ्न डालते रहते हैं । मैं भाग्य में आयु लिखता हूँ, परन्तु शिवजी शीघ्र प्रसन्न होकर अधिक आयु दे देते हैं । इससे मेरी लेखनी मिट जाती है । इतना ही नहीं भगवान् विष्णु का पालन करने का कार्य भी बढ़ जाता है । पूर्व जन्म के पाप-पुण्य के कारण जो भी सुख-दुःख जिन मनुष्यों के भाग्य में लिख देता हूँ, वे मनुष्य मृत्युलोक वासी भगवान् शिव को प्रसन्न कर कालचक्र को अपने पक्ष में कर लेते हैं । वहाँ शिवजी अपनी संहार शक्ति का भी प्रयोग नहीं करते । साथ ही यह बात आपकी आज्ञा का उल्लङ्घन भी है । अत: अब मैं यह कार्य नहीं करूँगा । इससे मेरा महत्त्व घटता है ।

ब्रह्मा जी की यह बात सुनकर देवी मुस्करायीं और बोलीं—हे चतुर्मुख ! आप यह न भूलें कि आप तीनों देवों को उत्पन्न करने वाली और महत्त्व देने वाली मैं ही हूँ । मेरी शक्ति से आप लोग अपना कार्य करते हैं । आप तीनों में सत्त्व, रजस् और तमस् रूप से विद्यमान होकर मैं ही सृष्टि करती हूँ, पालन और संहार करती हूँ । यदि मैं अपनी शक्ति का संवरण कर लूँ तो आप तीनों निष्प्राण हो जायेंगे । अत: आप विष्णु अथवा शिवजी के द्वारा कृत कार्य मेरी ही प्रेरणा से होते हैं । फिर भी मैं शिवजी से निवेदन करूँगी कि फिर वे कभी इतनी जल्दी प्रसन्न होकर वरदान न दें । केवल मैं ही जब चाहूँगी जैसा भी वर दूँगी। मेरे लिए कुछ भी असम्भव नहीं है । यह सुनकर बेचारे ब्रह्मा जी ब्रह्मलोक को लौट आए और सृष्टिरचना का अपना काम यथापूर्व करने लगे ।

इसी समय भस्मासुर ने तपस्या कर भगवान् शिव को प्रसन्न कर लिया । शिवजी ने उसे दर्शन देकर वर माँगने को कहा । देवी की प्रेरणा से उसने वर माँगा कि मैं जिसके भी सिर पर अपना हाथ रखूँ वह भस्म हो जाए । शिवजी ने

'तथास्तु' कहा। भस्मासुर को पार्वती की सुन्दरता का ज्ञान पहले से था। उसके मन में आया कि वरदान को इन्हीं पर आजमा कर इन्हें भस्म करूँ तथा पार्वती को अपना लूँ। बस फिर क्या था? अपना हाथ शङ्कर जी की ओर बढ़ाते हुए दौड़ा। शङ्कर जी भागे, भागते गये। भस्मासुर भी बराबर उनके पीछे लगा रहा। शङ्कर जी अपने को बचाने के लिए थोड़ा साँस लेने के लिये खड़े भी न हो सके। उन्हें अपनी 'संहारशक्ति' का ध्यान भी न रहा। अन्त में वे भागते-भागते थक गए तो उन्हें भगवती का ध्यान आया। उन्होंने उनका स्मरण किया।

तब देवी ने विष्णु को प्रेरित किया। भगवान् विष्णु पार्वती बनकर भस्मासुर के मार्ग में खड़े हो गये। भस्मासुर के पास आते ही पार्वतीरूप विष्णु बोले कि अरे भाई! कहाँ भाग रहे हो? मैं तो तुम्हें ही खोज रही थी, मैं तुमको चाहती हूँ। क्या तुम शङ्करजी के पीछे जा रहे थे? क्यों? अरे! वह तो बावला है, भांग धतूरे में मस्त रहने वाला। कामातुर भस्मासुर भगवान् विष्णु की इस मर्म भरी बात को समझ न सका। उसको भी बिना प्रयत्न के मनचाही चीज मिल गई थी। उसने रुक कर कहा—देवि! मैं भी तुम्हें महारानी बनाना चाहता हूँ; चलो मेरे साथ।

पार्वती के भेष में विष्णु बोले—'ठीक है; मैं चलने को तैयार हूँ। परन्तु वर चाहने वाली कन्या को इतना तो अधिकार दीजिये कि उसके होने वाले पति में वे सभी गुण हैं या नहीं जो वह चाहती है, इसकी जानकारी वह अच्छी प्रकार कर ले। तो शङ्कर जी के सभी गुण या उससे अधिक तुममें हैं या नहीं?'

इस पर भस्मासुर बोला—'देवि! मैं तुम्हारे शङ्करजी से किसी भी प्रकार कम नहीं हूँ। अतः तुम्हीं देख लो कि मैं तुम्हारे योग्य हूँ या नहीं?' अब पार्वतीरूपधारी विष्णु बोले कि मुझे शङ्करजी का वह नाच बड़ा अच्छा लगता है जब वह सिर पर अपना दाहिना हाथ रखकर दाएँ पैर को मोड़ कर ऊपर तथा बाएँ हाथ के अँगूठे और अनामिका को मिला बाहर आगे की ओर करके नाचते हैं। तो तुम पहले भाव-भंगिमा के साथ उस प्रकार का नाच नाचकर दिखाओ।' बस फिर क्या था? भस्मासुर भी देवी की प्रेरणा से अपने प्राप्त वर को भूल गया तथा जैसी ही नाचने की मुद्रा बनाते हुए अपना हाथ सिर पर रखा वैसे ही भस्म हो गया।

उसी समय से आशुतोष शिव बहुत सँभल कर वर देने लगे। इस प्रकार देवी की माया से ब्रह्माजी की शिकायत दूर हो गयी तथा शिवजी अपनी संहार शक्ति का प्रयोग ब्रह्माजी के लेखनी के मेल से करके सृष्टिक्रम चलाने में योगदान करने लगे।

(२)

जब-जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा अन्य देवता या उनके भक्त किसी कार्य को करने में असमर्थ होते हैं या किसी आपत्ति में पड़े होते हैं तब तब ये शक्ति की ही प्रार्थना करते हैं और देवी भी इन्हें तथा अपने भक्तों को दर्शन देकर उनके दुःख को दूर करती हैं । ऐसा करने के लिए वह वचनबद्ध हैं । स्त्री वामाङ्गी कही जाती है । इसमें भी बायाँ अङ्ग ही प्रधान माना गया है । जब भी हम किसी देवी-देवता का नाम लेते हैं तो पहले उसकी शक्ति का तब उसका; क्योंकि बिना शक्ति के किसी देवता का कोई अस्तित्व ही नहीं है जैसे— प्रकृति-पुरुष, लक्ष्मी-नारायण, वाणी-हिरण्यगर्भ, उमा-महेश्वर, शची-पुरन्दर, सीता-राम, राधे-श्याम इत्यादि । रावण के अत्याचार से दुःखी सब देवताओं के प्रार्थना करने पर भगवती को सीता के रूप में उत्पन्न होना पड़ा और उनकी प्रेरणा से भगवान् विष्णु को राम बनना पड़ा । महिरावण ने तो राम की तथा उनकी सारी सेना को परास्त कर दिया था उसी समय सीता जी ने काली का रूप धारण कर महिरावण का वध किया और देवताओं को अभयदान दिया—यह कथा सर्वविदित है ।

दक्ष प्रजापति ने देवी की आराधना की थी और वर माँगते समय देवी को कन्या रूप में माँगा था, उसी वर के फलस्वरूप उमा के रूप में देवी ने उनके यहाँ जन्म लिया । शङ्कर जी के साथ उमा का विवाह हुआ । बाद में उमा के पिता दक्ष को मोह पैदा हुआ और उन्होंने यज्ञ करके उमा-महेश्वर का अपमान किया । शक्ति के न होने से शिवजी मोहवश उनके शरीर को अपने कन्धे पर रख कर दौड़ने लगे । इससे समस्त त्रिलोक का कार्य रुक गया । देवी की सृष्टि में इस व्यतिक्रम को समाप्त करने के लिए विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से उमा के शरीर को टुकड़े-टुकड़े कर डाला । इस प्रकार जहाँ-जहाँ उमा के शरीर के अङ्ग गिरे वहाँ-वहाँ उस स्थान के नाम से देवी की पूजा होने लगी । इसके साथ ही शङ्कर ने यह भी कहा कि इन स्थानों पर देवी सशरीर रह कर भक्तों की मनोकामनाएँ पूरी करती रहेंगी । मैं भी उन स्थानों पर सदैव विद्यमान रहूँगा । इस प्रकार कामाख्या, शताक्षी, मीनाक्षी, लिङ्गधारिणी आदि देवियाँ एक ही हैं ।

इसके बाद देवी ने पार्वती रूप धारण किया । उसी शरीरकोश से शुम्भ-निशुम्भ के वध के लिए श्री अम्बिका जी का प्राकट्य हुआ । महिषासुर के वध के लिए अपराजिता देवी सकल देवताओं के शरीर से प्रकट हुई । दुर्गासप्तशती के ११वें अध्याय में सभी देवताओं ने मिलकर उनकी स्तुति की तथा वरदान प्राप्त किया । इसी प्रकार राजा सुरथ और समाधि नामक वैश्य की आराधना से

प्रसन्न होकर देवी ने प्रत्यक्षरूप से दर्शन दिया और कहा—

'मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत्'

अर्थात् मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम जो भी माँगोगे, मैं वह सब कुछ दूँगी। इस प्रकार यह स्पष्ट और निर्विवाद सिद्ध है कि भक्तिपूर्वक पूजा अर्चना करने से देवी प्रसन्न होकर साधक को सब कुछ देने को सदैव तत्पर रहती है।

देवी को प्रसन्न करने के लिए मन्त्र-तन्त्र आदि हैं। जो वस्तु, स्तुति, प्रार्थना, मन्त्र आदि महामाया के प्रीतिवर्धक हैं उनको करने से वह तत्काल अक्षुण्ण फल देती हैं।

अतः शास्त्रों में बतायी गयी विधि के अनुसार अथवा गुरु के आदेशानुसार कार्य करने से निश्चय ही सफलता प्राप्त होती है। कामाख्या माँ अपने सभी भक्तों के ऊपर शीघ्र प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन और आनन्द देती हैं। क्योंकि इनका प्रण है कि ये अपने भक्तों की सदैव सब प्रकार से रक्षा करेंगी।

कामाख्या पीठ का परिचय

कामरूप कामाख्या का स्थान आसाम प्रदेश में है। आसाम प्रदेश का प्राचीन नाम कामरूप है। नदी, पहाड़ों, जङ्गलों और घाटियों से सुशोभित यह देश सदैव ही मनुष्य को अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है। यहाँ के निवासी भी अत्यन्त सुन्दर होते हैं। इस समय यह देश पाँच छह भागों में विभक्त हो गया है। तात्पर्य यह है कि इस समय का असम, मेघालय, त्रिपुरा, नागालैण्ड और मणिपुर प्रदेश प्राचीनकाल में एक कामरूप देश था। आधुनिक असम प्रदेश का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

यह प्रदेश भारत के पूर्वी भाग में स्थित है। यह तीन ओर पहाड़ियों से घिरा है पर इसका प्रचुर भाग मैदानी है। यहाँ की प्रमुख नदी ब्रह्मपुत्र भारत की महानदियों में से एक है इसी कारण इसे नद कहा जाता है। टेढ़ी-मेढ़ी होने के कारण इसे साँपू नदी भी कहते हैं। इसका पाट अपने देश की सभी नदियों से अधिक चौड़ा है। इस नदी के बहुत चौड़े होने के कारण इसके आर-पार जाने के लिए अभी तक एक ही पुल बन सका है। ब्रह्मपुत्र की धारा भी बहुत तेज है। यह बहुत गहरी भी है, इसीलिए इसमें समुद्र से गुवाहाटी नगर तक स्टीमर चलते हैं।

यहाँ दो मौसम होते हैं—१. अक्टूबर से फरवरी तक जाड़ा का और २. मार्च से सितम्बर तक गरमी का। यहाँ कुछ ऐसे भाग भी हैं जहाँ एक बार

वर्षा शुरू हो जाती है तो कभी-कभी महीने भर सूर्य भगवान् के दर्शन नहीं होते। घनघोर वर्षा के साथ बादलों का गर्जन होता रहता है । अधिक वर्षा के कारण कई जगह साल भर दलदल बने रहते हैं । इन दलदलों में यदि मनुष्य या पशु फँस जाए तो उसके लिये जान बचाकर निकल आना बड़ा कठिन होता है ।

चारों ओर से वर्षा का पानी बह-बहकर इस नदी में इस तेजी से इकट्ठा होता है कि प्रतिवर्ष इसमें बाढ़ आती है । यह नदी अपने किनारे को तेजी से काटा करती है और देखते ही देखते किनारों के गाँव के गाँव बह जाते हैं । नदी बराबर अपना रास्ता बदलती रहती है । यही कारण है कि इस नदी के किनारे बड़े-बड़े नगर बहुत कम हैं । ब्रह्मपुत्र की बाढ़ से बहुत हानि तो अवश्य होती है किन्तु इससे एक बड़ा लाभ यह है कि यह नदी बाढ़ के बाद अपनी घाटी में उपजाऊ मिट्टी छोड़ जाती है । इससे यहाँ धान और पटसन खूब पैदा होता है । इस प्रदेश की यही मुख्य उपज हैं । यहाँ केला, अनानास, कटहल, सन्तरा आदि फल प्रचुर मात्रा में होते हैं ।

पहाड़ी ढालों पर चाय के बाग हैं । चाय की पत्तियाँ औरतें और बच्चें तोड़ते हैं । वे अपनी पीठों पर बँधी टोकरियों में इन्हें इकट्ठा करते हैं । इन पत्तियों से वह चाय बनती है जिसे हम पीते हैं ।

असम घने जंगलों का प्रदेश है । कुछ भागों में घास इतनी घनी और ऊँची होती है कि इसमें हाथी तक छिप सकते हैं । इन जंगलों और घास के वनों में अनेक प्रकार के पशु पाये जाते हैं । चीता, गैंडा, हाथी, विसन, भालू और लाल लंगूर यहाँ के मुख्य जंगली जानवर है । जंगलों में अनेक प्रकार के साँप और नदियों में मगरमच्छ भी देखने को मिलते हैं । कुछ वनों के पेड़ों की लकड़ी इतनी कड़ी होती है कि उसे कुल्हाड़ी से काटना कठिन होता है । इन लकड़ियों के लट्ठे लोहे के गार्डरों की तरह मकान की छतों में तथा रेल की पटरी के नीचे स्लीपर के रूप में प्रयुक्त होते हैं । जंगलों में इस लकड़ी को ढोने में हाथी काम में लाये जाते हैं । कई जगहों बाँसों के भी वन हैं । कुछ वन ऐसे भी हैं जिनके पेड़ों की लकड़ी बहुत मुलायम होती है । इस लकड़ी से दियासलाई की डिबियाँ तथा तीलियाँ बनाई जाती हैं । इस लकड़ी से तथा यहाँ की घासों से और बाँसों से कागज और दफ्ती भी बनते हैं । किन्हीं-किन्हीं वनों में बेंत भी खूब होता है । इसकी छाल से बने तार कुर्सियाँ बुनने के काम आते हैं ।

असम प्रदेश में शहतूत के बाग लगाने का बड़ा रिवाज रहा है । शहतूत की पत्तियों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं । उनसे रेशम प्राप्त किया जाता है

जिससे सुन्दर रेशमी कपड़े बनते हैं । इस प्रदेश की भूमि में कई स्थानों पर पेट्रोलियम भी अधिक मात्रा में मिलता है । यह अधिक गहराई में पम्पों द्वारा ऊपर निकाला जाता है और साफ करके पेट्रोल और मिट्टी का तेल आदि बनाया जाता है ।

देहातों में जहाँ भूमि बहुत नम होती है, वहाँ कीड़ों मकोड़ों से बचने के लिए मकान भूमि से कुछ ऊँचाई पर बनाए जाते हैं । ये मकान अधिकतर लकड़ी के बने होते हैं । ऊपर बाँस की ढालदार छाजन होती है । इनकी दीवारें भी बाँस और घास-फूँस की बनी होती हैं । यहाँ के पुरुष लोग अधिकतर धोती और कुर्त्ता पहनते हैं । स्त्रियाँ ऊँचा घाघरा और सीनाबन्द कमीज पहनती हैं । कहीं-कहीं स्त्रियाँ बच्चों को पीठ पर बाँधे हुए काम काज में लगी रहती हैं ।

असम के लोग उत्सवों के बहुत शौकीन होते हैं । स्थान-स्थान पर दुर्गा-पूजा और सरस्वती-पूजा के उत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाये जाते हैं । यहाँ के लोग जादू-टोना, झाड़-फूँक, मन्त्र-तन्त्र में बड़ा विश्वास रखते हैं । ये सभी 'शाक्त-सम्प्रदाय' के होते हैं और गुरु भी उसी सम्प्रदाय का ही रखते हैं । 'बिहू' यहाँ का मुख्य त्योहार है । इस त्योहार में युवक-युवतियाँ रात भर नाचते हैं । इनके नृत्यों को 'बिहू-नृत्य' और गीतों को 'बिहू-गीत' कहा जाता है ।

यहाँ की भाषा असमी है । सिलचर, दिसपुर, तेजपुर, जोरहाट, लखीमपुर और डिबरूगढ़ यहाँ के प्रसिद्ध नगर हैं । गौहाटी प्रमुख नगर है । अभी तक शिलाङ्ग नगर इस प्रदेश की राजधानी थी । यह नगर मेघालय प्रदेश में चले जाने से गौहाटी नगर के पास नई राजधानी दिसपुर में बनायी गयी है ।

गौहाटी नगर में ही कामाख्या देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है । जिस पहाड़ पर यह मन्दिर स्थित है उसका भी नाम 'कामाख्या-पर्वत' है । यह पहाड़ 'कामाख्या-स्टेशन' के पीछे है । वैसे गौहाटी से इस स्थान की दूरी ४-५ किलोमीटर है । पहाड़ी स्थान होने से सड़क कहीं चढ़ाई लिये हुए है तो कहीं ढालू । गौहाटी से यहाँ के लिए टैक्सी, रिक्शा आदि आसानी से मिल जाते हैं । यहाँ मिठाई की दूकान, प्रसाद-फूल-माला आदि पूजा के सामान की दूकान और होटल आदि भी हैं । दर्शन कराने वाले पण्डे भी मिल जाते हैं ।

जनश्रुति है कि कामाख्या देवी का सही स्थान जंगलों के अन्तरतम भाग में स्थित है जहाँ पहुँच पाना सर्वसाधारण के लिए अत्यन्त कठिन है । उस स्थान को कोई-कोई ही जानता है । वहाँ कोई सिद्ध महात्मा ही पहुँच कर दर्शन पाता है । यहाँ तान्त्रिकों की संख्या भी अत्यधिक है जो कि अगम्य अन्तर्भागीय पहाड़ी-वनीय घाटियों में ध्यानमग्न हो देवी की उपासना करते रहते हैं ।

कामाख्या-स्टेशन से पर्वत पर चढ़ना पड़ता है पुन: गुफा-नुमा नीचे की ओर की सीढ़ियों से जाने के लिए एक अच्छा खासा सुन्दर-सा रास्ता है । फिर थोड़ी दूर तक समतल रास्ता है । फिर नीचे उतरना पड़ता है और तब देवी का दर्शन मिलता है । देवी के दर्शनार्थ कोई मूर्ति नहीं है, केवल एक काला सा पत्थर रखा हुआ है जो सदैव लाल कपड़े से ढँका हुआ रहता है । पत्थर के ठीक नीचे से सदैव थोड़ा-थोड़ा-सा पानी बहता रहता है जिसे एक छोटा-सा सोता कहा जा सकता है । यह जल कहाँ से आता है और कहाँ चला जाता है इसका पता नहीं चलता । चूँकि वह पत्थर देवी का गुप्ताङ्गस्वरूप है अत: सदैव ढँका ही रखा जाता है । यहाँ से ऊपर की ओर बढ़ने पर 'उमानन्द भैरव' का दर्शन कर के लौट आना होता है । इसी रास्ते में 'भुवनेश्वर जी' का भी मन्दिर है । भक्त लोग फूल, फल, मीठा, लाई, गट्टा, इलायची दाना यही सब वस्तुएँ देवी को अर्पण करते हैं । मन्दिर में कबूतर बहुत देखने को मिलते हैं क्योंकि भक्त लोग देवी के प्रसन्नार्थ इनको छोड़ देते हैं । वैसे बकरे और कबूतर की बलि भी दी जाती है ।

देवी के तीर्थ व्रत उत्सव

पूर्वकाल में पर्वतराज हिमालय ने बहुत बड़ा तप किया था । पुन: तारकासुर के उत्पात से देवताओं ने देवी की स्तुति की थी । उसी प्रसङ्ग में देवी ने प्रसन्न होकर कहा था कि मैं पर्वतराज हिमालय के यहाँ उनकी पुत्री के रूप में जन्म लूँगी । देवी के ऐसे वाञ्छित वर को सुनकर बड़ी प्रसन्नता से हिमालय ने श्रीदेवी से पूछा कि हे देवेश्वरि ! आपके अत्यन्त प्रिय लगने वाले पवित्र एवं दर्शनीय प्रसिद्ध स्थान इस भूमण्डल पर कितने हैं उन्हें और साथ ही आपको सन्तुष्ट करने वाले जो व्रत तथा उत्सव हैं उन्हें भी मुझे बताने की कृपा करें जिससे मेरा मानव-जीवन सफल हो जाए । हिमालय की विनम्र वाणी सुनकर श्री भगवती ने कहा—'हे गिरिराज ! मैं विशेष क्या कहूँ ? संसार में दृष्टिगोचर होने वाले प्राय: सभी स्थान मेरे ही हैं । यद्यपि सम्पूर्ण काल मेरा व्रत स्वरूप है तथा सर्वत्र सर्वदा मेरे उत्सव मनाये जा सकते हैं क्योंकि मैं सर्वव्यापिनी, सर्वस्वरूपिणी एवं नित्या हूँ तथापि हे वत्स ! मैं भक्तवत्सलतावश कुछ अपने प्रसिद्ध स्थानों (देवी-तीर्थ) एवं व्रतों का परिचय कराये देती हूँ; तुम सावधान मन से सुनो—

देवी तीर्थ—सर्वप्रथम दक्षिण भारत में 'कोलापुर' नामक एक प्रसिद्ध नगर है, जहाँ लक्ष्मी का निवास रहता है । दूसरा स्थान है 'मातृ:पुर' जहाँ भगवती 'रेणुका' देवी रहती हैं । 'तुलजापुर' नामक मेरा तृतीय स्थान है । इसी प्रकार एक और स्थान है जिसका नाम है—'सप्तशृङ्ग' । 'हिंगुला', 'ज्वालामुखी',

'भ्रामरी', 'रक्तदन्तिका' तथा 'दुर्गा' आदि देवियों के स्थान उन्हीं के नाम से विख्यात हैं । विन्ध्यपर्वत पर 'विन्ध्याचली' (विन्ध्यवासिनी) भगवती का सर्वश्रेष्ठ प्रसिद्ध स्थान हैं । अन्नपूर्णा स्थान, काञ्चीपुर, भीमादेवी और विमला देवी के स्थान सर्वोत्तम कहे जाते हैं—जो इन्हीं के नाम से विख्यात हैं । कर्णाटक देश में 'श्रीचन्द्रला' देवी का प्रसिद्ध स्थान है, उसी के आस-पास 'कौशिका' देवी का स्थान है । नील पर्वत के शिखर पर 'नीलाम्बा' देवी का स्थान है और जम्मू में 'जाम्बूनदेश्वरी' देवी का प्रसिद्ध स्थान है । इसी प्रकार नेपाल देश में 'गुह्यकाली' का स्थान बड़ा प्रसिद्ध है । साथ ही चिदम्बरम् नगर में भगवती 'मीनाक्षी' देवी का सुप्रसिद्ध स्थान है जो 'हालास्य' नाम से भी कहा जाता है । वेदाक्ष्य में 'सुन्दरी' देवी का स्थान बहुत प्रसिद्ध है । 'एकाम्बरम्' नामक स्थान में 'पराशक्ति' भगवती का मन्दिर है, जो पुरुषोत्तम क्षेत्र के निकट 'भुवनेश्वर' नाम से प्रसिद्ध है । भगवती 'मदालसा' एवं 'योगीश्वरी' देवी का उत्तम स्थान इन्हीं के नामों से विख्यात है । चीन देश में 'नीलसरस्वती' का स्थान है, जो अत्यन्त प्रसिद्ध है । वैद्यनाथ धाम में 'बगला' देवी का सर्वोत्तम स्थान सभी जानते हैं । साथ ही हे नगेश ! 'श्री भुवनेश्वरी' देवी का सुप्रसिद्ध स्थान जो मणिद्वीप नामक महाप्रदेश में है—मेरे ज्ञानी भक्त ही उन्हे जानते हैं । जब शिवजी सती का शरीर लेकर घूम रहे थे, तब उनका योनि भाग जहाँ गिरा वह स्थान कामाख्या (कामाख्या) देवी के नाम से प्रसिद्ध हुआ । वही भगवती 'त्रिपुरसुन्दरी' का पवित्र स्थान है । हे हिमालय ! संसार में महामाया से सुशोभित जितने क्षेत्र हैं, उन सबों में यह स्थान 'शिरोमणि' कहा गया है । भूतल में इससे बढ़कर देवी का प्रसिद्ध स्थान दूसरा कोई नहीं है । वह ऐसा जाग्रत स्थान है जहाँ आज भी प्रतिमास भगवती रजस्वला हुआ करती हैं । उस समय वहाँ के रहने वाले सभी प्रधान देवता उस पर्वत पर चले जाते हैं और वहीं पर्वतश्रेणियों के रूप में निवास करते हैं ! विद्वानों का कथन है कि उस अवसर पर वहाँ की सम्पूर्ण भूमि देवीमय हो जाती है । इसीलिए 'कामाख्या योनिमण्डल' से बढ़कर कोई दूसरा श्रेष्ठ स्थान नहीं है । हे गिरीन्द्र ! समस्त ऐश्वर्यों से युक्त 'पुष्कर' क्षेत्र में भगवती श्री गायत्री देवी का उत्तम स्थान कहा गया है । अमरकण्टक क्षेत्र में 'चण्डिका' तथा प्रभास क्षेत्र में 'पुष्करेक्षिणी' देवी का स्थान है । नैमिषारण्य में 'लिङ्गधारिणी' पुस्कराक्ष में 'पुरहूता' तथा आषाढ़ी क्षेत्र में 'रति' नाम की देवी का उत्तम धाम सुशोभित है । चण्डमुण्डी नामक महास्थान में चण्डमुण्ड को दण्ड देने वाली भगवती 'परमेश्वरी' विराजती हैं । भारभूति स्थान में 'भूति' देवी तथा नकुल स्थान में 'नकुलेश्वरी' देवी का परम धाम है । हरिश्चन्द्र नामक धाम में 'चन्द्रिका' और श्रीशैल पर्वत पर 'शाङ्करी' देवी का स्थान कहा गया है । जप्येश्वर में 'त्रिशूल', अम्रातकेश्वर में 'सूक्ष्मा' नामक देवी का सुन्दर स्थान है । इसी प्रकार महाकाल

धाम में भगवती 'शाकम्भरी', मध्यमेश्वर धाम में 'शर्वाणी' एवं केदार क्षेत्र में 'मार्गदायिनी' देवी विराजती है । 'भैरव' नामक स्थान में 'भैरवी' तथा गया धाम में 'मङ्गला' नाम की प्रसिद्ध देवी हैं ।

इसी प्रकार कुरुक्षेत्र में 'स्थाणु प्रिया' और नकुल में 'स्वायम्भुवी' नाम की देवी विराजती हैं । कनखल क्षेत्र में 'उग्रा' तथा विमलेश्वर स्थान में 'विश्वेशी', अट्टहास क्षेत्र में 'महानन्दा' और महेन्द्र पर्वत पर 'महान्तका' नाम की देवी का स्थान है । भीमा पर्वत पर भगवती 'भीमेश्वरी' का, वस्त्रापथ नामक स्थान में द्वितीय 'शाङ्करी' का, अर्द्धकोटि में 'रुद्राणी' का, अविमुक्त क्षेत्र (काशी) में 'विशालाक्षी' का, महालय में 'महाभागा' का, गोकर्ण धाम में 'भद्रकर्णी' का, भद्रकर्णक भूमि में 'भद्रा' देवी का, सुवर्णाक्ष धाम में 'उत्पलाक्षी' का, स्थाणु स्थान में 'स्थाण्वीशा' का, कमलालय में 'कमला' का, छागलाण्डक स्थान में 'प्रचण्डा' का, कुरण्डल में 'त्रिसन्ध्या' देवी का, माकोट में 'श्रीमुकुटेश्वरी' देवी का, मण्डलेख में 'शाण्डली' का, कालञ्जर पर्वत पर 'काली' का, शंकुकर्ण पर्वत पर भगवती 'ध्वनि' का तथा स्थूलेश्वर पर्वत पर 'स्थूला' देवी का सुन्दर धाम कहा गया है । साथ ही हे हिमालय ! भगवती 'हृल्लेखा' देवी नाम की पराशक्ति समस्त ज्ञानी जनों के हृदयरूपी कमल पर विराजती रहती हैं । उपर्युक्त सभी स्थान मुझे परम प्रिय हैं । परन्तु हे नगेश ! इसमें भी एक रहस्य है वह यह कि उपर्युक्त सभी क्षेत्र काशी में ही विराजमान हैं । अत एव देवी में श्रद्धा रखने वाले पुरुषों को चाहिये कि वे काशी (वाराणसी) में ही सर्वदा निवास करने का सतत् प्रयत्न करें और यहीं रहकर सभी स्थानों का दर्शन करते हुए देवी के बीज मन्त्र का जप एवं उनके चरणकमलों का ध्यान करते रहें । हे हिमालय ! मैं विशेष क्या कहूँ ? इस पुण्यमय कर्म के प्रभाव से पुरुष संसारचक्र (= आवागमन) से मुक्त हो जाता है । अत: जो पुरुष नित्य प्रात:काल उठकर भगवती के इन नामों का उच्चारण करता है उसके समस्त पाप तत्काल भस्म हो जाते हैं । इसके पाठ मात्र से मनुष्य निश्चय ही 'द्विजत्व' को प्राप्त होता है । विशेषकर द्विजाति मात्र को चाहिए कि श्राद्ध के अवसर पर सर्वप्रथम इन नामों का अवश्यमेव पाठ करें तथा करायें । ऐसा करने से उनके समस्त पितर मुक्त होकर परमपद को प्राप्त हो जाते हैं ।

तीर्थस्थान में कर्त्तव्याकर्त्तव्य

सवारी द्वारा तीर्थ यात्रा करने से चौथाई फल प्राप्त होता है, छतरी, पादुका आदि की सहायता से यात्रा करने पर तीर्थयात्रा का आधा फल प्राप्त होता है । तीर्थस्थान में व्यायाम तथा मांस-भक्षण करने से तीर्थयात्रा का फल विनष्ट हो जाता है ।

किसी अन्य कार्य से कहीं की यात्रा की जाय और वहाँ तीर्थ की प्राप्ति हो जाय तो भी उस तीर्थ का फल प्राप्त होता है । ऐसा फल ज्ञानपूर्वक होने से ही प्राप्त होता है । यदि अज्ञान में दर्शन हों तो उस प्राप्त तीर्थ का कुछ भी फल नहीं होता ।

तीर्थस्थल में आचमन, पाद-प्रक्षालन शौच आदि नहीं करना चाहिए । उस प्राप्त तीर्थ में किसी दूसरे तीर्थ की प्रशंसा भी नहीं करनी चाहिये । प्रशंसा उसी तीर्थ की करें जहाँ आप गये हुए हैं । एक तीर्थ में जाकर दूसरे तीर्थ में प्रीति रखना वर्जित है । तीर्थ के किनारे तथा तीर्थ के दक्षिण में निवास नहीं करना चाहिए । सदैव उसी तीर्थ में ही निवास करें । तीर्थ के दक्षिण में स्नान भी नहीं करना चाहिए ।

तीर्थ में साधु, ब्राह्मणों का उपहास या निन्दा कभी न करें । उनकी परीक्षा भी नहीं करनी चाहिये । किसी धर्म की निन्दा तथा छिद्रान्वेषण न करें । जिस तीर्थ में जो जो देवता तथा ब्राह्मण निवास करते हैं, वे सभी वन्दनीय तथा पूज्य होते हैं । तीर्थस्थ ब्राह्मणों के कथनानुसार कर्म करने में ही पवित्रता है । अपने से किया हुआ कर्म तीर्थयात्रा के उद्देश्य को निष्फल कर देता है ।

तीर्थ में जाकर उसके दूरवर्ती तट में वास नहीं करना चाहिए । तीर्थ स्थान में, ग्रहण में, पितृवासर में, यज्ञ में पात्रापात्र का विचार करके ही दान देना चहिए । बिना विचार किये जो दान किया जाता है, वह निष्फल हो जाता है । अत: दान करते समय यह विचार कर लेना आवश्यक है कि जिस ब्राह्मण को दान किया जा रहा है वह दान करने योग्य पात्र है भी अथवा नहीं । दान में तीन बातों का विशेष ध्यान रखा जाता है—१. स्थान, २. काल और ३. पात्र। अत: तीर्थस्थान में विशेष काल का भी प्रयोजन है, उसका भी ध्यान रखा जाना चाहिए ।

तीर्थस्थान में किया हुआ पाप और पुण्य चौगुने परिमाण में बढ़ता है । अत: तीर्थ में प्रिय वचन, नम्रता, शीलता, धैर्य, दानशीलता, अहिंसा आदि का आभूषण सदैव धारण किए रहना चाहिए । मद्यपान, द्यूत, व्यभिचार, चोरी हिंसादि से कोसों दूर रहना चाहिए ।

तीर्थयात्री को तीर्थ में दूसरे की चीजों का उपभोग नहीं करना चाहिए और न ही किसी के दिए हुए दान को ग्रहण करना चाहिए । तीर्थ में स्नान करते समय दान नहीं लेना चाहिए और तीर्थयात्री को तो दान लेना सर्वथा वर्जित है ।

तीर्थ क्षेत्र में तो आशीर्वाद लेना उचित है, देना नहीं । तीर्थ में नित्य

नियमानुसार पूजा-पाठ, जप दानादि में ही समय बिताना चाहिए । अपने किसी अनुचर या सेवक को उसका उचित पारिश्रमिक देना चाहिए । कथा-प्रवचन आदि में जाने पर कथावाचकों को कुछ अवश्य देना चाहिए ।

जिस तीर्थ में व्यक्ति गया हो उस तीर्थ की प्रदक्षिणा उसी तीर्थ की विधि अनुसार करना चाहिए । तीर्थ में नास्तिक विचारधारा का सर्वथा त्याग करना चाहिए और नास्तिकों के साहचर्य से अपने को दूर रखना चाहिए ।

देवी व्रत—देवी के समस्त व्रत सबको प्रयत्नपूर्वक करने चाहिये । उनमें सर्वप्रथम 'अनन्ततृतीया' नाम का व्रत है । इसमें तीन नाम हैं—१. अनन्त-तृतीया व्रत, २. रसकल्याणि व्रत और ३. आर्द्रानन्दकरी व्रत । शुक्रवार तथा चर्तुदशी को भी देवी का व्रत किया जाता है । इसी प्रकार भौमवार व्रत तथा 'प्रदोषव्रत' भी देवी का व्रत है । उस समय निशीथ काल (= अर्धरात्रि) में शिवजी अपनी प्रिया (= शिवा) को आसन पर बैठाकर उनके सम्मुख देवताओं सहित नृत्य करते हैं । उस दिन उपवास रखते हुए प्रदोषकाल (सायंकाल) में देवी की पूजा करनी चाहिए । प्रत्येक पक्ष में किया जाने वाला यह व्रत देवी को सन्तुष्ट करने वाला है । साथ ही सोमवार का व्रत भी देवी को अत्यन्त प्रिय है । इस व्रत में दिन भर उपवास रख कर प्रदोष में देवी का पूजन करके रात में ही भोजन करना चाहिए । दोनों नवरात्र देवी महामाया को परम प्रिय हैं । इस प्रकार के अनेक नित्य एवं नैमित्तिक व्रत हैं । अत: जो पुरुष रागद्वेष से रहित होकर देवी की प्रसन्नता के लिए इन व्रतों का अनुष्ठान करता है उसे मेरा सायुज्य-पद प्राप्त होता है अर्थात् वह अवश्यमेव मुक्त हो जाता है । उस पुरुष को देवी अपना परम प्रिय भक्त मानती हैं ।

देवी उत्सव—उत्सव के विषय में चर्चा करती हुई श्री आद्या देवी कहती है—'हे राजन् ! उपर्युक्त व्रतों के अवसर पर मेरा दोलोत्सव तथा शयनोत्सव एवं जागरणोत्सव आदि भी मानना चाहिए । साथ ही रथोत्सव भी मनाना आवश्यक है । श्रावण मास में एक पवित्रोत्सव होता है उससे मैं अत्यन्त प्रसन्न होती हूँ । अत एव मेरे भक्तों को चाहिये कि इन व्रतों-उत्सवों को विधिवत् मनायें । इससे उनके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं । हाँ, यह भी स्मरण रखें कि उत्सव के अवसरों पर मेरे भक्तों को प्रसन्नतापूर्वक भोजन करायें साथ ही सौभाग्यवती स्त्रियों को भोजन वस्त्र से सन्तुष्ट करें । कुमारी कन्याओं तथा ब्रह्मचारियों को मेरा ही रूप समझकर उन्हें भी आदरपूर्वक भोजन करायें । हे हिमालय ! धन की कृपणता न करके द्विजकुमारी एवं कुमारों की पुष्पादि से पूजा करें । जो इस प्रकार से प्रेमपूर्वक सावधानी से उत्साह के साथ सदैव मेरा पूजनोत्सव करता है वही धन्य तथा कृतकृत्य है । वह नि:सन्देह ही मेरा प्रेम-पात्र है ।

कामाख्या कुञ्जिका स्तोत्र, मन्त्र तथा तन्त्रोक्त देवीसूक्त

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ।
येन मन्त्रप्रभावेण चण्डीजापः शुभो भवेत् ॥
न कवचं नार्गलास्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम् ।
न सूक्तं नापि ध्यानं च न न्यासो नापि चार्चनम् ॥
कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत् ।
अति गुह्यतरं देवि ! देवानामपि दुर्लभम् ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति ।
मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम् ॥
पाठमात्रेण संसिद्ध्येत् कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ॥

अथ मन्त्रः

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥ ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा ॥

ॐ नमस्ते रुद्ररूपिण्यै नमस्ते मधुमर्दिनि ।
नमः कैटभहारिण्यै नमस्ते महिषार्दिनि ॥
नमस्ते शुम्भहन्त्र्यै च निशुम्भासुरघातिनि ।
जाग्रतं हि महादेवि जपं सिद्धं कुरुष्व मे ॥
ऐंकारी सृष्टिरूपायै ह्रींकारी प्रतिपालिका ।
क्लींकारी कामरूपिण्यै बीजरूपे नमोऽस्तु ते ॥
चामुण्डा चण्डघाती च यैकारी वरदायिनी ।
विच्चे चाभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणि ॥
धां धीं धूं धूर्जटेः पत्नी वां वीं वं वागधीश्वरी ।
क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि शं शी शूं मे शुभं कुरु ॥
हुं हुं हुंकाररूपिण्यै जं जं जं जम्भनादिनी ।
भ्रां भ्रीं भ्रूं भैरवी भद्रे भवान्यै ते नमो नमः ॥
अं कं चं टं तं पं यं शं वीं दं ऐं वीं हं क्षम् ।
धिजाग्रं धिजाग्रं त्रोटय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा॥
पां पीं पूं पार्वती पूर्णा खां खीं खूं खेचरी तथा ।
सां सीं सूं सप्तशती देव्या मन्त्रसिद्धिं कुरुष्व मे ॥
इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं मन्त्रजागर्तिहेतवे ।

अभक्ते नैव दातव्यं गोपितं रक्ष पार्वति ॥
यस्तु कुञ्जिकया देवि हीनां सप्तशतीं पठेत् ।
न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा ॥

अब विधिपूर्वक देवी के निम्नलिखित मन्त्र तथा यन्त्र की विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिए । मन्त्र—

क्षौं ॐ ॐ वषट् ठः ठः

पीतवस्त्राय नमः	**त्रिपुरदेवतायै नमः**
जतपीतङ्गाय नमः	**सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः**
उमामहेश्वराभ्यां नमः	**कामाख्यायोनिमण्डलाय नमः**

मन्त्र—'ॐ ॐ वषट् ठः ठः ।'

निम्न प्रकार का यन्त्र बनाये । फिर उसी के नीचे मन्त्र लिखें । कामाख्या देवी का बीज मन्त्र 'क्षौं' है । इसके परमेष्ठी ऋषि, गायत्री छन्द, त्रिपुराख्या देवता हैं । यह यन्त्र देवीस्वरूप ही है । इसको शुभ मूहर्त में शुभ पर्व पर ब्रह्मवेला में स्नान-पूजा आदि के पश्चात् बनाना चाहिये ।

यन्त्र निर्माण विधि—

यह यन्त्र सोने या चाँदी के पत्र पर भी बनवाया जा सकता है । बनवाने के बाद कामाख्या देवी की भावना कर इसका पूजना करना चाहिये । इस यन्त्र के सिद्ध होने पर अन्य सभी यन्त्र स्वतः सिद्ध हो जाते हैं । यदि भोजपत्र पर गोरोचन और कनेर के कलम से बना हुआ यन्त्र हो तो उसे ताम्रपात्र, स्वर्णपात्र या चाँदी के पात्र में रखकर पूजा करनी चाहिए ।

यन्त्र को बनाने के पहले और सिद्ध करने के पहले ऊपर वर्णित 'सिद्ध कुञ्जिकास्तोत्र' का पाठ अवश्य करना चाहिये, क्योंकि इस स्तोत्र के पाठ करने से सब प्रकार की बाधा और समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं । पाठ के बाद यन्त्र बनाए और फिर उसका पूजन करें । धातु में बने हुये यन्त्र का पहले बतलायी गयी विधि के अनुसार पूजन करें । तत्पश्चात् देवीसूक्त का पाठ करें । इससे परम सिद्धि प्राप्त होती है । साथ ही यह यन्त्र तथा इसके नीचे लिखा हुआ मन्त्र सिद्ध हो जाता है ।

मारण, कामक्रोधनाशन, मोहन, इष्टदेव मोहन तथा सिद्धि, वशीकरण, मन का वशीकरण, स्तम्भन, इन्द्रियों की विषयों के प्रति उपरति और उच्चाटन, मोक्ष प्राप्ति के लिए छटपटाहट—ये सभी इस स्तोत्र का सोद्देश्य पाठ करने मात्र से सिद्ध होते हैं ।

तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम्

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ १ ॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ २ ॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कूर्म्यै नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥ ३ ॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥ ४ ॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥ ५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६ ॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७ ॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ८ ॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ९ ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १० ॥
या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ११ ॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १२ ॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १३ ॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १४ ॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १६ ॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १७ ॥
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १८ ॥
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १९ ॥
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २० ॥
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २१ ॥
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २२ ॥
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २४ ॥
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २६ ॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥ २७ ॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत् ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २८ ॥

स्तुता: सुरै: पूर्वमभीष्टसंश्रया-
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
करोतु सा न: शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापद: ॥ २९ ॥

या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति न: सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभि: ॥३०॥

कामाख्या यन्त्र निर्माण और कामाख्या देवी के ध्यान का वर्णन—

सिन्दूरमण्डलं कृत्वा त्रिकोणञ्च समालिखेत् ।
निजबीजानि तन्मध्ये योजयेत् साधकोत्तम: ॥
चतुरस्रं लिखेद् देवि ततो वज्राष्टकं प्रिये ।
अष्टदिक्षु यजेत्ताश्च न्यासजालं विधाय च ॥
अक्षोभ्यश्च ऋषि: प्रोक्त: छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
कामाख्या देवता सर्वसिद्धये विनियोजिता ॥
कराङ्गन्यासकादीनि निजबीजेन कारयेत् ।
षड्दीर्घभाजा ध्यायेत्तु कामाख्याभीष्टदायिनीम् ॥
रक्तवस्त्रां वरोद्युक्तां सिन्दूरतिलकान्विताम् ।
निष्कलङ्कं सुधाधामवदनकमलोज्ज्वलाम् ॥
स्वर्णादिमणिमाणिक्यभूषणैर्भूषितां पराम् ।
नानारत्नादिनिर्माणसिंहासनोपरिस्थिताम् ॥
हास्यवक्त्रां पद्मरागमणिकान्तिमनुत्तमाम् ।
पीनोत्तुङ्गकुचां कृष्णां श्रुतिमूलगतेक्षणाम् ॥
कटाक्षैश्च महासम्पद्दायिनीं परमेश्वरीम् ।
सर्वाङ्गसुन्दरीं नित्यां विद्याभि: परिवेष्टिताम् ॥
डाकिनीयोगिनीविद्याधरीभि: परिशोभिताम् ।
कामिनीभिर्युतां नानागन्धाद्यै: परिगन्धिताम् ॥
ताम्बूलादिकराभिश्च नायिकाभिर्विराजिताम् ।
समस्तसिद्धवर्गाणां प्रणतानां प्रतीक्षणाम् ॥
त्रिनेत्रां सम्मोहकरां पुष्पचापेषु बिभ्रतीम् ।
भगलिङ्गसमाख्यानं किन्नरीभ्योऽपि शृण्वतीम् ॥
वाणीलक्ष्मीसुधावाक्यप्रतिवाक्यमहोत्सुकाम् ।
अशेषगुणसम्पन्नां करुणासागरां शिवाम् ॥

सिन्दूर से मण्डल (= गोलचक्र) बनाकर उसके बीच में त्रिकोण लिखें। उसके बाद साधकोत्तम उस त्रिकोण के बीच में अपना बीज 'त्रीं' को लिखें। हे देवि ! (मण्डल के बाहर) चौकोर चतुर्भुज बनाये। हे प्रिये ! इसके बाहर वज्राष्टक लिखें। तत्पश्चात् न्यास-समूह को सम्पादित कर आठों दिशाओं में उस (काली) की पूजा करे। इस काली मन्त्र के ऋषि अक्षोभ्य, छन्द अनुष्टुप् और देवता कामाख्या हैं। यह समस्त सिद्धि के लिये विनियोजित हैं।

(न्यास के पहले विनियोग करते समय—ॐ अस्य श्री कामाख्या मन्त्रस्य अक्षोभ्य ऋषिरनुष्टुप् छन्दः कामाख्या देवता सर्वसिद्धये विनियोगः—ऐसा कहना चाहिये) कराङ्गन्यास आदि अपने बीज (= त्रीं) से करना चाहिये।

अभीष्टदायिनी कामाख्या का ध्यान (निम्नलिखित रूप में) करना चाहिये। छह दीर्घ स्वरों से युक्त बीजमन्त्र (= त्रां त्रीं त्रूं त्रैं त्रौं त्रः) वाली यह देवी लाल वस्त्र धारण की हुई है। एक हाथ में वरद मुद्रा है। सिन्दूर की तिलक लगायी हुई हैं। कलङ्करहित, सुधा के धाम (= चन्द्रमा) के समान अथवा कमल के समान कान्तिमान् मुख वाली, सुवर्ण आदि तथा मणि माणिक्य आदि जटित भूषणों से भूषित, परा (= अत्यन्त उत्कृष्ट), नाना रत्न आदि से निर्मित सिंहासन के ऊपर बैठी हुई, ईषद् हास्ययुक्त मुख वाली, पद्मरागमणि के समान कान्ति वाली, सर्वोत्तम, चौड़े और ऊँचे स्तनों वाली, क्षीणकाय, कर्णमूल तक विस्तृत आँखों वाली, कटाक्ष मात्र से महासम्पत् देने वाली, परमेश्वरी, सर्वाङ्गसुन्दरी, नित्या, विद्याओं से परिवेष्टित, डाकिनी योगिनी विद्याधरी से परिवेष्टित, कामिनियों से युक्त, अनेक गन्धों से सुगन्धित, हाथों में ताम्बूल आदि ली हुई नायिकाओं से विशेषरूप से शोभायमान, प्रणत समस्त सिद्ध वर्गों के द्वारा प्रतीक्षित (या उनके प्रति करुणामयी दृष्टि डालने वाली), त्रिनेत्रा, मोहकरी, पुष्पों का धनुष-बाण धारण की हुई, किन्नरियों के द्वारा भी भगलिङ्गसमाख्यान को सुनती हुई, वाणी (= सरस्वती) और लक्ष्मी के अमृत वचन और प्रतिवचन के प्रति महोत्सुक, समस्त गुण-सम्पन्न, करुणासागर शिवा (= काली) का ध्यान करना चाहिये।

कामाख्या देवी की पूजाविधि का वर्णन—

आवाहयेत्ततो देवीमेवं ध्यात्वा च साधकः।
पूजयेच्च यथाशक्ति विधानेन हरप्रिये ॥
कुङ्कुमाद्यैः रक्तपुष्पैः सुगन्धिकुसुमैस्तथा।
जवायावकसिन्दूरैः करवीरैर्विशेषतः ॥

साधक इस प्रकार ध्यान कर देवी का आवाहन करे। हे हरप्रिये ! तत्पश्चात् कुंकुम आदि, रक्तपुष्प, सुगन्धि पुष्प, जवा (= गुड़हल) के फूल यावक

(= अलक्तक), सिन्दूर, विशेष रूप से करवीर (= कनेर) के फूलों से यथाशक्ति विधानपूर्वक उन देवी की पूजा करनी चाहिए ।

करवीरेषु देवेशि कामाख्या तिष्ठति स्वयम् ।
जवायाञ्च तथा विद्धि मालत्यादिसमीपके ॥
करवीरस्य माहात्म्यं कथितुं नैव शक्यते ।
प्रदानात्तु जवायाश्च गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥

हे देवेशि ! करवीर तथा जवाकुसुम (के फूलों) में देवी स्वयं निवास करती है तथा मालती आदि के समीप रहती हैं । करवीर का माहात्म्य कहा नहीं जा सकता । देवी के लिये जवा पुष्प अर्पित करने से साधक गाणपत्य (= गणेश का पद) प्राप्त करता है ।

पञ्चमकार की महिमा का वर्णन—

पूजयेदम्बिकां देवीं पञ्चतत्त्वेन सर्वदा ।
पञ्चतत्त्वं विना पूजामभिचाराय कल्पते ॥
पञ्चतत्त्वेन देव्यास्तु प्रसादो जायते क्षणात् ।

देवी की सदा पञ्चतत्त्व (पञ्च मकार) से पूजा करनी चाहिये । पञ्चतत्त्व के बिना की गयी पूजा अभिचार के लिये मानी जाती है । पञ्चतत्त्व के द्वारा देवी क्षणभर में प्रसन्न हो जाती है ।

मद्येन मोदते स्वर्गे मांसेन मानवाधिपः ॥
मत्स्येन भैरवीपुत्रो मुद्रया धातृतां व्रजेत् ।
परेण च महादेवि सायुज्यं लभते नरः ॥

(पञ्चतत्त्व का प्रयोक्ता) मद्य के द्वारा देवी की पूजा से स्वर्ग में आनन्द उठाता है । मांस से पूजा करने पर वह साधक राजा बन जाता है । मत्स्य के द्वारा (देवी की अर्चना करने पर) भैरवीपुत्र होता है । मुद्रा से विधाता हो जाता है । हे महादेवि ! पर (= अन्तिम = मैथुन) से मनुष्य (शक्ति के साथ) सायुज्य प्राप्त करता है ।

इसके बाद वेदी या कुण्ड का जिस प्रकार संस्कार किया गया जाता है वह संक्षेप में बतलाया जा रहा है । सर्वप्रथम मूलमन्त्र का उच्चारण कर कुण्ड अथवा वेदी का निरीक्षण करे । तत्पश्चात् 'ॐ फट्' मन्त्र का उच्चारण कर समिधा आदि का प्रोक्षण एवं ताड़न करे । फिर 'ॐहुम्' इस कवच मन्त्र से अभ्युक्षण कर वेदी पर तीन-तीन रेखाएं खींचे, जो पूर्व से पश्चिम अथवा उत्तर से दक्षिण खींची गयी हों । प्रणव से अभ्युक्षण कर देवी के सिंहासन की पूजा करनी

चाहिये । उस समय 'ॐ आधारशक्तये नमः' से आरम्भ कर 'ॐ अमुकदेवी योगपीठाय नमः' तक के मन्त्रों द्वारा पीठ की पूजा करनी चाहिये । अर्थात् उस पीठ पर परम दयालु भगवान् शिव और पार्वती का आह्वान करके गन्धादि पञ्चोपचार से श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा करे । तत्पश्चात् देवी का निम्नलिखित रूप में ध्यान करना चाहिए—

'भगवती पार्वती ऋतुस्नान से निवृत्त होकर भगवान् शङ्कर के पास विराजमान हैं, इनके मन में मिलन की आकांक्षा जाग्रत हो गयी है, ये दोनों देवता अब हास-विलास करना चाहते हैं ।'

अग्नि स्थापन तथा संस्कारादि—

उपर्युक्त रूप की कल्पना करने के बाद एक पात्र में अग्नि लाकर उनके सम्मुख रखें । उसमें से क्रव्यादांश का परित्याग करके पूर्वोक्त वीक्षणादि क्रियाओं से अग्नि का संस्कार करे । तत्पश्चात् अग्नि बीज 'रं' का उच्चारण कर उस अग्नि में चेतना की योजना करे । फिर सात बार प्रणव का उच्चारण कर अग्नि को अभिमन्त्रित करे । अब यहाँ गुरु को चाहिये कि वे अग्नि के समक्ष 'धेनुमुद्रा' प्रदर्शित करे और 'ॐ हुँ' मन्त्र से अवगुण्ठन करे । फिर अपने घुटनों को टेक कर प्रणव मन्त्र का उच्चारण करते हुए चन्दनादि से सुपूजित अग्नि को प्रदक्षिणा के क्रम से कुण्ड के ऊपर घुमाये और 'यह अग्नि शिवजी का वीर्य स्वरूप है'—इस भावना के साथ कुण्डरूपा देवी की योनि में छोड़ दे उस समय भगवान् 'शिव' तथा भगवती 'शिवा' को आचमन कराये । तत्पश्चात् 'ॐ चित्पिङ्गल ! हन-हन, दह-दह, पच-पच सर्वज्ञ ! आज्ञापय स्वाहा' इस मन्त्र को पढ़कर अग्नि प्रज्वलित करे ।

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् ॥

(मैं जातवेद नामक प्रज्वलित अग्नि को जो कि सुवर्ण के समान, स्वच्छ, प्रज्वलित एवं विश्वतोमुख (= सब ओर प्रकाश करने वाला तथा समस्त अभीष्ट सिद्ध करने वाला है) को प्रणाम करता हूँ ।)

इस मन्त्र से आदरपूर्वक अग्निदेव की स्तुति करें ।

षडङ्गन्यास—

इसके बाद आचार्य को वह्निमन्त्र से षडङ्गन्यास करना चाहिये । अर्थात् 'ॐ सहस्रार्चिषे—हृदयाय नमः, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्, ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुम्, ॐ सप्तजिह्वाज नेत्रत्रयाय वौषट्,

'ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट्' । इस प्रकार पूर्वस्थान में षडङ्गन्यास करें । अग्नि के ये नाम अङ्गन्यास के समय जातियुक्त अर्थात् 'नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट् तथा फट्' इन पदों से युक्त छः अङ्गों में न्यस्त होते हैं ।

अग्निदेव का ध्यान—

तत्पश्चात् अग्निदेव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए—'ये अग्निदेव कनकवर्ण तीन नेत्रों से सुशोभित और कमल के आसन पर विराजमान हैं ।' इसके बाद मन्त्रज्ञ साधक को चाहिए कि इष्ट, भक्ति, स्वस्तिक, अभय—इन चारों मुद्राओं को धारण करने वाले, परम मङ्गलस्वरूप अग्निदेव तथा कुण्ड मेखलाओं का जल से अभिषिञ्चन कर दें ।

परिस्तरण की विधि—

इतना करने के बाद कुशाओं से परिस्तरण करे, अर्थात् कुशकण्डिका विधि से स्थापित अग्निकुण्ड के परिधि (= वृत्त) त्रिकोण एवं षट्कोण आदि यन्त्रों से विभूषित अष्टदल कमल और भूपुरसहित अग्निस्थापनपूर्वक उस देवता का यहाँ विधिवत् पूजन करे । हे मुने ! यह सब कार्य वह्निमन्त्र द्वारा ही सम्पन्न करना चाहिए । विस्तृत विधि इस प्रकार है—

'ॐ वैश्वानरो जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा ।'

इस मन्त्र द्वारा बीच में तथा षट्कोणों में अवस्थित 'हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा एवं अतिरिक्ता'—अग्नि की इन सात जिह्वाओं की पूजा करे । तत्पश्चात् अष्टदल कमल के केसरों में अङ्गों की तथा दलों (= पंखुड़ियों) में शक्ति एवं स्वस्तिक धारण करने वाली मूर्त्तियों की पूजा करे । वे आठ प्रकार की अग्निमूर्तियाँ '१. जातवेदा, २. सप्तजिह्वा, ३. हव्यवाहना, ४. अश्वोदरजा, ५. वैश्वानरी, ६. कौमारतेजा, ७. विश्वमुखी तथा ८. देवमुखी'—इन नामों से प्रसिद्ध हैं । इनके आदि में 'ॐ अग्नये' और अन्त में 'नमः स्वाहा' इस पद का उच्चारण करके पूजा करने का विधान है । अर्थात्—

'ॐ अग्नये जातवेदसे नमः स्वाहा, ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः स्वाहा'

इत्यादि प्रकार से आठों दलों में मूर्तियों की पूजा करे । तत्पश्चात् चारो दिशाओं में वज्र आदि आयुध धारण करने वाले लोकपालों की पूजा करे ।

हवन विधि—

हवन के लिए स्त्रुक्-स्त्रुवा तथा घृत का संस्कार करके विधिवत् अग्नि में हवन करे । इस समय घृत को दक्षिण भाग से उठाकर 'ॐ अग्नये स्वाहा'—

इस मन्त्र से अग्नि के दक्षिण नेत्र में और वाम ओर से उठाकर 'ॐ सोमाय स्वाहा' से वामनेत्र में तथा 'ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' इस मन्त्र से अग्नि के मध्य नेत्र में घृताहुति दे। फिर दक्षिण भाग से घृत लेकर 'ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इस मन्त्र द्वारा अग्निदेव के मुख में हवन करे। तत्पश्चात् साधक 'ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा' कह कर त्रिव्याहृति होम करें। स्मरण रहे कि इस प्रकार तीन बार घृताहुति देनी चाहिए।

पुनः प्रणव मन्त्र से गर्भाधान आदि आठ संस्कारों के निमित्त घृत की आहुतियाँ दे। वे आठ संस्कार क्रमशः इस प्रकार हैं—१. गर्भाधान, २. पुंसवन, ३. सीमान्तोन्नयन, ४. जातकर्म, ५. नामकरण, ६. निष्क्रमण, ७. अन्नप्राशन तथा ८. चूड़ा-व्रतबन्ध। इसी प्रकार चार वैदिक संस्कारों के लिए भी चार बार प्रणव का उच्चारण कर घृताहुति देनी चाहिए। वे इस प्रकार हैं—१. महामान्य, २. औपनिषद्, ३. गोदान तथा ४. उद्वाहक व्रत। इसके बाद शिव-पार्वती की पूजा विधिवत् करके उनका विसर्जन कर दें।

—राधेश्याम चतुर्वेदी

Add 80 to text page to get pdf page

विषयानुक्रमणिका

पारिभाषक शब्दावली

अखण्ड मण्डलाकार	ध्यान प्रक्रिया के उत्कृष्टतम होने पर ऊर्ध्व नेत्र से दृश्यमान चिदाकाश ही अखण्डमण्डलाकार है । यही विष्णु का परमपद है ।
अनुकल्प	किसी वस्तु के बदले में अर्पित की जाने वाली दूसरी वस्तु । जैसे पशु के बदले दही उड़द या मधु लिप्त छुहारा आदि ।
अनुग्रह	छिपाये गये स्वरूप को अनावृत करना ।
अभिचार	मारण सम्मोहन आदि षट् कर्म ।
अभिषेक	अनुष्ठान की समाप्ति पर यजमान के ऊपर जल छिड़कना ।
आकर्षण	दूरस्थ व्यक्ति को पास में ले आने की प्रक्रिया ।
आगम	शिव मुखोक्त शास्त्र जो पार्वती को बतलाया गया ।
आनन्द	परम सत्ता की बहिरङ्गा शक्ति ।
उच्चाटन	अपने काम में मन न लगना या अपने स्थान से भाग जाने की इच्छा । इसकी विद्या ।
उर्वशी	स्वर्ग की अप्सरा । शापवश राजा पुरुरवा की पत्नी ।
ऋतुयुक्तलता	रजस्वला स्त्री ।
ऋतुस्नाता	रजोधर्म के निवृत्त होने के बाद प्रथम बार स्नान कर शुद्ध हुई स्त्री ।
कल्प	ब्रह्मा की १०० वर्ष की आयु का काल ।
कामबीज	क्लीं ।
कामरूप	अपनी इच्छा के अनुसार रूप परिवर्त्तन की विधि या स्थान या व्यक्ति ।
कामाख्या	कामरूप पीठ का दूसरा नाम ।
कालिका	आद्या शक्ति । शिव की अर्द्धाङ्गिनी । इसके अनेक रूप हैं यथा दक्षिणा काली, वामा काली आदि ।
काली बीज	क्रीं ।
किन्नरी	नपुंसक दिव्य देहधारी स्त्री जो किन्नर लोक में रहती है ।

कुज	मङ्गल ।
कूर्च	हूँ ।
कूष्माण्ड	एक विशेष योनि जो बालकों स्त्रियों को कष्ट देती है ।
कौलचक्र	कौल साधकों का विशिष्ट समुदाय ।
क्रोध	क्रूं, हुं, हूं ।
क्षोभण	शान्त स्थिति के विपरीत की स्थिति या इसकी विद्या ।
गह्वर	योनि ।
गाणपत्य	गणपति को सर्वोच्च मानने वाला सम्प्रदाय ।
गाणपत्य बीज	गं ।
गुरु	ज्ञानान्धकार दूर कर शिव समावेश प्राप्त कराने वाला।
चक्र	१. कौलमार्ग के अनुसार निश्चित समय में गुरु एवं साधकों का वह समुदाय जो साधना के लिये विशिष्ट स्थान में एकत्रित होता है । २. शरीर के अन्दर वर्णों से निर्मित यन्त्र ।
चक्रशुद्धि	कौलमार्ग के अनुसार एक विशिष्ट अनुष्ठान ।
चतुरस्र	चौकोर, चार कोणों वाला ।
चतुर्वर्ग	धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ।
चिन्तामणि	एक विशिष्ट मन्त्र ।
ठद्वय	स्वाहा स्वाहा ।
डाकिनी	पार्वती के शरीर से उत्पन्न एक शक्ति ।
तन्त्र	आत्म तत्त्व के ऊपर वर्तमान आवरण को हटाने तथा उसके अपने स्वरूप को जानने की प्रक्रिया बतलाने वाला उपाय ।
तारा	दश महाविद्याओं में से अन्यतम ।
त्रासन	व्यक्ति के अन्दर निष्कारण भय उत्पन्न करना ।
दक्षिण काली	शिव के ऊपर खड़ी काली की वह मूर्त्ति जिसका दायाँ पैर आगे होता है ।
दानव	दनु की सन्तान ।
देशिक	आचार्य ।
द्रावण	किसी व्यक्ति को अभिचार के द्वारा उसके स्थान से दूर भगा देना।
नाद	इस ब्रह्माण्ड या व्यक्ति के शरीर में बिना किसी प्रेरक तत्त्व के निरन्तर उठने वाली ध्वनि । इसे पश्यन्तीवाक् कहा जाता है ।
नारसिंह	अ, उ, क्लीं ।

निग्रह	परमेश्वर का अपने स्वरूप को आवृत करना, छिपा लेना।
निजबीज	क्षौं।
निर्माल्य	अशुद्ध, पूजा के लिये अयोग्य माला या पुष्प।
निर्वाण	मोक्ष।
पञ्चतत्त्व	मांस, मद्य, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन।
पशु	अज्ञान रूपी पाश से बद्ध जीव।
पीठ	जिस स्थान में लौकिक सिद्धि शीघ्र प्राप्त हो और आत्मज्ञान विलम्ब से।
पुरश्चरण	किसी मन्त्र के वर्णों की संख्या के अनुसार उतने हजार का लघु एवं उतने लाख का बृहत् अनुष्ठान।
पुरस्क्रिया	पुरश्चरण।
पुरुष	सांख्य दर्शन के अनुसार चेतन तत्त्व।
पुरुषोत्तम बीज	क्लीं, अं।
प्रकृति	सांख्य दर्शन के अनुसार प्रथम जड़ तत्त्व।
प्रणव	ओऽम्, ह्रीं, सौः।
प्रेत	मृत मनुष्य की आत्मा से युक्त सूक्ष्मशरीर।
बिन्दु	परम सत्ता का प्रथम स्पन्द। इसे शब्द ब्रह्म या परावाक् कहा जाता है।
भगवान्	समग्र ऐश्वर्य, बल, लक्ष्मी, यश, ज्ञान और वैराग्य से युक्त।
मण्डल	गोलाकार वृत्त।
महावीर	प्रथम श्रेणी के साधक से नीचे किन्तु वीर से ऊपर। इसे यह संसार कभी-कभी शिव से भिन्न प्रतीत होता है।
माया बीज	ह्रीं।
मार्तण्ड बीज	सूं, ब्लयों, ह्र्यूं, ह्र्यौं।
मोक्ष	देहधारण का ऐकान्तिक और आत्यन्तिक अभाव।
मोहन	किंकर्त्तव्यविमूढ़ कर देने की विद्या, विचारशून्य कर देने की विद्या।
यामल	तन्त्र का लघुरूप।
योगिनी	योग साधना करने वाली स्त्री।
रमा बीज	श्रीं।
ललना बीज	स्त्रीं।
वज्राष्टक	आठ की संख्या में विशेष आकृति।
वधूबीज	स्त्रीं।

वशीकरण	अपने वश में करने की विद्या ।
वाग्भव बीज	ऐं ।
वाराह बीज	हूं ।
विद्वेषण	किसी व्यक्ति या पदार्थ के प्रति शत्रुभाव या इसे उत्पन्न करने की विद्या ।
विद्याधरी	गन्धर्वलोक की विशिष्ट स्त्री ।
विनायक	यह भी एक विशेष योनि है जो कष्ट देती है ।
विष्णु	अत्यन्त व्यापक, प्रकृत्यण्ड के अधिष्ठाता देव । इनके कई रूप हैं ।
वीर	वीराचारी साधक । इसे समस्त तत्त्व शिव से भिन्न तथा अभिन्न दोनों प्रकार से प्रतीत होते हैं । यह द्वितीय श्रेणी का साधक है । प्रथम श्रेणी का साधक दिव्य होता है । उसे सब शिवरूप दिखायी देता है ।
वेदबीज	ॐ ।
वेश्यालता	वेश्या स्त्री ।
वैष्णव	विष्णु को परम सत्ता मानने वाला सम्प्रदाय ।
षड्दर्शन	न्याय वैशेषिक, सांख्य योग, मीमांसा वेदान्त ।
षोडशी	दश महाविद्याओं में से एक । यह श्रीविद्या या त्रिपुरा के भी नाम से जानी जाती है । यह गायत्री का प्रच्छन्न रूप है ।
शक्ति बीज	ह्सौः, ह्सौ, अं, क्लीं, सौः ।
शाक्त	शक्ति को ही सर्वोच्च सत्ता मानने वाला साधक समुदाय ।
शाङ्कर बीज	शं ।
श्रीबीज	श्रीं ।
सहरूप्य	(सारूप्य) इष्टदेव के रूप वाला होना ।
सायुज्य	इष्टदेव के साथ संयुक्त होना ।
सालोक्य	इष्टदेव के लोक में निवास ।
सौर	सूर्य को सर्वोपरि समझने वाला साधक समुदाय ।
स्तम्भन	किसी सक्रिय व्यक्ति या वस्तु का क्रियारहित होना ।
स्पर्श मणि	पारस पत्थर ।

॥ श्रीः ॥

कामाख्यातन्त्रम्

प्रथमः पटलः

ॐ नमः कालिकायै । श्रीकामाख्या जयति ॥

कामाख्यामाहात्म्यवर्णनम्

श्रीदेव्युवाच—

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वविद्याधिप प्रभो ।
सर्वदानन्दहृदय सर्वागमप्रकाशक ॥ १ ॥
श्रुतानि सर्वतन्त्राणि यामलानि च भूरिशः ।
विद्यास्ताः सकला देव सफलास्त्वत्प्रसादतः ॥ २ ॥
सारात् सारतरं तन्त्रं किं जानासि वद प्रभो ।
अतीवेदं रहःस्थानं तेन मे शुश्रुषा सदा ॥ ३ ॥

* ज्ञानवती *

कामाख्यामाहात्म्य का वर्णन—श्रीदेवी ने कहा—हे भगवन् ! हे समस्त धर्मों के ज्ञाता ! हे समस्त विद्याओं के अधिपति ! हे सदा आनन्दहृदय ! हे सम्पूर्ण आगम शास्त्र के प्रकाशक ! प्रभो ! मैंने सब तन्त्रों और यामलों को बहुत बार सुना । हे देव ! आपकी कृपा से (मेरे द्वारा सुनी गयी) समस्त विद्यायें सफल हैं (अर्थात् मैंने उनका रहस्य जान लिया है और तदनुसार आचरण भी कर रही हूँ)। हे प्रभो ! रहस्य से भी रहस्यतर तन्त्र कौन-सा है इसको आप जानते हैं । (उसको मुझे) बतलाइये । यह अत्यन्त रहःस्थान (= गोपनीय तथ्यों का भण्डार) है इस कारण मेरे (मन में) सदा (उसको) सुनने की इच्छा रहती है ॥ १-३ ॥

श्रीशिव उवाच---

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मदीये प्राणवल्लभे ।
योनिरूपा महाविद्या कामाख्या वरदायिनी ॥ ४ ॥
वरदानन्ददा नित्या महाविभववर्द्धिनी ।
सर्वेषां जननी सापि सर्वेषां तारिणी मता ॥ ५ ॥
रमणी चैव सर्वेषां स्थूला सूक्ष्मा शुभा सदा ।
तस्यास्तन्त्रं प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय ॥ ६ ॥
निखिलासु च विद्यासु यासु सिध्यन्ति साधकाः ।
यत्र कुत्रापि केनापि कामाख्या फलदायिनी ॥ ७ ॥
कामाख्या सिद्धिदा तेषां सर्वविद्यास्वरूपिणी ।
कामाख्याविमुखा लोका निन्दिता भुवनत्रये ॥ ८ ॥

हे देवि ! हे मेरी प्राणवल्लभे ! सुनो । (मैं उसको) बतलाऊँगा । कामाख्या (नामवाली एक) महाविद्या है जो योनिरूपा, वरदायिनी, वरदा, आनन्ददा, नित्या और महाविभववर्धिनी है । वह सबकी जननी और सबकी तारिणी भी कही गयी है । सबकी रमणी वह स्थूल और सूक्ष्म होते हुए सदा (सबके लिये) शुभ है । (मैं) उसके तन्त्र को बतलाऊँगा । (तुम) सावधान होकर (उसको) समझो । वे समस्त विद्यायें जिनमें साधक सिद्धि प्राप्त करते हैं उन (विद्याओं) में तथा जहाँ कहीं भी किसी के भी द्वारा (उपासित) कामाख्या फलदायिनी है । सर्वविद्यारूपिणी वह कामाख्या उनको सिद्धि देती है । कामाख्या से विमुख लोगों की तीनों भुवनों में निन्दा होती है ॥ ४-८ ॥

विना कामात्मिकां कापि न दात्री सिद्धिसम्पदाम् ।
कामाख्यैव सदा धर्मः कामाख्या चार्थ एव च ॥ ९ ॥
कामाख्या कामसम्पत्तिः कामाख्या मोक्ष एव च ।
निर्वाणं सैव देवेशि सैव सायुज्यमीरिता ॥ १० ॥
सालोक्यं सहरूपञ्च कामाख्या परमा गतिः ।
सेविता देवि ब्रह्माद्यैश्चन्द्रेण विष्णुना तथा ॥ ११ ॥

विना कामात्मिका (= कामाख्या) के कोई भी (शक्ति) कहीं भी सिद्धिसंपत् को देने वाली नहीं है । कामाख्या ही शाश्वत धर्म है । कामाख्या ही अर्थ है । कामाख्या काम है और कामाख्या ही मोक्ष है । हे देवि ! वही निर्वाण है और वही सायुज्य (मुक्ति) कही गयी है । कामाख्या ही सालोक्य, सहरूप्य (= सारूप्य) मुक्ति और परमागति है । हे देवि ! वह ब्रह्मा आदि तथा चन्द्रमा और विष्णु के द्वारा से सेवित है ॥ ९-११ ॥

शिवता ब्रह्मता देवि ! विष्णुता चन्द्रताऽपि च ।
देवत्वं सर्वदेवानां निश्चितं कामरूपिणी ॥ १२ ॥
सर्वासामपि विद्यानां लौकिकं वाक्यमेव च ।
कामाख्याया महादेव्याः स्वरूपं सर्वमेव हि ॥ १३ ॥
पश्य पश्य प्रिये सर्वं चिन्तयित्वा हृदि स्वयम् ।

(यह कामाख्या शिव की) शिवता (ब्रह्मा की) ब्रह्मता (विष्णु की) विष्णुता एवं (चन्द्र की) चन्द्रता है । यह कामरूपिणी समस्त देवों का देवत्व है । समस्त विद्याओं का लौकिक वाक्य है । समस्त जगत् देवी कामाख्या का स्वरूप है । हे प्रिये ! हृदय में (कामाख्या का) ध्यान कर स्वयं (समस्त संसार) को देखो ॥ १२-१४- ॥

कामाख्यां न विना किञ्चिद् विद्यते भुवनत्रये ॥ १४ ॥
लक्षकोटिमहाविद्यास्तन्त्रादौ परिकीर्त्तिताः ।
सारात्सारतरं देवि सर्वेषां षोडशी मता ॥ १५ ॥
तस्यापि कारणं देवि कालिका जगदम्बिका ।
चन्द्रकान्तिर्यथा देवि जायते लीयते पुनः ॥ १६ ॥
स्थावराणि चराणि च नित्यानित्यानि यानि च ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं विना तां नैव जायते ॥ १७ ॥

॥ इति कामाख्यातन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे उपक्रमनामा प्रथम पटलः ॥ १ ॥

कामाख्या के बिना इन तीनों भुवनों में कुछ नहीं है । तन्त्र आदि में एक लाख करोड़ महाविद्यायें कही गयी हैं । हे देवि ! उन सबके सारात् सार के रूप में षोडशी कही गयी है । हे देवि ! उसका भी कारण जगदम्बा काली हैं । जिस प्रकार चन्द्रमा की कान्ति उत्पन्न और लीन होती है उसी प्रकार जो भी नित्य अथवा अनित्य स्थावर और जङ्गम हैं वे बिना उस (कामाख्या) के न तो उत्पन्न होते हैं (और न लीन होते हैं) यह (कथन) सत्य है, सत्य है पुनः सत्य है ॥ -१४-१७ ॥

कामाख्यातन्त्र के शिवपार्वतीसंवाद में उपक्रम नामक पहले पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदी कृत ज्ञानवती नामक हिन्दी टीका सम्पूर्ण हुई ॥ १ ॥

द्वितीयः पटलः

मन्त्रोद्धारवर्णनम्

श्रीशिव उवाच---

मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि शृणु देवि परात् परम् ।
यज् ज्ञात्वा जायते सिद्धिर्देवानामपि दुर्ल्लभाम् ॥ १ ॥
मन्त्रस्यास्य प्रभावेण मोहयेदखिलं जगत् ।
ब्रह्मादीन् मोहयेद् देवि बालकं जननी यथा ॥ २ ॥

मन्त्रोद्धार का वर्णन—श्री शिव ने कहा—हे देवि ! (अब मैं) मन्त्रोद्धार को बतलाऊँगा (उसको) सुनो । जिस परात् पर (मन्त्रोद्धार) को जानकर देवताओं के लिये भी दुर्लभ सिद्धि को प्राप्त किया जाता है । इस मन्त्र के प्रभाव से (साधक) समस्त जगत् ब्रह्मा आदि को (उसी प्रकार) संमोहित कर लेता है जैसे माता अपने बालक को ॥ १-२ ॥

देवदानवगन्धर्वकिन्नरादीन् सुरेश्वरि ।
मोहयेत् क्षणमात्रेण प्रजाश्च नृपतिर्यथा ॥ ३ ॥
मन्त्रस्य पुरतो देवि राजानः सचिवादयः ।
अन्ये च मानवाः सर्वे मेषादिजन्तवो यथा ॥ ४ ॥
मोहयेन्नगरं राज्ञः सहस्त्यश्वरथादिकम् ।
उर्वश्याद्यास्तु स्ववेश्या राजपत्न्यादिकाः क्षणात् ॥ ५ ॥

हे सुरेश्वरि ! (कामाख्या का साधक) देवता दानव गन्धर्व किन्नर आदि को एक क्षण में उसी प्रकार सम्मोहित कर लेता है जैसे (अपने उत्कृष्ट कर्म से) राजा प्रजा को (सम्मोहित कर लेता है) । हे देवि ! मन्त्र (की सिद्धि किये हुए व्यक्ति) के सामने राजा सचिव, अन्य सब मनुष्य उसी प्रकार मुग्ध हो जाते हैं जैसे (बलि के लिये लाये गये) मेष आदि जन्तु (शरीर पर अभिमन्त्रित जल

या अक्षत को डालने से) मुग्ध हो जाते हैं । (इस मन्त्र के प्रभाव से साधक) हाथी, घोड़ा, रथ आदि से युक्त सम्पूर्ण नगर, उर्वशी आदि स्वर्ग की अप्सराओं, राजपत्नी आदि को एक क्षण में मुग्ध कर लेता है ॥ ३-५ ॥

स्तम्भनं मोहनं देवि क्षोभणं जृम्भणं तथा ।
द्रावणं त्रासनञ्चैव विद्वेषोच्चाटनं तथा ॥ ६ ॥
आकर्षणञ्च नारीणां विशेषेण महेश्वरि ।
वशीकरणमन्यानि साधयेत् साधकोत्तमः ॥ ७ ॥
अग्निः स्तम्भति वायुश्च सूर्यो वारिसमूहकः ।
कटाक्षेणैव सर्वाणि साधकस्य न चान्यथा ॥ ८ ॥
जगज्जयति मन्त्रज्ञः कामदेवो यथा जयी ।
तस्यासाध्यं त्रिभुवने न किञ्चित् प्राणवल्लभे ॥ ९ ॥

हे देवि ! स्तम्भन, मोहन, क्षोभण, जृम्भण, द्रावण, त्रासन, विद्वेषण, उच्चाटन और हे महेश्वरि ! विशेष रूप से स्त्रियों का आकर्षण, वशीकरण और अन्य साध्यों को साधकोत्तम (इस मन्त्र के प्रभाव से) सिद्ध कर लेता है । ऐसे साधक के कटाक्ष मात्र से अग्नि, वायु, सूर्य और समुद्र ये सब स्तम्भित हो जाते हैं अन्य उपाय से नहीं । हे प्राणवल्लभे ! जिस प्रकार (त्रैलोक्य-) जयी कामदेव उसी प्रकार (साधक कामाख्या के सिद्ध) मन्त्र के द्वारा सम्पूर्ण जगत् को जीत लेता है । उसके लिये तीनों भुवन में कुछ भी असाध्य नहीं होता है ॥ ६-९ ॥

मन्त्रस्वरूपवर्णनम्

जृम्भणान्तं त्यक्तपाशं यात्रावारणरोहकम् ।
वामकर्णयुतं देवि नादबिन्दुयुतं पुनः ॥ १० ॥
एतत्तु त्रिगुणीकृत्य कल्पवृक्षमनुं जपेत् ।
एकं वापि द्वयं वापि त्रयं वा जपेत् सुधीः ॥ ११ ॥
कामाख्यासाधनं कार्यं सर्वविद्यासु साधकैः ।
अन्यथा सिद्धिहानिः स्यात् विघ्नस्तेषां पदे पदे ॥ १२ ॥

मन्त्र के स्वरूप का वर्णन—(अब कामाख्या देवी के मूल मन्त्र की चर्चा करते हैं—) हे देवि ! जृम्भणान्त (= त) त्यक्तपाश (= अ से रहित) यात्रावारण (= र) से रोहक (= युक्त) वामकर्ण (= ई) नादबिन्दु (ँ) (इसे इस प्रकार समझना चाहिये—) जृम्भण = ण के अन्त = बाद वाला 'त' जो कि पाश अर्थात् आकार से रहित हो = त् तथा यात्रावारण (= यात्रा का निवारक) 'र' से युक्त तथा वामकर्ण = ई से युक्त एवं नाद बिन्दु से युक्त इस प्रकार

'त्रीं' बनता है । कल्पवृक्ष के समान इस मन्त्र का जप करना चाहिए । इस कल्पवृक्ष को तीन गुना कर (= त्रीं त्रीं त्रीं) विद्वान् एक माला, दो माला, तीन माला अथवा एक हजार बार या एक लाख बार जप करे । समस्त साधकों को समस्त विद्याओं के विषय में कामाख्या की साधना करनी चाहिये । अन्यथा सिद्धि नहीं होगी और कदम-कदम पर उनको विघ्नों का सामना करना पड़ेगा ॥ १०-१२ ॥

किं शाक्ता वैष्णवा: किं वा किं सौरा गाणपत्यका: ।
महामायाव्रता: सर्वे तैलयन्त्रे वृषा इव ॥ १३ ॥
अथास्या: साधनं देवि शाक्तानामेव सुन्दरि ।
नात्र चक्रविशुद्धिस्तु कालादिशोधनं न च ॥ १४ ॥
कृते च नरकं याति सर्वं तस्य विनश्यति ।
क्लेशशून्यं परं देवि साधनं द्रुतबोधकम् ॥ १५ ॥

॥ इति कामाख्यातन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे मन्त्रोद्धारनामा द्वितीय पटल: ॥ २ ॥

शाक्त, वैष्णव, सौर, गाणपत्य कोई भी हों सब के सब उसी प्रकार महामायाव्रत वाले हैं जैसे तैलयन्त्र में वृष (जिस प्रकार बिना बैल के तैलयन्त्र अर्थात् तेल निकालने वाला कोल्हू नहीं चल सकता उसी प्रकार बिना कामाख्या के शाक्त आदि नहीं सफल हो सकते)। हे देवि ! हे सुन्दरि ! इसकी साधना शाक्तों की ही साधना है । यहाँ न तो चक्रशुद्धि की आवश्यकता होती है न काल आदि के शोधन की । ऐसा करने पर (साधक) नरक में जाता है और उसका सब नष्ट हो जाता है । हे देवि ! (इस कामाख्या की) परा साधना क्लेशशून्य और शीघ्र ज्ञानदायिका है ॥ १३-१५ ॥

कामाख्यातन्त्र के शिवपार्वतीसंवाद में मन्त्रोद्धार नामक दूसरे पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदी कृत ज्ञानवती नामक हिन्दी टीका सम्पूर्ण हुई ॥ २ ॥

तृतीयः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

कालीतारामन्त्रदाने चक्रचिन्तां करोतिः यः ।
का गतिस्तस्य देवेश निस्तारो विद्यते न वा ॥ १ ॥

श्रीदेवी ने कहा—हे देवेश ! काली और तारा के मन्त्रदान में जो चक्र की चिन्ता करता है उसकी क्या गति होती है? उसका निस्तार होता है या नहीं? (यह मुझे बतलाइये) ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच—

वयमग्निश्च कालोऽपि या या माता महेश्वरि ।
किं ब्रूमो देवदेवेशि कालिकातारिणीमनुम् ॥ २ ॥
अज्ञानात् यदि वा मोहात् कालीतारामनौ प्रिये ।
कृते चक्रादिगणने शुनीविष्ठाकृमिर्भवेत् ॥ ३ ॥
कल्पान्ते च महादेवि निस्तारो विद्यते न च ।

श्री शिव ने कहा—हे महेश्वरि ! हम अग्नि और काल अथवा जो-जो मातायें हैं कालिका और तारा के मन्त्र के विषय में क्या कहें । हे प्रिये ! यदि कोई व्यक्ति अज्ञान अथवा मोहवश काली अथवा तारा के मन्त्र के विषय में चक्र आदि की गणना करने लगता है तो वह कुतिया की विष्ठा का क्रिमि होता है और हे महादेवि ! कल्पान्त में भी उसका निस्तार (= छुटकारा) नहीं होता है ॥ २-४- ॥

तस्याः पूजां प्रवक्ष्यामि त्रैलोक्यसाधनप्रदाम् ॥ ४ ॥
हठाद्धठाच्च देवेशि या या सिद्धिश्च जायते ।
प्राप्यते तत्क्षणेनैव नात्र कार्या विचारणा ॥ ५ ॥

(अब) मैं उनकी त्रैलोक्य की सिद्धि देने वाली पूजा को बतलाऊँगा । जो-जो सिद्धियाँ हठात् अर्थात् कठिन साधना के द्वारा प्राप्त की जाती हैं वे

(इस पूजा के द्वारा) एक क्षण में ही प्राप्त हो जाती हैं । इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ -४-५ ॥

यन्त्रनिर्माण-ध्यानवर्णनम्

सिन्दूरमण्डलं कृत्वा त्रिकोणञ्च समालिखेत् ।
निजबीजानि तन्मध्ये योजयेत् साधकोत्तमः ॥ ६ ॥
चतुरस्रं लिखेद् देवि ततो वज्राष्टकं प्रिये ।
अष्टदिक्षु यजेत्ताञ्च न्यासजालं विधाय च ॥ ७ ॥
अक्षोभ्यश्च ऋषिः प्रोक्तः छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
कामाख्या देवता सर्वसिद्धये विनियोजिता ॥ ८ ॥
कराङ्गन्यासकादीनि निजबीजेन कारयेत् ।
षड्दीर्घभाजा ध्यायेत्तु कामाख्याभीष्टदायिनीम् ॥ ९ ॥
रक्तवस्त्रां वरोद्युक्तां सिन्दूरतिलकान्विताम् ।
निष्कलङ्कं सुधाधामवदनकमलोज्ज्वलाम् ॥ १० ॥
स्वर्णादिमणिमाणिक्यभूषणैर्भूषितां पराम् ।
नानारत्नादिनिर्माणसिंहासनोपरिस्थिताम् ॥ ११ ॥
हास्यवक्त्रां पद्मरागमणिकान्तिमनुत्तमाम् ।
पीनोत्तुङ्गकुचां कृष्णां श्रुतिमूलगतेक्षणाम् ॥ १२ ॥
कटाक्षैश्च महासम्पद्दायिनीं परमेश्वरीम् ।
सर्वाङ्गसुन्दरीं नित्यां विद्याभिः परिवेष्टिताम् ॥ १३ ॥
डाकिनीयोगिनीविद्याधरीभिः परिशोभिताम् ।
कामिनीभिर्युतां नानागन्धाद्यैः परिगन्धिताम् ॥ १४ ॥
ताम्बूलादिकराभिश्च नायिकाभिर्विराजिताम् ।
समस्तसिद्धवर्गाणां प्रणतानां प्रतीक्षणाम् ॥ १५ ॥
त्रिनेत्रां सम्मोहकरां पुष्पचापेषु बिभ्रतीम् ।
भगलिङ्गसमाख्यानं किन्नरीभ्योऽपि शृण्वतीम् ॥ १६ ॥
वाणीलक्ष्मीसुधावाक्यप्रतिवाक्यमहोत्सुकाम् ।
अशेषगुणसम्पन्नां करुणासागरां शिवाम् ॥ १७ ॥

कामाख्या यन्त्र निर्माण और कामाख्या देवी के ध्यान का वर्णन—सिन्दूर से मण्डल (= गोलचक्र) बनाकर उसके बीच में त्रिकोण लिखे । उसके बाद साधकोत्तम उस त्रिकोण के बीच में अपना बीज 'त्रीं' को लिखें । हे देवि ! (मण्डल के बाहर) चौकोर चतुर्भुज बनाये । हे प्रिये ! इसके बाहर वज्राष्टक लिखें । तत्पश्चात् न्यास-समूह को सम्पादित कर आठों दिशाओं में उस (काली) की पूजा करे । इस काली मन्त्र के ऋषि अक्षोभ्य, छन्द अनुष्टुप् और देवता

कामाख्या हैं । यह समस्त सिद्धि के लिये विनियोजित हैं । (न्यास के पहले विनियोग करते समय—ॐ अस्य श्री कामाख्या मन्त्रस्य अक्षोभ्य ऋषिरनुष्टुप् छन्दः कामाख्या देवता सर्वसिद्धये विनियोगः—ऐसा कहना चाहिये) कराङ्गन्यास आदि अपने बीज (= त्रीं) से करना चाहिये । अभीष्टदायिनी कामाख्या का ध्यान (निम्नलिखित रूप में) करना चाहिये । छह दीर्घ स्वरों से युक्त बीजमन्त्र (= त्रां त्रीं त्रूं त्रैं त्रौं त्रः) वाली यह देवी लाल वस्त्र धारण की हुई है । एक हाथ में वरद मुद्रा है । सिन्दूर की तिलक लगायी हुई हैं । कलङ्करहित, सुधा के धाम (= चन्द्रमा) के समान अथवा कमल के समान कान्तिमान् मुख वाली, सुवर्ण आदि तथा मणि माणिक्य आदि जटित भूषणों से भूषित, परा (= अत्यन्त उत्कृष्ट), नाना रत्न आदि से निर्मित सिंहासन के ऊपर बैठी हुई, ईषद् हास्ययुक्त मुख वाली, पद्मरागमणि के समान कान्ति वाली, सर्वोत्तम, चौड़े और ऊँचे स्तनों वाली, क्षीणकाय, कर्णमूल तक विस्तृत आँखों वाली, कटाक्ष मात्र से महासम्पत् देने वाली, परमेश्वरी, सर्वाङ्गसुन्दरी, नित्या, विद्याओं से परिवेष्टित, डाकिनी योगिनी विद्याधरी से परिवेष्टित, कामिनियों से युक्त, अनेक गन्धों से सुगन्धित, हाथों में ताम्बूल आदि ली हुई नायिकाओं से विशेषरूप से शोभायमान, प्रणत समस्त सिद्ध वर्गों के द्वारा प्रतीक्षित (या उनके प्रति करुणामयी दृष्टि डालने वाली), त्रिनेत्रा, मोहकरी, पुष्पों का धनष-बाण धारण की हुई, किन्नरियों के द्वारा भी भगलिङ्गसमाख्यान को सुनती हुई, वाणी (= सरस्वती) और लक्ष्मी के अमृत वचन और प्रतिवचन के प्रति महोत्सुक, समस्त गुणसम्पन्न, करुणासागर शिवा (= काली) का ध्यान करना चाहिये ॥ ६-१७ ॥

पूजाविधिवर्णनम्

आवाहयेत्ततो देवीमेवं ध्यात्वा च साधकः ।
पूजयेच्च यथाशक्ति विधानेन हरप्रिये ॥ १८ ॥
कुङ्कुमाद्यैः रक्तपुष्पैः सुगन्धिकुसुमैस्तथा ।
जवायावकसिन्दूरैः करवीरैर्विशेषतः ॥ १९ ॥

कामाख्या देवी की पूजाविधि का वर्णन—साधक इस प्रकार ध्यान कर देवी का आवाहन करे । हे हरप्रिये ! तत्पश्चात् कुंकुम आदि, रक्तपुष्प, सुगन्धि पुष्प, जवा (= गुड़हल) के फूल यावक (= अलक्तक), सिन्दूर, विशेष रूप से करवीर (= कनेर) के फूलों से यथाशक्ति विधानपूर्वक उन देवी की पूजा करनी चाहिए ॥ १८-१९ ॥

करवीरेषु देवेशि कामाख्या तिष्ठति स्वयम् ।
जवायाञ्च तथा विद्धि मालत्यादिसमीपके ॥ २० ॥

करवीरस्य माहात्म्यं कथितुं नैव शक्यते ।
प्रदानात्तु जवायाश्च गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥

हे देवेशि ! करवीर तथा जवाकुसुम (के फूलों) में देवी स्वयं निवास करती है तथा मालती आदि के समीप रहती हैं । करवीर का माहात्म्य कहा नहीं जा सकता । देवी के लिये जवा पुष्प अर्पित करने से साधक गाणपत्य (= गणेश का पद) प्राप्त करता है ॥ २०-२१ ॥

पञ्चमकारमहिमावर्णनम्

पूजयेदम्बिकां देवीं पञ्चतत्त्वेन सर्वदा ।
पञ्चतत्त्वं विना पूजामभिचाराय कल्पते ॥ २२ ॥
पञ्चतत्त्वेन देव्यास्तु प्रसादो जायते क्षणात् ।
पञ्चमेन महादेवि शिवो भवति साधकः ॥ २३ ॥
पञ्चतत्त्वसमं देवि नास्ति नास्ति कलौ युगे ।
पञ्चतत्त्वं परं ब्रह्म पञ्चतत्त्वं परा गतिः ॥ २४ ॥
पञ्चतत्त्वं महादेवी पञ्चतत्त्वं सदाशिवः ।
पञ्चतत्त्वं स्वयं ब्रह्मा पञ्चतत्त्वं जनार्दनः ॥ २५ ॥

पञ्चमकार की महिमा का वर्णन—देवी की सदा पञ्चतत्त्व (पञ्च मकार) से पूजा करनी चाहिये । पञ्चतत्त्व के बिना की गयी पूजा अभिचार के लिये मानी जाती है । पञ्चतत्त्व के द्वारा देवी क्षणभर में प्रसन्न हो जाती है । हे महादेवि ! पञ्चम (= मैथुन) के द्वारा साधक शिव हो जाता है । हे देवि ! इस कलियुग में पञ्चतत्त्व के समान कोई वस्तु नहीं है । पञ्चतत्त्व पर ब्रह्म है; पञ्चतत्त्व परमगति है; पञ्चतत्त्व महादेवी और सदाशिव है; पञ्चतत्त्व स्वयं ब्रह्मा और जनार्दन (= विष्णु) है ॥ २२-२५ ॥

पञ्चतत्त्वं भुक्तिमुक्ती महायोगः प्रकीर्तितः ।
पञ्चतत्त्वेन देवेशि महापातककोटयः ॥ २६ ॥
नश्यन्ति तत्क्षणेनैव तृण(तूल)राशिमिवानलः ।
यत्रैव पञ्चतत्त्वानि तत्र देवी वसेद् ध्रुवम् ॥ २७ ॥
पञ्चतत्त्वविहीने तु विमुखी जगदम्बिका ।
पञ्चतत्त्वं विना नान्यत् शाक्तानां सुखमोक्षयोः ॥ २८ ॥
शैवानां वैष्णवानाञ्च शाक्तानाञ्च विशेषतः ।

पञ्चतत्त्व को भोग, मोक्ष तथा महायोग कहा गया है । हे देवेशि ! पञ्चतत्त्व के द्वारा करोड़ों महापातक तत्क्षण ऐसे नष्ट होते हैं जैसे अग्नि के द्वारा कपास का ढेर । जहाँ पञ्चतत्त्व रहते हैं वहाँ निश्चित रूप से देवी का

वास होता है । पञ्चतत्त्व से विहीन स्थानों में जगदम्बा विमुख रहती है । पञ्चतत्त्व के बिना शैव वैष्णव और विशेष रूप से शाक्तों को न तो सुख मिलता है न मोक्ष ॥ २६-२९- ॥

मद्येन मोदते स्वर्गे मांसेन मानवाधिपः॥ २९ ॥
मत्स्येन भैरवीपुत्रो मुद्रया धातृतां व्रजेत् ।
परेण च महादेवि सायुज्यं लभते नरः ॥ ३० ॥

(पञ्चतत्त्व का प्रयोक्ता) मद्य के द्वारा देवी की पूजा से स्वर्ग में आनन्द उठाता है । मांस से पूजा करने पर वह साधक राजा बन जाता है । मत्स्य के द्वारा (देवी की अर्चना करने पर) भैरवीपुत्र होता है । मुद्रा से विधाता हो जाता है । हे महादेवि ! पर (= अन्तिम = मैथुन) से मनुष्य (शक्ति के साथ) सायुज्य प्राप्त करता है ॥ -२९-३० ॥

आवरणपूजाविधिवर्णनम्

भक्तियुक्तो यजेद् देवीं तदा सर्वं प्रजायते ।
स्वयम्भूकुसुमैः शुक्लैः कुण्डगोलोद्भवैः शुभैः ॥ ३१ ॥
कुङ्कुमाद्यैरासवेन चार्घ्यं देव्यै निवेदयेत् ।
नानोपहारैर्नैवेद्यैरन्नाद्यैः पायसैरपि ॥ ३२ ॥
वस्त्रभूषादिभिर्देवीं प्रपूज्यावरणं यजेत् ।
इन्द्रादीन् पूजयेत्तत्र तेषां यन्त्राणि शाङ्करि ॥ ३३ ॥
पार्श्वयोः कमलां वाणीं पूजयेत्साधकोत्तमः ।

आवरणपूजा की विधि का वर्णन—यदि साधक भक्ति से युक्त होकर देवी की पूजा करे तो सब कुछ प्राप्त हो जाता है । श्वेत वर्ण के स्वयम्भू कुसुमों (स्वयं उत्पन्न हुए फूलों), कुण्ड और गोल से उत्पन्न शुभ (वस्तुओं), कुङ्कुम आदि एवं आसव से देवी के लिये अर्घ्य देना चाहिए । अनेक प्रकार के उपहारों, नैवेद्यों, अन्न आदि तथा पायस एवं वस्त्र आभूषण आदि से देवी की पूजा करने के पश्चात् आवरण की पूजा की जानी चाहिए । हे शाङ्करि ! इस पूजा में इन्द्र आदि देवताओं और उनके यन्त्रों की भी पूजा करनी चाहिये । उत्तम साधक को (देवी के) दोनों पार्श्वों में लक्ष्मी और सरस्वती को पूजा करनी चाहिए ॥ ३१-३४- ॥

क्षेमदारोग्यदा चैव शुभदा धनदा तथा ॥ ३४ ॥
वरदामोहदा देवि ऋद्धिदा सिद्धिदापि च ।
बुद्धिदा शुद्धिदा चैव भुक्तिदा मुक्तिदा तथा॥ ३५ ॥
मोक्षदा सुखदा चैव ज्ञानदा कान्तिदा तथा।

हे देवि ! (यह कामाख्या देवी) क्षेमदा, आरोग्यदा, शुभदा, धनदा, वरदा, मोहदा, ऋद्धिदा, सिद्धिदा, बुद्धिदा, शुद्धिदा, भुक्तिदा, मुक्तिदा, मोक्षदा, सुखदा, ज्ञानदा तथा कान्तिदा है ॥ -३४-३६- ॥

एताः पूज्या महादेव्यः सर्वदा यन्त्रमध्यतः ॥ ३६ ॥
डाकिन्याद्यास्तथा पूज्याः सिद्धयो यत्नतः शिवे ।
षडङ्गानि ततो देव्या यजेत् पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥ ३७ ॥
यथाशक्ति जपेन्मन्त्रं शुद्धभावेन साधकः ।
जपं समर्प्य वाद्याद्यैस्तोषयेत् परदेवताम् ॥ ३८ ॥

हे शिवे ! इन महादेवियों (= कामाख्या, लक्ष्मी और सरस्वती) की पूजा सदा यन्त्र के मध्य में करनी चाहिये । उसी प्रकार डाकिनियों एवं सिद्धियों की प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये । इसके बाद देवी के षडङ्गों की पूजा कर मन्त्रपुष्पाञ्जलि देनी चाहिये । तत्पश्चात् साधक शुद्धभाव से यथाशक्ति मन्त्र का जप करे । अन्त में जप का समर्पण कर वाद्य आदि से परदेवता (= कामाख्या) को सन्तुष्ट करे ॥ -३६-३८ ॥

पठेत् स्तोत्रञ्च कवचं प्रणमेद् विधिवन्मुदा ।
ततश्च हृदये देवीं संयोज्य शैषिकां प्रति ॥ ३९ ॥
निर्माल्यं निक्षिपेदैशे त्रिकोणं परिकल्पयेत् ।
निर्माल्यं साधकैः सार्धं गृह्णीयाद् भक्तिभावतः ॥ ४० ॥
विहरेत् पञ्चतत्त्वेन यथाविधि स्वशक्तितः ।

(साधक कामाख्या के) स्तोत्र और कवच का पाठ करे । प्रसन्न होकर विधिवत् प्रणाम करे ! इसके बाद शैषिका (= जिनकी पूजा नहीं हुई है ऐसे अवशिष्ट देवता की पूजा) के प्रति देवी का हृदय में संयोजन कर निर्माल्य का निक्षेप करे । तत्पश्चात् ईशान दिशा में त्रिकोण बनाये अपने शक्ति के अनुसार यथाविधि पञ्चतत्त्व के साथ विहार करे ॥ ३९-४१- ॥

शक्ति-महिमावर्णनम्

शक्तिमूलं साधनञ्च शक्तिमूलं जपादिकम् ॥ ४१ ॥
शक्तिमूला गतिश्चैव शक्तिमूलञ्च जीवनम् ।
ऐहिकं शक्तिमूलञ्च पारत्रं शक्तिमूलकम् ॥ ४२ ॥
शक्तिमूलं तपः सर्वं चतुर्वर्गस्तथा प्रिये ।
शक्तिमूलानि सर्वाणि स्थावराणि चराणि च ॥ ४३ ॥
अज्ञात्वा पापिनो देवि रौरवं यान्ति निश्चितम् ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साधकैश्च शिवाज्ञया ॥ ४४ ॥
शक्त्युच्छिष्टं भक्षितव्यं चान्यथा यान्ति रौरवम् ।

शक्ति की महिमा का वर्णन—शक्ति के कारण साधना होती है । जप आदि का भी मूल शक्ति ही हैं । गति, जीवन, ऐहिक (= अभ्युदय) तथा पारलौकिक (मोक्ष) भी शक्तिमूलक है । हे प्रिये ! समस्त तप और चतुर्वर्ग, समस्त स्थावर और जङ्गम सब के सब शक्तिमूलक हैं । इस तथ्य को न जानने वाले पापी लोग निश्चित रूप से रौरव नरक में जाते हैं । इसलिये सब प्रयास कर शिव की आज्ञा से साधकों को शक्ति का उच्छिष्ट (= भोग लगाने पर बचा हुआ भोज्य पदार्थ) खाना चाहिये । अन्यथा (करने वाले साधक) रौरव नरक को जाते हैं ॥ -४१-४५- ॥

शक्त्यै यद् दीयते देवि तत्तु देवार्पितं भवेत् ॥ ४५ ॥
सफलं तस्य तत् कर्म सत्यं सत्यं कुलेश्वरि ।
शक्तिं विना कौलचक्रं करोति कारयेदपि ॥ ४६ ॥
स याति नरकं घोरं निस्तारो नहि (नैव) विद्यते ।
एवञ्च पूजयेद् देवीं यं यं चोद्दिश्य साधकः ॥ ४७ ॥
तं तं कामं करे कृत्वा प्रिये जयति निश्चितम् ।

हे देवि ! जो कुछ शक्ति को दिया जाता है वह सब देवार्पित होता है । हे कुलेश्वरि ! उस का वह कर्म सफल हो जाता है । यह कथन सत्य है । (जो साधक) शक्ति के बिना कौलचक्र की बैठक करता या कराता है वह घोर नरक में जाता है । उसका निस्तार नहीं है । इस प्रकार साधक जिस-जिस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर देवी की पूजा करता है, हे प्रिये ! (वह साधक) उस-उस उद्देश्य को अपनी इच्छानुसार हस्तगत कर विजयी होता है ॥ -४५-४८- ॥

कामाख्यापुरश्चरणविधिवर्णनम्

पुरश्चरणकाले तु लक्षमेकं जपेत् सुधीः ॥ ४८ ॥
तद् दशांशं हुनेदाज्यैः शर्करामधुपायसैः ।
तर्पयेत्तद्दशांशैश्च जलैश्चन्दनमिश्रितैः ॥ ४९ ॥
गन्धाद्यैः साधकाधीशस्तद्जलैरभिषेचयेत् ।
अभिषेकदशांशेन भोजयेच्च द्विजोत्तमान् ॥ ५० ॥
मिष्ठान्नैः साधकान् देवि देवीभक्तांश्च पञ्चमैः ।
एवं पुरस्क्रियां कृत्वा सिद्धो भवति साधकः ॥ ५१ ॥
प्रयोगेषु ततो देवि योग्यो भवति निश्चितम् ।

एतत् पूजादिकं सर्वं कामाख्याप्रीतिकारकम् ॥ ५२ ॥

कामाख्या मन्त्र की पुरश्चरण विधि का वर्णन—पुरश्चरण के समय विद्वान् साधक (इस मन्त्र का) एक लाख की संख्या में जप करे । उसका दशांश घी, शर्करा, मधु और पायस (= खीर) से हवन करे । उस (= हवन) के दशांश से गन्ध आदि तथा चन्दन से मिश्रित जल के द्वारा तर्पण करे । उस (तर्पण) के दशांश से अभिषेक (= मार्जन) करे। अभिषेक के दशांश की संख्या में उत्तम ब्राह्मणों को मिष्ठान्न से भोजन कराये। हे देवि ! साधकों और देवीभक्तों को पञ्चमकार से तृप्त करे । इस प्रकार साधक मन्त्र का पुरश्चरण कर सिद्ध हो जाता है । हे देवि ! तब वह अन्य प्रयोगों को करने कराने में निश्चित रूप से योग्य हो जाता है । यह समस्त पूजा आदि कामाख्या को प्रसन्न करने वाली है ॥ -४८-५२ ॥

योनिपूजावर्णनम्

महाप्रीतिकरी पूजा योनिचक्रे कुलेश्वरि ।
योनिपूजा महापूजा तत्समा नास्ति सिद्धिदा ॥ ५३ ॥
तत्र देवीं यजेद्धीमान् सैव देवी न चान्यथा ।
आवाहनादि कर्माणि न तत्र सर्वथा प्रिये ॥ ५४ ॥
लेपयेत्तां सुगन्धाद्यैः पूजयेद्विविधेन च ।
महाप्रीतिर्भवेद् देव्याः सिद्धो भवति तत्क्षणात् ॥ ५५ ॥
योनिपूजासमा पूजा नास्ति ज्ञाने तु मामके ।
चुम्बनाल्लेहनाद् योनेः कल्पवृक्षमतिक्रमेत् ॥ ५६ ॥
दर्शनात् साधकाधीशः स्पर्शनात् सर्वमोहनः ।
लिङ्गयोनिसमाख्यानं कामाख्याप्रीतिवर्धनम् ॥ ५७ ॥
तदेव जीवनं तस्या गिरिजे बहु किं वचः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन योनिपूजां समाचरेत् ॥ ५८ ॥

योनिपूजा का वर्णन—हे कुलेश्वरि ! योनिचक्र में विहित पूजा (देवी के लिये) महाप्रीतिकरी है । यह योनिपूजा ही महापूजा है । उसके समान कोई अन्य पूजा सिद्धिप्रदा नहीं है । बुद्धिमान् साधक उस (= योनि) में देवी की पूजा करे । वह (= योनि) ही देवी है दूसरी कोई (देवी) नहीं है । हे देवि ! वहाँ आवाहन आदि कर्म नहीं हैं। (साधक को चाहिये कि वह) उस (योनि) का सुगन्ध आदि से लेप करे । विविध प्रकार से उसकी पूजा करे । इससे देवी अत्यन्त प्रसन्न होती है (और साधक) तत्क्षण सिद्ध हो जाता है । मेरे ज्ञान में योनिपूजा के समान कोई पूजा नहीं है । साधकाधीश व्यक्ति योनि के

चुम्बन लेहन (= चाटने) दर्शन स्पर्शन से कल्पवृक्ष को भी पार कर जाता है (अर्थात् कल्पवृक्ष से भी बढ़कर कामनापूरक हो जाता है)। वह सबको मुग्ध कर देता है । लिङ्गयोनि का यह समाख्यान कामाख्या की प्रीति को बढ़ाता है। वही उस (= कामाख्या) का जीवन है। हे गिरिजे ! अधिक कहाँ तक कहा जाय । इस कारण सब प्रयास कर योनिपूजा करनी चाहिये ॥ ५३-५८ ॥

परस्त्रीयोनिमासाद्य विशेषेण यजेत् सुधीः ।
वेश्यायोनिः परा देवि साधनं तत्र कल्पयेत् ॥ ५९ ॥
त्रिरात्रावेव सिध्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ।
ऋतुयुक्तलतामध्ये साधयेद्विविधान्मुदा ॥ ६० ॥
अचिरात् सिद्धिमाप्नोति देवानामपि दुर्ल्लभाम्।
सारात् सारतरं देवि योनिसाधनमीरितम् ॥ ६१ ॥
विना तत्साधनं देवि महापापः प्रजायते ।

विद्वान् दूसरी स्त्री की योनि को प्राप्त कर विशेष पूजा करे । हे देवि ! वेश्या की योनि सर्वोत्तम होती है । वहाँ साधना करनी चाहिये । (उस साधना से साधक) तीन रात्रि में ही सिद्ध हो जाता है । इस विषय में सन्देह नहीं करना चाहिये । ऋतु युक्त (= पुष्प वाली = रजस्वला) लताओं (= स्त्रियों) के मध्य में (साधक) प्रसन्नता के साथ विविध प्रयोगों को करे । इससे वह देवदुर्लभ सिद्धियों को शीघ्र प्राप्त कर लेता है । हे देवि ! योनि की साधना सारों का सार कही गयी है । बिना उसकी साधना के साधक महापापी हो जाता है ॥ ५९-६२- ॥

योनिनिन्दां घृणां योनौ यः करोति नराधमः ॥ ६२ ॥
अचिरात् रौरवं याति देवि सत्यं शिवाज्ञया ।
योनिमध्ये वसेद् देवी योगिन्यश्चिकुरे स्थिताः ॥ ६३ ॥
त्रिकोणेषु त्रयो देवाः शिवविष्णुपितामहाः ।
तस्मान्न निन्दयेद् योनिं यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥ ६४ ॥
योनिनिन्दां प्रकुर्वाणः सर्वांशेन विनश्यति ।
योनिस्तुतिपरो देवि शिवः स्यात् तत्क्षणेन च ॥ ६५ ॥
किं ब्रूमो योनिमाहात्म्यं योनिपूजाफलानि च ।
चाञ्चल्यात् गदितं किञ्चित् क्षन्तव्यं कामरूपिणि ॥ ६६ ॥

॥ इति कामाख्यातन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे यन्त्रनिर्माणादि-विधिनामा तृतीयः पटलः ॥ ३ ॥

जो नीच व्यक्ति योनि की निन्दा या उससे घृणा करता है हे देवि ! शिव की आज्ञा से वह शीघ्र ही रौरव नरक में जाता है, यह सत्य है । कामाख्या देवी योनि के मध्य में रहती हैं । योनि के चारों ओर उगे हुए चिकुर (= बालों) में योगिनियाँ रहती हैं । त्रिकोण में शिव विष्णु और ब्रह्मा रहते हैं । इसलिये यदि अपना कल्याण चाहता है तो साधक योनि की निन्दा न करे । योनि की निन्दा करने वाला पूर्णतः नष्ट हो जाता है। और हे देवि ! योनि की प्रशंसा करने वाला तत्क्षण शिव हो जाता है । मैं योनि के माहात्म्य और योनिपूजा के फल के विषय में क्या कहूँ । चञ्चलता के कारण थोड़ा सा कह दिया । हे कामरूपिणि ! क्षमा करो ॥ ६२-६६ ॥

कामाख्यातन्त्र के शिवपार्वतीसंवाद में यन्त्रनिर्माणादिविधि नामक तीसरे पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदी कृत ज्ञानवती नामक हिन्दी टीका सम्पूर्ण हुई ॥ ३ ॥

चतुर्थः पटलः

कामाख्यामन्त्रस्वरूपवर्णनम्

भैरव उवाच—

वरमन्त्रं प्रवक्ष्यामि सादरं शृणु पार्वति ।
यस्य प्रसादमासाद्य ब्रह्मविष्णुशिवा अपि ॥ १ ॥
इन्द्राद्या देवताः सर्वा भजन्ते कामिनीयुताः ।
गन्धर्वाः किन्नरा देवि तथा विद्याधरादयः ॥ २ ॥
यत्प्रसादात् समागत्य स्वकीयविषयान्विताः ।
योगिनी-डाकिनी-विद्या-भैरवी-नायिकादिकाः ॥ ३ ॥
कामाख्यामन्त्रमासाद्य भजन्ति(न्ते) योग्यतां पराम् ।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले ये ये सिध्यन्ति साधकाः ॥ ४ ॥

कामाख्या मन्त्र के स्वरूप का वर्णन—भैरव ने कहा—हे पार्वति ! (अब मैं) श्रेष्ठ मन्त्र को कहूँगा (उसे) आदर के साथ सुनो । इसकी प्रसन्नता को प्राप्त कर ब्रह्मा विष्णु शिव तथा इन्द्र आदि समस्त देवगण स्त्रीयुक्त होकर उसकी सेवा करते हैं । हे देवि ! गन्धर्व किन्नर विद्याधर आदि इसकी कृपा प्राप्त कर अपने-अपने विषयों से युक्त हो जाते हैं । योगिनी, डाकिनी, विद्या, भैरवी और नायिका आदि सभी कामाख्या तन्त्र को प्राप्त कर परम योग्यता वाली हो जाती हैं । स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताललोक में जो-जो साधक हैं (इस मन्त्र की कृपा से) सिद्ध हो जाते हैं ॥ १-४ ॥

निजबीजत्रयं देवि क्रोधद्वयमतः परम् ।
वधूबीजद्वयञ्चैव कामाख्ये च पुनर्वदेत् ॥ ५ ॥
प्रसीदेति पदञ्चैव पूर्वबीजानि कल्पयेत् ।

ठद्वयान्ते मनुः प्रोक्तः सर्वतन्त्रेषु दुर्ल्लभः ॥ ६ ॥

मन्त्र का स्वरूप बतलाते हैं—हे देवि ! अपने बीज (= त्रीं) को तीन बार, क्रोध (= हुम्) को दो बार फिर वधू बीज (= स्त्रीं) दो बार, फिर 'कामाख्ये' कहना चाहिये । बाद में 'प्रसीद' कहकर पुनः पूर्वोक्त सभी बीजों को कहना चाहिये । अन्त में दो बार ठः (= स्वाहा) कहे । (इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप हुआ—त्रीं त्रीं त्रीं हूं हूं स्त्रीं स्त्री कामाख्ये प्रसीद त्रीं त्रीं त्रीं हूं हूं स्त्रीं स्त्रीं स्वाहा स्वाहा—इस मन्त्र के पहले प्रणव लगाना चाहिए) । समस्त तन्त्रों में दुर्लभ यह मन्त्र कहा गया ॥ ५-६ ॥

कामाख्यामन्त्रमहिमावर्णनम्

प्रणवाद्या महाविद्या त्रैलोक्ये चातिदुर्ल्लभा ।
चतुर्वर्गप्रदा साक्षान् महापातकनाशिनी ॥ ७ ॥
स्मरणादेव मन्त्रस्य सर्वे विघ्नाः समाकुलाः ।
नश्यन्ति चानले दीप्ते पतङ्गा इव पार्वति ॥ ८ ॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो हि साधकः ।
भुक्तिर्मुक्तिः(भुक्तिमुक्ती) करे तस्य सर्वेषां प्रियतां व्रजेत्॥ ९ ॥

कामाख्या मन्त्र की महिमा का वर्णन—(इस मन्त्र के पहले) प्रणव लगायी गयी यह महाविद्या पूरे त्रैलोक्य में अत्यन्त दुर्लभ है । यह चतुर्वर्ग को प्रदान करने वाली और साक्षात् महापाप का नाश करने वाली है । हे पार्वति ! इस मन्त्र के स्मरणमात्र से समस्त विघ्न समाकुल होकर वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे जलती हुई आग से पतङ्ग । साधक मन्त्र के ग्रहणमात्र से जीवन्मुक्त हो जाता है । भोग और मोक्ष उसके हाथ में रहता है और वह सबका प्रिय हो जाता है ॥ ७-९ ॥

आवृणोति स्वयं लक्ष्मीर्वदने गीः सदा वसेत् ।
पुत्राः पौत्राः प्रपौत्राश्च भवन्ति चिरजीविनः ॥ १० ॥
पृथिव्यां सर्वपीठेषु कामाख्यादिषु शाङ्करि ।
सिद्धिश्चलति तस्यैव नात्र कार्या विचारणा ॥ ११ ॥
तस्य नाम च संस्मृत्य प्रणमन्ति सदा जनाः ।
नाम श्रुत्वा वारमेकं पलायन्ते च हिंस्रकाः ॥ १२ ॥

लक्ष्मी उसका स्वयं ही पूर्णरूपेण वरण करती हैं और मुख में सदा सरस्वती निवास करती है । उसके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र चिरजीवी होते हैं । हे शाङ्करि ! पृथिवी पर, कामाख्या आदि समस्त पीठों में उन्हीं की सिद्धि चलती है—इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये । उनके नाम का ही स्मरण कर लोग

विनत हो जाते हैं । हिंस्र जन्तु सिर्फ एक बार उसका नाम सुनकर पलायित हो जाते हैं ॥ १०-१२ ॥

यावत्यः सिद्धयः सन्ति स्वर्गे मर्त्ये रसातले ।
साधकानां परिचर्यां कुर्वन्ति नात्र संशयः ॥ १३ ॥
तं दृष्ट्वा साधकेन्द्रं च वादी स्खलति तत्क्षणात् ।
सभायां कोटिसूर्याभं पश्यन्ति सर्वसज्जनाः ॥ १४ ॥
जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि ।
वर्णितुं नैव शक्नोमि मन्त्रमेकं कुलेश्वरि ॥ १५ ॥

स्वर्गलोक मृत्युलोक और पाताललोक में जितनी सिद्धियाँ हैं वे सब साधकों की सेवा करती हैं—इसमें सन्देह नहीं है । उस साधकेन्द्र को देख कर वादी तत्क्षण गिर जाता है । सभा में लोग उसको कोटिसूर्य के समान तेजस्वी देखते हैं । हे कुलेश्वरि ! मैं हजारों करोड़ जिह्वाओं से सैकड़ों करोड़ मुखों से भी इस एक (= प्रधान) मन्त्र का वर्णन नहीं कर सकता ॥१३-१५॥

न्यासपूजादिकं सर्वं पूर्ववच्च वरानने ।
पुरश्चर्याविधौ किन्तु षट्सहस्रं मनुं जपेत् ॥ १६ ॥
यथाविधि षट्शतानि होमादींश्च समाचरेत् ।
सिद्धो भवति मन्त्रज्ञः प्रयोगेषु ततः क्षमः ॥ १७ ॥

हे वरानने ! इसके पुरश्चरण के विधान में न्यास-पूजा आदि सब पूर्ववत् करनी चाहिये किन्तु जप छह हजार होना चाहिये । तत्पश्चात् यथाविधि छह सौ होम आदि करना चाहिये । (इतना करने के बाद) मन्त्रज्ञ सिद्ध हो जाता है और तब (साधक कामाख्या) प्रयोग में सक्षम होता है ॥ १६-१७ ॥

कामाख्याध्यानवर्णनम्

ध्यानं शृणु महादेव्या धनधान्यसुतप्रदम् ।
दारिद्र्यनाशनं देवि क्षणेनैव न चान्यथा ॥ १८ ॥

कामाख्या का ध्यान—हे देवि ! अब इसका धनधान्यपुत्र देने वाला ध्यान सुनो । (इसके ध्यान से) एक क्षण में दारिद्र्य का नाश हो जाता है । (यह कथन) अन्यथा नहीं है ॥ १८ ॥

अतिसुललितवेशां हास्यवक्त्रां त्रिनेत्रां
जितजलदसुकान्तिं पट्टवस्त्रां प्रकाशाम् ।
अभयवरकराढ्यां रत्नभूषातिभव्यां
सुरतरुतलपीठे रत्नसिंहासनस्थाम् ॥ १९ ॥

हरिहरविधिवन्द्यां शुद्धबुद्धिस्वरूपां
मदनशरसमाक्तां कामिनीं कामदात्रीम् ।
निखिलजनविलासां कामरूपां भवानीं
कलिकलुषनिहन्त्रीं योनिरूपां भजामि ॥ २० ॥

कामाख्या ध्यान का वर्णन—मैं उस भवानी का भजन (= ध्यान) करता हूँ जो सुन्दर वेश-भूषा वाली, मुख में हँसीयुक्त, तीन नेत्रों वाली, (अपनी दीप्ति से) नील मेघ की कान्ति को जीतने वाली, कटि में पट्ट वस्त्र धारण की हुई, प्रकाशमाना, हाथ में अभय और वरद मुद्रा धारण की हुई, रत्नों वाले आभूषण से अत्यन्त भव्य, कल्प वृक्ष के नीचे पीठ पर रत्नों से जटित सिंहासन पर बैठी हुई है । वह हरि हर और ब्रह्मा के द्वारा वन्दनीया, शुद्धबुद्धिस्वरूपा, कामबाण से विद्ध, कामिनी, कामदायिका, समस्त लोगों की विलासरूपा, कामरूपा और कलि के पाप को नष्ट करने वाली योनिरूपा है ॥ १९-२० ॥

गुह्याद् गुह्यतरं देवि ध्यानं दारिद्र्यनाशनम् ।
गोपितं सर्वतन्त्रेषु तव भावात् प्रकाशितम् ॥ २१ ॥

हे देवि ! यह ध्यान गुह्य से भी गुह्यतर, दारिद्र्य का नाशक, समस्त तन्त्रों में गोपित (= रहस्यरूप में सुरक्षित) है । तुम्हारे (भक्ति) भाव के कारण मैंने इसे प्रकाशित किया ॥ २१ ॥

भगलिङ्गसाधनावर्णनम्

स्वयम्भू कुसुमेनैव तिलकं परिकल्प्य च ।
तूलिकायां महादेवि कुलशक्तिं समाविशेत् ॥ २२ ॥
कर्पूरपूरितमुखः साधकश्चुम्बयेन्मुदा ।
तस्याधरं यथा भृङ्गो नीरजव्याकुलः शिवे ॥ २३ ॥
दन्तक्षतिवितानाञ्च परमं तत्र कारयेत् ।
आलिङ्गयेन्मदोन्मत्तः सुदृढं कुचमर्दनम् ॥ २४ ॥
नखघातैर्नितम्बे च रमयेद् रतिपण्डितः ।
पुनः पुनश्चुम्बनञ्च योनौ कुर्यात् कुलेश्वरि ॥ २५ ॥
शुक्रन्तु स्तम्भयेत् वीरो योनौ लिङ्गं प्रवेशयेत् ।
आघातैस्तोषयेत्तान्तु सन्धानभेदतः प्रिये ॥ २६ ॥
ततो लिङ्गे स्थिते योनौ आज्ञां तस्य प्रगृह्य च ।
अष्टोत्तरशतं मन्त्रं जपेद्धोमादिकांक्षया ॥ २७ ॥
दिनत्रयं महावीरः प्रजपेत् ध्यानतत्परः ।
प्राप्यते मानसं वस्तु नात्र कार्या विचारणा ॥ २८ ॥

भगलिङ्गसाधना का वर्णन—हे महादेवि ! साधक स्वयम्भू पुष्प के द्वारा तिलक कर तूलिका (= रुई से बने विस्तर) में कुलशक्ति (= स्त्री) का समावेश कराये (= बिठाये)। पुनः मुख में कपूर लेकर जैसे भ्रमर कमल को चूमने के लिये व्याकुल होता है उस प्रकार प्रसन्नता से व्याकुल हो उस स्त्री का अधर चुम्बन करे । उस (स्त्री) को दन्तक्षत से अत्यन्त वितान (= विह्वल) कर दे । मदोन्मत्त होकर उसका आलिङ्गन करे । अत्यन्त दृढ़ कुचमर्दन करे । रतिक्रिया में पण्डित साधक नख के घात से नितम्ब में उसे आनन्दित करे । हे कुलेश्वरि ! उसकी योनि में पुनः पुनः चुम्बन करे । वह वीराचारी साधक अपने शुक्र का क्षरण न होने दे । और अपने लिङ्ग को उस स्त्री की योनि में प्रविष्ट करा दे । हे प्रिये ! सन्धानभेद के अनुसार (= जिस जिस अङ्ग पर आघात करने से वह मदविह्वल हो उठती हो उसे समझते हुए) आघातों से उसे सन्तुष्ट करे । इसके बाद अपने लिङ्ग को उसकी योनि में रखते हुए उसकी आज्ञा लेकर होम आदि की इच्छा से १०८ बार कामाख्या मन्त्र का जप करे । इस प्रकार महा वीराचारी साधक ध्यान में तत्पर होकर तीन दिनों तक जप करे । (इस अनुष्ठान के करने पर वह) मनोऽभिलषित वस्तु को प्राप्त करता है । इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ २२-२८ ॥

ऋतुयुक्तलतां देवि निवेश्य तूलिकोपरि ।
करवीरप्रसूनञ्च तस्या लिङ्गोपरि न्यसेत् ॥ २९ ॥
तद् वीक्ष्य देवदेवेशि जपेदष्टसहस्रकम् ।
दिनत्रयं ततो देव्याः प्रीतिः स्यादचला प्रिये ॥ ३० ॥
धनं विन्दति तस्यैव लक्ष्यसंख्यं न संशयः ।
आनन्दं वर्द्धते नित्यं साधकस्य न चान्यथा ॥ ३१ ॥

हे देवि ! ऋतुयुक्त लता (= रजस्वला स्त्री) को तूलिका (= गद्दे वाले बिस्तर) के ऊपर निवेशित कर उसके लिङ्ग (= योनि) के ऊपर करवीर (= कनेर) का फूल रखे । हे देवदेवेशि ! उसको देखकर १००८ बार जप करे । हे देवि ! तीन दिन तक जप करने से देवी की अचल प्रीति प्राप्त हो जाती है । (साधक) एक लाख की संख्या में जप करने से धन प्राप्त करता है । प्रतिदिन साधक के आनन्द की वृद्धि होती है ॥ २९-३१ ॥

अष्टोत्तरशतं योनिं सञ्चुम्ब्य पूज्य सज्जनः ।
पुनर्लिङ्गे स्थिते योनौ जपेदष्टसहस्रकम् ॥ ३२ ॥
काङ्क्षापञ्चगुणं वित्तं प्राप्यते सर्वदा सुखी ।
नित्यं तस्य महेशानि नायिकासङ्गमो भवेत् ॥ ३३ ॥

सज्जन साधक स्त्री की योनि का १०८ बार चुम्बन कर उसकी पूजा

करने के बाद अपने लिङ्ग को उस योनि में स्थापित कर १००८ बार जप करे । (ऐसा करने पर उसे उसकी) अपनी इच्छा का पाँच गुना धन प्राप्त होता है । साधक सर्वदा सुखी रहता है । हे महेशानि ! उसका नित्य नयी-नयी नायिका से सङ्गम होता है ॥ ३२-३३ ॥

वेश्यालतां समानीय कुलचक्रं विधाय च ।
तस्या योनौ यजेद् देवीं हृष्टचित्तेन साधकः ॥ ३४ ॥
भगलिङ्गसमाख्यानं सुस्वरेग समुच्चरेत् ।
योनिं वीक्ष्य जपेन्मंत्रं सप्तवारमतन्द्रितः ॥ ३५ ॥
प्रत्यहं त्रिशतं कृत्वा सोऽपि सिद्धीश्वरः कलौ ।
आज्ञां गृह्णाति धनदस्तस्य देवि न संशयः ॥ ३६ ॥
सद्गुरोः स्मरणं कृत्वा योनेश्च साधनं यदि ।
तदा सिद्धिमवाप्नोति चान्यथा हास्यमेव च ॥ ३७ ॥

॥ इति कामाख्यातन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे कामाख्यामन्त्र-भगलिङ्ग-साधनावर्णननामा चतुर्थः पटलः ॥ ४ ॥

वेश्या स्त्री को ला कर कुलचक्र की रचना कर प्रसन्नचित्त साधक उसकी योनि में पूजा करे । भङ्गलिङ्ग समाख्यान को ऊँचे स्वर से उच्चरित करे । सावधान होकर योनि को देखते हुए सात दिनों तक मन्त्र का जप करे । यह जप प्रतिदिन ३०० की संख्या में होना चाहिये । ऐसा करने वाला साधक कलियुग में सिद्धियों का स्वामी हो जाता है । हे देवि ! कुबेर उसकी आज्ञा का पालन करते हैं । इसमें सन्देह नहीं । सद् गुरु का स्मरण कर यदि योनिसाधना की जाय तभी सिद्धि मिलती है । अन्यथा साधक हँसी का पात्र बनता है ॥ ३४-३७ ॥

कामाख्यातन्त्र के शिवपार्वतीसंवाद में कामाख्यामन्त्र-भगलिङ्गसाधना नामक चौथे पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदी कृत ज्ञानवती नामक हिन्दी टीका सम्पूर्ण हुई ॥ ४ ॥

पञ्चमः पटलः

गुरुतत्त्ववर्णनम्

श्रीदेव्युवाच—

गुरुतत्त्वं महादेव विशेषेण वद प्रभो ।
दुर्वहा गुरुता देव सम्भवेन्मानुषे कथम् ॥ १ ॥
तत्रैव सद्गुरुः को वा श्रेष्ठः को वा वद प्रभो।
दूरीकुरु महादेव संशयं मे महोत्कटम् ॥ २ ॥
इति देव्या वचः श्रुत्वा प्रोवाच शङ्करप्रभुः।

गुरुतत्त्व का वर्णन—श्री देवी ने कहा—हे महादेव ! हे प्रभो ! गुरु तत्त्व को विशेष रूप से बतलाइये । हे देव ! गुरुता का निर्वाह कठिन है यह मनुष्य के अन्दर कैसे सम्भव है? उन (मनुष्यों) मे कौन सद्गुरु है और कौन श्रेष्ठ गुरु है—यह बतलाइये । हे महादेव ! मेरे इस महान् संशय को दूर कीजिये । देवी के इस वचन को सुनकर भगवान् शङ्कर ने कहा ॥ १-३- ॥

शङ्कर उवाच—

शृणु सारतरं ज्ञानं साधूनां हितकारणम् ॥ ३ ॥
गुरुः सदाशिवः प्रोक्त आदिनाथः स उच्यते ।
महाकाल्या युतो देवः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ४ ॥
सनातनः परं ब्रह्म श्रीधर्मस्त्रिगुणः प्रभुः ।
तत्प्रसादान्महामाये शिवोऽहमजरामरः ॥ ५ ॥
अत एव गुरुर्नैव मनुजः किन्तु कल्पना ।
दीक्षायै साधकानाञ्च वृक्षादौ पूजनं यथा ॥ ६ ॥

शङ्कर ने कहा—हे देवि ! साधुओं के लिये हितकारक सारतर ज्ञान को सुनो । सदाशिव को गुरु कहा गया है । वे आदिनाथ कहे जाते हैं । ये देव महाकाली से युक्त, सत् चित् आनन्द शरीर वाले, सनातन, पर ब्रह्म, श्रीधर्म, त्रिगुण और प्रभवशील हैं । हे महामाये ! उनकी कृपा से मैं अजर अमर शिव हूँ । इसीलिये मनुष्य गुरु नहीं होता । जिस प्रकार वृक्ष आदि में (देवत्व का आधान कर उनकी) पूजा होती है उसी प्रकार साधकों की दीक्षा के लिये (मनुष्य में गुरु की) कल्पना की जाती है ॥ -३-६ ॥

मन्त्रदातुः शिरः पद्मे यज्ज्ञानं कुरुते गुरोः ।
तज्ज्ञानं शिष्यशिरसि चोपदिष्टं न चान्यथा ॥ ७ ॥
अत एव महेशानि कुतो हि मानुषो गुरुः ।
मानुषे गुरुता देवि कल्पना न तु मुख्यता ॥ ८ ॥

(आदि गुरु सदाशिव) मन्त्रदाता गुरु के शिरकमल (= कमलवत् शिर) में जिस ज्ञान का आधान करते हैं उसी ज्ञान का शिष्य के शिर में उपदेश किया जाता है अन्यथा नहीं । इसलिये हे महेशानि ! मनुष्य गुरु कैसे हो सकता है । हे देवि ! मनुष्य में गुरुता कल्पित होती है मुख्य नहीं ॥ ७-८ ॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ९ ॥
प्रसिद्धमिति यद् देवि तत्पदं दर्शको नरः ।
अत एव नरे देवि गुरुता कल्पनैव हि ॥ १० ॥

(परम तत्त्व) अखण्ड मण्डल के आकार वाला है । उसी के द्वारा ही समस्त चर-अचर व्याप्त है । उस पद का जिसने दर्शन कराया उस गुरु को नमस्कार है । हे देवि ! जो यह प्रसिद्ध वचन है उस पद को दिखलाने वाला चूँकि मनुष्य होता है इसलिये हे देवि ! मनुष्यों में गुरुत्व की कल्पना ही होती है ॥ ९-१० ॥

न तु गुरुः स्वयं न च मुख्यता चोभयोरपि ।
अयं गुरुरिति ज्ञानं शिष्योऽयं खलु मे सदा ॥ ११ ॥
दर्शकः पठनश्चैव न स्वयं मानुषो गुरुः ।
मोक्षो न जायते सत्यं मानुषे गुरुभावना ॥ १२ ॥

(मनुष्य) स्वयं गुरु नहीं होता और न (मनुष्य तथा सदाशिव) दोनों में मुख्यता होती है । 'यह गुरु है और यह शिष्य है'—यह ज्ञान सदा मुझको रहता है । (गुरु) दर्शक होता है (शिष्य) पठन (= पाठक) होता है । मनुष्य स्वयं गुरु नहीं होता जिसकी मनुष्य में गुरुभावना होती है उसको मोक्ष नहीं

मिलता यह वचन सत्य है ॥ ११-१२ ॥

यथा भोक्तरि भोज्यं हि स्वर्णादि पात्रकेण च ।
दीयते च तथा देवि तस्मै सर्वं समर्पणम् ॥ १३ ॥
यदि निन्द्यञ्च तत्पात्रं भग्नं वापि कुलेश्वरि ।
तदा त्यजेत्तु तत्पात्रं अन्यपात्रेण तोषयेत् ॥ १४ ॥
अतो हि मनुजं लुब्धं दुष्टं शिष्यं हि संत्यजेत् ।
अहंकृतस्तु लोकैर्यस्तत्र रुष्टः सदाशिवः ॥ १५ ॥

जिस प्रकार भोक्ता को स्वर्ण आदि पात्र के सहित भोज्य पदार्थ दिया जाता है, हे देवि ! उसी प्रकार उस (गुरु) को सब कुछ समर्पित कर देना चाहिये । हे कुलेश्वरि ! यदि यह भोज्यपात्र निन्दनीय है या टूटा-फूटा है तो उस पात्र को छोड़ दिया जाता है और अन्य पात्र में (भोजन) परोसा जाता है उसी प्रकार दुष्ट लोभी मनुष्य को शिष्य नहीं बनाना चाहिये । जो लोगों के द्वारा अहङ्कारी समझा जाता है उसके ऊपर सदाशिव रुष्ट हो जाते हैं ॥ १३-१५ ॥

राजस्वं दीयते राज्ञे प्रजाभिर्मण्डलादिभिः ।
यथा तथैव तस्मै तु शिष्यदानं समर्पणम् ॥ १६ ॥
तत्रैव ग्राहका हिंस्रा मण्डलाद्याः शुभे यदि ।
अन्यद्वारेण दातव्यं तांस्तान् संत्यज्य सर्वदा ॥ १७ ॥

जिस प्रकार प्रजाओं और मण्डल आदि के द्वारा राजा को राजस्व (= कर) दिया जाता है उसी प्रकार उस (सदाशिव) को शिष्यदान समर्पण है । हे शुभे ! यदि मण्डल ग्राहक आदि हिंस्र हैं तो उन सबका परित्याग कर सर्वदा अन्य माध्यम से (राजस्व) दिया जाता है ॥ १६-१७ ॥

सर्वेषां भुवने सत्यं ज्ञानाय गुरुसेवनम् ।
ज्ञानान्मोक्षमवाप्नोति तस्माज् ज्ञानं परात् परम् ॥ १८ ॥
अतो यो ज्ञानदातार्हस्तमेव संश्रयेद् गुरुम् ।
अन्नाकांक्षी निरन्नञ्च यथा संत्यज्यति प्रिये ॥ १९ ॥
ज्ञानं यत्र समाभाति स गुरुः शिव एव हि ।
अज्ञानिनं वर्जयित्वा शरणं ज्ञानिनं व्रजेत् ॥ २० ॥

इस संसार में ज्ञान के लिये सब लोगों को गुरु की सेवा करनी चाहिये—यह सत्य है । (गुरुसेवक) ज्ञान से मोक्ष प्राप्त करता है । इस कारण ज्ञान पर से भी पर है । इसलिये जो योग्य ज्ञानदाता है उसी को गुरु मानना चाहिये । जिस प्रकार अन्न चाहने वाला अन्नरहित व्यक्ति को छोड़ देता है (उसी प्रकार ज्ञानार्थी व्यक्ति ज्ञानरहित को छोड़ दे अर्थात् गुरु न बनाये) । जिसमें ज्ञान

सम्यक्तया आभासित होता है वही गुरु है और वही शिव है । अज्ञानी को छोड़कर ज्ञानी की शरण में जाना चाहिये ॥ १८-२० ॥

ज्ञानाद्धर्मो भवेन्नित्यं ज्ञानादर्थो हि पार्वति ।
ज्ञानात् कामानवाप्नोति ज्ञानान्मोक्षो हि निर्मलः ॥ २१ ॥
ज्ञानं हि परमं वस्तु ज्ञानं सारतरं हि च ।
ज्ञानाय भजते देवं ज्ञानं हि तपसः फलम् ॥ २२ ॥

हे पार्वति ! ज्ञान से नित्य धर्म होता है; ज्ञान से नित्य अर्थ होता है । ज्ञान से मनुष्य काम प्राप्त करता है और ज्ञान से ही निर्मल मोक्ष प्राप्त होता है । ज्ञान ही परम वस्तु है । ज्ञान सारतर है । संसार ज्ञान के लिये देव की उपासना करता है । ज्ञान ही तपस्या का फल है ॥ २१-२२ ॥

मधुलुब्धो यथा भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत् ।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत् ॥ २३ ॥
गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः ।
दुर्ल्लभः स गुरुर्देवि शिष्यसन्तापहारकः ॥ २४ ॥

जिस प्रकार मधु का लोभी भृङ्ग (= भ्रमर या मधुमक्खी) एक पुष्प से दूसरे पुष्प के पास जाता है उसी प्रकार ज्ञानलुब्ध शिष्य (वर्त्तमान गुरु की आज्ञा लेकर ही) एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाये । हे देवि ! शिष्य के धन का अपहरण करने वाले गुरु बहुत से हैं लेकिन शिष्य के सन्ताप को दूर करने वाला गुरु दुर्लभ है ॥ २३-२४ ॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २५ ॥
इति ज्ञात्वा साधकेन्द्रो गुरुतां कल्पयेत् सदा ।
ज्ञानिन्येव शिष्यभक्ताः केवलं कल्पना शिवे ॥ २६ ॥
शान्तो दान्तः कुलीनश्च शुद्धान्तःकरणः सदा ।
पञ्चतत्त्वार्चको यस्तु सद्गुरुः स प्रकीर्तितः ॥ २७ ॥

अज्ञान रूपी रतौंधी से अन्धे (= मायाग्रस्त शिष्य) की आँखों को जिसने ज्ञानरूपी अञ्जनशलाका से खोल दिया उस श्रीगुरु को नमस्कार है—ऐसा जानकर साधकेन्द्र (किसी व्यक्ति को) गुरु बनाये । हे शिवे ! शिष्यभक्त केवल ज्ञानी गुरु के ही होते हैं (शेष के विषय में शिष्य भक्त) केवल कल्पना है । जो शान्त, दान्त, कुलीन, सदा शुद्ध अन्तःकरण वाला तथा पञ्चतत्त्व से पूजन करने वाला है वही सद्गुरु कहा गया है ॥ २५-२७ ॥

सिद्धोऽसाविति विख्यातो बहुभिः शिष्यपालकः ।

चमत्कारी दैवशक्त्या सद्गुरुः कथितः प्रिये ॥ २८ ॥
अश्रुतं संवृतं वाक्यं व्यक्ति साधु मनोहरम् ।
तन्त्रं मन्त्रं समं वेत्ति य एव सद्गुरु सदा ॥ २९ ॥
शिष्यबोधाय निपुणो हिताय च (समाकुलः) ।
निग्रहानुग्रहे शक्तः सद्गुरुः परिकीर्तितः ॥ ३० ॥

हे प्रिये ! यह व्यक्ति सिद्ध है—ऐसा जो बहुतों के द्वारा विख्यात है तथा शिष्यपालक एवं दैवशक्ति के द्वारा चमत्कारी है वह सद्गुरु कहा जाता है । जो अश्रुत, संक्षिप्त, समीचीन और मनोहर वाणी बोलता है; तन्त्र मन्त्र को समान (मात्रा में) समझता है वही सदा सद्गुरु है। जो शिष्य को बोध कराने में निपुण, (उसके) हित के लिये व्याकुल, (उसके) निग्रह और अनुग्रह में तत्पर है वही सद्गुरु कहा गया है ॥ २८-३० ॥

परमार्थे सदा दृष्टिः परमार्थप्रकीर्तनम् ।
गुरुपादाम्बुजे भक्तिर्यस्यैव सद्गुरुर्मतः ॥ ३१ ॥
इत्यादि गुणसम्पत्तिं दृष्ट्वा देवि गुरुं भजेत् ।
त्यक्त्वाऽक्षमं गुरुं शिष्यो नात्र कार्या विचारणा ॥ ३२ ॥

हे देवि ! जिसकी दृष्टि सदा परमार्थ-साधन में लगी रहती है, जो परमार्थ की चर्चा करता है, जिसकी अपने गुरु के चरणकमल में भक्ति बनी रहती है वह सद्गुरु कहा गया है । उपर्युक्त गुणसम्पत्ति को देखकर तथा अक्षम गुरु को छोड़कर शिष्य गुरु की सेवा करे । इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ ३१-३२ ॥

केवलं शिष्यसम्पत्तिग्राहको बहुयाचकः ।
व्यङ्गितश्च समक्षे यो लोकैर्निन्द्यो गुरुर्यतः॥ ३३ ॥
कायेन मनसा वाचा शिष्यं भक्तियुतं यदि ।
दृष्ट्वानुमोदनं नास्ति यस्य देवि स निन्दितः ॥ ३४ ॥

केवल शिष्य की सम्पत्ति का ग्राहक, (शिष्य से) बहुत माँगने वाला, स्पष्ट रूप से विकलाङ्ग गुरु लोगों के द्वारा निन्द्य है । शरीर वाणी और मन से भक्तियुक्त शिष्य को देखकर जो प्रसन्न नहीं होता, हे देवि ! वह निन्दित गुरु है ॥ ३३-३४ ॥

कर्मणा गर्हितेनैव हन्ति शिष्यधनादिकम् ।
शिष्याहितैषिणं लोके वर्जयेत् तं नराधमम् ॥ ३५ ॥
महाऽविद्यां समादाय वीराचारं ददाति न ।
स याति नरकं घोरं शिष्योऽपि पतितो ध्रुवम् ॥ ३६ ॥

जो घृणित कर्म से शिष्य के धन आदि का नाश करता है तथा लोक में शिष्य का अहित चाहता है उस नराधम को छोड़ देना चाहिये । जो महाविद्या (शिष्य की महा अविद्या = अज्ञान) को लेकर वीराचार (वीराचार साधना का मार्ग) नहीं देता (= बतलाता) वह गुरु घोर नरक को जाता है और उसका शिष्य भी पतित हो जाता है ॥ ३५-३६ ॥

पशुभावे स्थितो यो हि कालिकातारिणीमनुम् ।
दत्वाचारं वदेन्नैव नरकान्न निवर्तते ॥ ३७ ॥
तस्मात् पशुगुरुस्त्याज्यः साधकैः सर्वदा प्रिये ।
पशोर्दीक्षाधमा प्रोक्ता चतुर्वर्गविघातिनी ॥ ३८ ॥

जो गुरु पशुभाव में रहकर शिष्य को काली अथवा तारा के मन्त्र को देकर (शिष्य को) आचार नहीं बतलाता वह नरक से नहीं लौटता । इसलिये हे प्रिये ! साधकों को चाहिये कि वे पशुगुरु का त्याग कर दें । पशुगुरु के द्वारा दी गयी दीक्षा अधम होती है । वह (शिष्य के) चतुर्वर्ग (= धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को नष्ट कर देती है ॥ ३७-३८ ॥

यदि दैवात् पशोर्दीक्षां लभते शक्तिमान्नरः ।
कौलात्तु कौलिकीं प्राप्य तन्मनुं पुनरालभेत् ॥ ३९ ॥
तदा विद्या प्रसन्ना स्यात् फलदा जननी समा ।
अन्यथा विमुखी देवी कुतस्तस्यैव सद्गतिः ॥ ४० ॥

यदि कोई शक्तिमान् मनुष्य संयोगवश पशु गुरु से दीक्षा ले लेता है तो वह कौल गुरु से कौलिकी दीक्षा प्राप्त कर फिर से उस मन्त्र को प्राप्त करे । तब विद्या जननी के समान प्रसन्न होती है और फल देती है । अन्यथा वह देवी विमुख हो जाती है । फिर उस (व्यक्ति) की सद् गति कैसे सम्भव है ॥ ३९-४० ॥

पूर्वोक्तदोषयुक्तश्च दिव्यो वा वीर एव च ।
तयोरपि न कर्तव्यं शिष्येण गुरुभावनम् ॥ ४१ ॥
किन्तु भाव्यं हितैषित्वं गुरुताकल्पनां त्यजेत् ।
दिव्ये वीरे वरारोहे न दोषोऽत्र शिवाज्ञया ॥ ४२ ॥

दिव्य या वीर साधक भी यदि पूर्वोक्त दोषों से युक्त है तो शिष्य उसे भी गुरु न बनाये किन्तु उसे अपना हितैषी समझे । हे वरारोहे ! ऐसे दिव्य साधक या वीराचारी गुरु को गुरु नहीं बनाना चाहिये । इसमें शिव की आज्ञा से कोई दोष नहीं है ॥ ४१-४२ ॥

साधकस्वरूपवर्णनम्

श्रीदेव्युवाच—

दिव्यतो वीरतो देव पशुत्वं किं विशेषतः ।
वद मे परमेशान श्रोतुमिच्छामि शङ्कर ॥ ४३ ॥

साधक के स्वरूप का वर्णन—श्रीदेवी ने कहा—हे देव ! दिव्य, वीर और पशु साधकों में क्या विशेषता है । हे परमेशान ! मुझे बताइये । हे शङ्कर ! मैं सुनना चाहती हूँ ॥ ४३ ॥

दिव्यसाधकवर्णनम्

श्रीशिव उवाच—

शृणु देवि जगद्वन्द्ये यत् पृष्टं तत्त्वमुत्तमम् ।
दिव्यः सर्वमनोहारी सत्यवादी स्थिरासनः ॥ ४४ ॥
गम्भीरः शिष्टवक्ता च स भावध्यानतत्परः ।
गुरुपादाम्बुजे भीरुः सर्वत्र भयवर्जितः ॥ ४५ ॥
सर्वदर्शी सर्ववक्ता सर्वदुष्टनिवारकः ।
सर्वगुणान्वितो दिव्यः सोऽहं किं बहुवाक्यतः ॥ ४६ ॥

दिव्य साधक का वर्णन—श्रीशिव ने कहा—हे जगद्वन्दनीय देवि ! जिस उत्तम तत्त्व को तुमने पूछा, उसे सुनो । दिव्य साधक सबके मन को हरने वाला, सत्यवादी, स्थिर आसनवाला, गम्भीर, शिष्टवक्ता, भावध्यान में तत्पर, गुरु के चरणकमल से भय रखने वाला किन्तु सर्वत्र भयरहित होता है । वह सर्वदर्शी, सर्ववक्ता, सब दुष्टों को हटाने वाला, सब गुणों से युक्त, दिव्य, सोहं (मैं वह = परमात्मा हूँ) जैसे अनेक वाक्यों (का अनुभविता) होता है । उसके विषय में बहुत कहने से क्या लाभ ?॥ ४४-४६ ॥

वीरसाधकवर्णनम्

निर्भयोऽभयदो वीरो गुरुभक्तिपरायणः ।
वाचालो बलवान् शुद्धः पञ्चतत्त्वे सदा रतिः ॥ ४७ ॥
महोत्साहो महाबुद्धिर्महासाहसिकोऽपि च ।
महाशयः सदावीरो साधूनां पालने रतिः ॥ ४८ ॥
तत्त्वमयः सदावीरो विनयेन महोत्सुकः ।
एवं बहुगुणैर्युक्तो वीरो रुद्रसमः प्रिये ॥ ४९ ॥

वीरसाधक का वर्णन—वीराचारी साधक निर्भय, अभयप्रद, गुरुभक्ति-परायण, वाचाल, बलवान्, शुद्ध और पञ्चतत्त्व में सदा रति रखने वाला होता है। अति उत्साहसम्पन्न, महाबुद्धिमान्, महासाहसिक, महान् विचारक, साधुओं की रक्षा में निरत, तत्त्वमय, सदावीर, विनयसम्पन्न, उत्सुक, इस प्रकार अनेक गुणों से युक्त वह वीराचारी साधक रुद्र के समान होता है ॥ ४७-४९ ॥

पशुसाधकवर्णनम्

पशून् शृणु वरारोहे सर्वदेवबहिष्कृतान् ।
अधमान् पापचित्तांश्च पञ्चतत्त्वविनिन्दकान् ॥ ५० ॥
केचिच्छागोपमा देवि केचिन्मेषोपमा भुवि ।
केचित् खरोपमा भ्रष्टाः केचिच्च शूकरोपमाः ॥ ५१ ॥
इत्याद्या पशवो देवि ज्ञेया दुष्टा नराधमाः ।
एषां देव्यर्चनं सिद्धिर्गणनं वा कुतो भवेत् ॥ ५२ ॥
ततो हि पशवश्छेद्या भेद्या खड्गेन वीरकैः ।
वर्जिताः सर्वथा भद्रे परमार्थबहिष्कृताः ॥ ५३ ॥

पशुसाधक का वर्णन—हे वरारोहे ! पशु साधकों को सुनो ! ये साधक सर्वदेवबहिष्कृत, अधम, पापी मन वाले, पञ्चतत्त्व के निन्दक होते हैं । हे देवि ! इनमें से कुछ भूमि पर बकरे के समान, कुछ भेंड़ के समान, कोई लोग गदहे के समान और कुछ सूअर के समान भ्रष्ट होते हैं । हे देवि ! ऐसे पशुओं को दुष्ट और नराधम समझना चाहिये । ये देवी की अर्चना नहीं करते। इस कारण इनको सिद्धि कैसे मिल सकती है अथवा (इनकी उत्तम कोटि में) गणना कैसे हो सकती है । इसलिये ये पशु वीराचारी साधकों के द्वारा खड्ग से छेदनीय और भेदनीय होते हैं । हे भद्रे ! ये (शाक्त साधना से) सर्वथा वर्जित और परमार्थ बहिष्कृत होते हैं ॥ ५०-५३ ॥

श्रीदेव्युवाच—

किं चित्रं कथितं नाथ सन्देहः प्रबलीकृतः ।
क्षुद्रो हि पशुभावश्च गदितोऽयं स्वयं सदा ॥ ५४ ॥
अर्चितं पशुभावेन परं साधारणं यदि ।
देवता (तां) नैव जानाति तस्मात् समर्पितं नहि ॥ ५५ ॥
भञ्ज भञ्जाशु सन्देहं करुणासागर प्रभो।
सूर्यो यथा सदा हन्ति चान्धकारं क्षणादपि ॥ ५६ ॥

हे नाथ ! आपने क्या विचित्र बात कही । (इसको सुनकर मेरा) सन्देह

प्रबल हो गया । पशुभाव सदा क्षुद्र होता है—ऐसा आपने स्वयं कहा है । यदि परतत्त्व की पशुभाव से साधारण अर्चना होती है; (अर्चक उसको) देवता नहीं समझता इसलिये आत्मसमर्पण नहीं करता (तो ऐसा क्यों होता है?) हे करुणासागर प्रभो ! जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट कर देता है उसी प्रकार मेरे सन्देह को शीघ्र दूर कीजिये ॥ ५४-५६ ॥

श्रीशिव उवाच—

भद्रमुक्तं त्वया विज्ञे तत्त्वन्तु शृणु विस्तरम् ।
य उक्तः पशुभावो हि कलौ कस्तदुपासकः ॥ ५७ ॥
पञ्चतत्त्वं न गृह्णाति तत्र निन्दां करोति न ।
शिवेन कथितं यत्र तत् सत्यमिति भावयन् ॥ ५८ ॥
निन्दासु वारयेल्लोकान् निन्दासु भयविह्वलः ।
निन्दायां पातकं वेत्ति पाशवः संप्रकीर्तितः ॥ ५९ ॥

श्रीशिव ने कहा—हे विज्ञानवती देवी ! तुमने उचित कहा । (अब) तत्त्व को विस्तारपूर्वक सुनो कि जो पशुभाव कहा गया कलियुग में उस प्रकार का उपासक कौन है । शिव के द्वारा जो कुछ भी कहा गया उसको सत्य समझता हुआ, जो पञ्चतत्त्व का ग्रहण तो नहीं करता किन्तु उसकी निन्दा भी नहीं करता । लोगों को निन्दा करने से रोकता है और स्वयं निन्दा से डरता है । वह निन्दा करना पाप समझता है उसे पशुसाधक समझना चाहिये ॥ ५७-५९॥

तस्याचारं वदाम्याशु शृणु संशयनाशकम् ।
हविष्यं भक्षयेन्नित्यं ताम्बूलं न स्पृशेदपि ॥ ६० ॥
ऋतुस्नातां विना नारीं कामाभावे न संस्पृशेत्[1] ।
परस्त्रियं कामभावाद् दृष्ट्वा स्वर्णं समुत् सृजेत् ॥ ६१ ॥
संत्यजेत् मत्स्यमांसानि पशुश्च नित्यमेव च ।
गन्धमाल्यानि वस्त्राणि चीराणि प्रभजेन्न हि ॥ ६२ ॥

(अब मैं) उसके आचरण को बतला रहा हूँ जो कि संशय का नाशक है। उसे सुनो—वह साधक नित्य हविष् खाता है किन्तु ताम्बूल का स्पर्श भी नहीं करता । विना ऋतुस्नात (अर्थात् ऋतुमती = रजस्वला) स्त्री का काम भाव से स्पर्श नहीं करता (अथवा ऋतुस्नाता नारी के कामभाव के विना उसका स्पर्श नहीं करता)। परायी स्त्री को कामभावना से देखने के बाद स्वर्ण का दान करता है । यह पशुसाधक मत्स्य मांस का नित्य त्याग करता है । गन्ध माला वस्त्र और चीर (= बल्कल) का सेवन नहीं करता ॥ ६०-६२ ॥

---

१. ऋतुस्नातां नारीं कामभावेन विना न स्पृशेत्—इति द्वितीयोऽन्वयः ।

देवालये सदा तिष्ठेदाहारार्थं गृहं व्रजेत् ।
कन्यापुत्रादिवात्सल्यं कुर्यान्नित्यं समाकुलः ॥ ६३ ॥
ऐश्वर्यं प्रार्थयेन्नैव यद्यस्ति तत्तु न त्यजेत् ।
सदा दानं समाकुर्यात् यदि सन्ति धनानि च ॥ ६४ ॥

(पशु साधक) सदा देवालय में रहता है केवल भोजन के लिये घर जाता है । प्रतिदिन व्याकुल होकर कन्या एवं पुत्र से वात्सल्य भाव रखता है । कभी भी ऐश्वर्य अर्थात् धनसम्पत्ति की कामना नहीं करता किन्तु यदि उसके पास है तो उसका त्याग भी नहीं करता है । यदि धन है तो वह सदा दान करता रहता है ॥ ६३-६४ ॥

कार्पण्यं नैव कर्त्तव्यं यदीच्छेदात्मनो हितम् ।
सेवनं परमं कुर्यात् पित्रोर्नित्यं समाहितः ॥ ६५ ॥
परनिन्दां परद्रोहानहङ्कारादिकान् क्षिपेत् ।
विशेषेण महादेवि क्रोधं संवर्जयेदपि ॥ ६६ ॥
कदाचिद् दीक्षयैन्नैव पशूंश्च परमेश्वरि ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं नान्यथा वचनं मम ॥ ६७ ॥

यदि अपना हित चाहता हो तो वह (पशुसाधक) कार्पण्य न करे । प्रतिदिन समाहित चित्त वाला होकर माता-पिता की सेवा करे । परनिन्दा, परद्रोह, अहङ्कार आदि का त्याग कर दे । हे महादेवि ! विशेष रूप से क्रोध कभी न करे । हे परमेश्वरि ! वह पशुओं की कभी भी दीक्षा न करे । यह मेरा वचन सत्य है अन्यथा नहीं ॥ ६५-६७ ॥

अज्ञानाद् यदि वा मोहान् मन्त्रदानं करोति यः ।
सत्यं सत्यं महादेवि देवीशापः प्रजायते ॥ ६८ ॥
इत्यादि बहुधाचारः कथितोऽयं पशोर्मतः ।
तथापि न च मोक्षः स्यात् सिद्धिर्नैव कदाचन ॥ ६९ ॥
यदि चंक्रमणे शक्तिः खड्गधारे सदा नरः ।
पश्चाचारं सदा कुर्यात् किन्तु सिद्धिर्न जायते ॥ ७० ॥

जो पशुसाधक अज्ञान अथवा मोह से मन्त्रदान (= दीक्षा) करता है, हे महादेवि ! उसे देवी का शाप लगता है—यह सत्य है । मैंने इस प्रकार पशुसाधक का बहुत आचार कहा । (ऐसा आचरण करने पर भी) न तो उसका मोक्ष होता है और न उसको सिद्धि प्राप्त होती है । खड्ग की धारा पर चलने की शक्ति भले हो जाय किन्तु सदा पश्वाचार करने पर भी सिद्धि नहीं होती ॥ ६८-७० ॥

जम्बुद्वीपे कलौ देवि ब्राह्मणो हि विशेषतः ।
पशुर्न स्यात् पशुर्न स्यात् पशुर्न स्यात् शिवाज्ञया ॥ ७१ ॥
सत्ये क्रमेच्चतुर्वर्णैः क्षीरजैर्मधुपायसैः ।
त्रेतायां पूजिता देवी घृतेन सर्वजातिभिः ॥ ७२ ॥
मधुभिः सर्ववर्णैश्च पूजिता द्वापरे युगे ।
पूजनीया कलौ देवी केवलैरासवैश्च तु ॥ ७३ ॥

हे देवि ! कलिकाल में जम्बूद्वीप में विशेषरूप से ब्राह्मण शिव की आज्ञा से पशु नहीं होता । सत्ययुग में चारों वर्ण दूध से बने मधुमिश्रित पायस से (देवी की) पूजा किया करते थे । त्रेता में देवी सभी जातियों के द्वारा घृत से पूजी जाती थी । द्वापर में सब जाति के लोग देवी की मधु से पूजा करते थे । लेकिन हे देवि ! कलियुग में देवी की पूजा केवल आसव से करनी चाहिये ॥ ७१-७३ ॥

नानुकल्पः कलौ दुर्गे नानुकल्पः कलौ युगे ।
न सन्देहो न सन्देहो न सन्देहः कलौ युगे ॥ ७४ ॥
सत्यमेतत् सत्यमेतत् सत्यमेतच्छिवोदितम् ।
सद्गुरोः शरणं गत्वा कुलाचारं भजेन्नरः ॥ ७५ ॥
दिव्यत्वं लभते किम्वा वीरत्वं लभते शुभे ।
असाध्यं साधयेद्वीरोऽप्यनायासेन यद् भुवि ॥ ७६ ॥

हे दुर्गे ! कलियुग में (आसव का) अनुकल्प (= उसके बदले दूसरा कुछ) विहित नहीं है । इसमें कोई सन्देह नहीं है । यह शिव का वचन सत्य है । मनुष्य को चाहिये कि वह सद्गुरु की शरण में जाकर कुलाचार का पालन करे । हे शुभे ! (ऐसा करने से साधक) दिव्यता या वीरता को प्राप्त करता है । इस धरती पर जो असाध्य है उसे भी वीराचारी साधक बिना परिश्रम के प्राप्त कर लेता है ॥ ७४-७६ ॥

वीरत्वं क्लेशतो देवि प्राप्नोतीह न चान्यथा ।
पशुकल्पशतैर्वापि साधितं न च तत्क्षमः ॥ ७७ ॥
लङ्घितुं नैव शक्नोति यथा पंगुर्गिरिं क्वचित् ।
अति गुह्यमिदं प्रोक्तं रहस्यं त्वयि सुन्दरि ।
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं सदानघे ॥ ७८ ॥

॥ इति कामाख्यातन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे गुरुतत्त्व-
साधकवर्णननामा पञ्चमः पटलः ॥ ५ ॥

हे देवि ! (मनुष्य) इस लोक में वीरता तो क्लेश से प्राप्त करता है । यह कथन अन्यथा नहीं है (किन्तु यह वीरत्व) सैकड़ों पशु साधकों के द्वारा असाध्य है । जिस प्रकार पङ्गु व्यक्ति पर्वत का लङ्घन नहीं कर सकता (उसी प्रकार पशु साधक वीरत्व प्राप्त करने में) सक्षम नहीं हो सकता । हे सुन्दरि ! मैंने तुमसे यह अत्यन्त गुह्य रहस्य बतलाया । हे अनघे ! तुम इसे सदा गोपनीय रखना ॥ ७७-७८ ॥

कामाख्यातन्त्र के शिवपार्वतीसंवाद में गुरुतत्त्व-साधकवर्णन नामक पाँचवें पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदी कृत ज्ञानवती नामक हिन्दी टीका सम्पूर्ण हुई ॥ ५ ॥

षष्ठः पटलः

पञ्चतत्त्वमाहात्म्यम्

श्रीदेव्युवाच—

कस्या देव्याः साधकानामेकान्तनिन्दनं महत् ।
न कृत्वा पञ्चतत्त्वेन पूजनं परमेश्वर ॥ १ ॥

पञ्चतत्त्व का माहात्म्य—श्रीदेवी ने कहा—हे परमेश्वर! किस देवी का पञ्चतत्त्व से पूजन न करने पर साधकगण एकान्त (= सर्वदा) निन्दा के भागी होते हैं? ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच—

कलौ तु सर्वशाक्तानां ब्राह्मणानां विशेषतः।
पञ्चतत्त्वविहीनानां निन्दनं परमेश्वरि ॥ २ ॥
तन्मध्ये कालिकातारासाधनानां कुलेश्वरि ।
मद्यं विना साधनञ्च महाहास्याय कल्पते ॥ ३ ॥

श्रीशिव ने कहा—हे परमेश्वरि ! कलियुग में समस्त शाक्त साधक और विशेषरूप से ब्राह्मण (शाक्त साधक) यदि पञ्चतत्त्वविहीन हैं तो उनकी निन्दा होती है । हे कुलेश्वरि ! उन (शक्तियों) में भी काली और तारा की साधना करने वालों के लिये मद्य के विना की जाने वाली साधना महा हास्य के लिये ही होती है ॥ २-३ ॥

यथा दीक्षां विना देवि साधनं हास्यमेव हि ।
तथानयोः साधनानां ज्ञेयं तत्त्वं विना सदा ॥ ४ ॥
शिलायां शस्यवापैश्च न भवेदंकुरो यथा ।
अनावृष्ट्या क्षितौ देवि शस्यञ्चैव यथा नहि ॥ ५ ॥

ऋतुं विना स्त्रिया देवि कुतोऽपत्यं प्रजायते ।
गमनञ्च विना देवि ग्रामप्राप्तिर्यथा नहि ॥ ६ ॥

हे देवि ! जिस प्रकार दीक्षा के बिना साधना हास्य का विषय होती है उसी प्रकार इन दोनों (= काली, तारा) की साधना को तत्त्व (= पञ्चतत्त्व) के विना वैसी ही जाननी चाहिये । हे देवि ! जिस प्रकार पत्थर के टुकड़े पर बीज बोने से अंकुर नहीं होता; जैसे अनावृष्टि होने पर पृथ्वी पर शस्य उत्पन्न नहीं होते; जैसे ऋतु (= रजस्) के बिना स्त्री को सन्तान नहीं उत्पन्न होती और हे देवि ! बिना गमन किये ग्राम की प्राप्ति नहीं होती (उसी प्रकार पञ्चतत्त्व के बिना सिद्धि नहीं मिलती) ॥ ४-६ ॥

अतो देव्याः साधने तु पञ्चतत्त्वं सदा लभेत ।
पञ्चतत्त्वैः साधकेन्द्रः साधयेद् विधिना मुदा ॥ ७ ॥
मद्यैर्मांसैस्तथा मत्स्यैर्मुद्राभिर्मैथुनैरपि ।
स्त्रीभिः सार्धं सदा साधुरर्चयेत् जगदम्बिकाम्॥ ८ ॥
अन्यथा च महानिन्दा गीयते पण्डितैः सुरैः ।
कायेन मनसा वाचा तस्मात्तत्वपरो भवेत् ॥ ९ ॥

इसलिये देवी की साधना में सदा पञ्चतत्त्व को लेना चाहिये । साधकेन्द्र पञ्चतत्त्व के द्वारा प्रसन्न होकर साधना करे । साधु पुरुष मद्य, मांस, मत्स्य मुद्रा और मैथुन के द्वारा स्त्रियों के साथ जगदम्बिका की अर्चना करे । अन्यथा करने पर पण्डितों और देवताओं के द्वारा उसकी महानिन्दा की जाती है । इस कारण शरीर वाणी और मन से तत्त्वपर होना चाहिये ॥ ७-९ ॥

कालिकातारिणीदीक्षां गृहीत्वा मद्यसेवनम् ।
न करोति नरो यस्तु स कलौ पतितो भवेत् ॥ १० ॥
वैदिकी तान्त्रिकी सन्ध्या जपहोमबहिष्कृतः ।
अब्राह्मणः स एवोक्त स एव हस्तिमूर्खकः ॥ ११ ॥
शुनीमूत्रसमं तस्य तर्पणं यत् पितृष्वपि ।
अतो न तर्पयेत् सोऽपि यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥ १२ ॥

कलियुग में काली एवं तारा की दीक्षा लेकर जो मनुष्य मद्य का, सेवन नहीं करता वह पतित हो जाता है । वैदिक तान्त्रिकी सन्ध्या जप होम से बहिष्कृत वह अब्राह्मण कहा गया है और वही हस्तिमूर्खक (= हाथी के समान विशाल होते हुए भी मन्दबुद्धि) है । उसका पितृतर्पण कुत्ती के मूत्र के समान (अपवित्र और घृणास्पद) होता है । इसलिये यदि वह अपना हित चाहता है तो तर्पण न करे ॥ १०-१२ ॥

कालीतारामनुं प्राप्य वीराचारं करोति न ।
शूद्रत्वं तच्छरीरेण प्राप्तं तेन न चान्यथा ॥ १३ ॥
क्षत्रियोऽपि तथा देवि वैश्यश्चाण्डालतां व्रजेत् ।
शूद्रो हि शूकरत्वञ्च याति याति न संशयः ॥ १४ ॥
अवश्यं ब्राह्मणो नित्यं राजा वैश्यश्च शूद्रकः ।
पञ्चतत्त्वैर्भजेद् देवीं न कुर्यात् संशयं क्वचित् ॥ १५ ॥

काली और तारा के मन्त्र (की दीक्षा) प्राप्त कर जो साधक वीराचार साधना नहीं करता वह (ब्राह्मण) इस शरीर से शूद्र हो जाता है । यह वचन अन्यथा (= झूठा) नहीं है । हे देवि ! इसी प्रकार क्षत्रिय तथा वैश्य भी चाण्डाल हो जाता है । शूद्र सुअर हो जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं है । इसलिये हे देवि ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र पञ्चतत्त्व से देवी की पूजा करे । इसमें कभी भी संशय न करे ॥ १३-१५ ॥

कुलाचारमाहात्म्यवर्णनम्

पञ्चतत्त्वैः कलौ देवि पूजयेद् यः कुलेश्वरीम् ।
तस्यासाध्यं त्रिभुवने न किञ्चिदपि विद्यते ॥ १६ ॥
स ब्राह्मणो वैष्णवश्च शाक्तो गाणपतोऽपि च ।
शैवः स परमार्थी च स एव पूर्णदीक्षितः ॥ १७ ॥
स एव धार्मिकः साधुर्ज्ञानी चैव महाकृती ।
याज्ञिकः सर्वकर्मार्हः सोऽपि देवो न चान्यथा ॥ १८ ॥

कुलाचार की महिमा का वर्णन—हे देवि ! कलियुग में जो साधक पञ्चतत्त्व से कुलेश्वरी की पूजा करता है उसके लिये त्रिभुवन में कुछ भी असाध्य नहीं होता । वह ब्राह्मण वैष्णव शाक्त गाणपत शैव कोई भी हो परमार्थी है और वही पूर्ण दीक्षित है । वही धार्मिक, साधु, ज्ञानी, महाकृती, याज्ञिक, सब कर्मों के योग्य है । वही देव है। यह कथन अन्यथा नहीं है ॥ १६-१८ ॥

पावनानीह तीर्थानि सर्वेषामिति सम्मतम् ।
तीर्थानां पावनः कौलो गिरिजे बहु किं वचः ॥ १९ ॥
अस्यैव जननी धन्या धन्या हि जनकादयः ।
धन्या जातिकुटुम्बाश्च धन्या आलापिनो जनाः ॥ २० ॥

तीर्थ सबको पवित्र करते हैं यह सब शास्त्रों का मत है । किन्तु हे गिरिजे ! कौलसाधक तीर्थों को भी पवित्र करने वाला होता है । इससे अधिक क्या कहूँ । इसी की माता धन्य है, पिता आदि धन्य हैं । जाति कुटुम्ब और

उसकी चर्चा करने वाले लोग भी धन्य होते हैं ॥ १९-२० ॥

नृत्यन्ति पितरः सर्वे गाथां गायन्ति ते मुदा ।
अपि कश्चित् कुलेऽस्माकं कुलज्ञानी भविष्यति ॥ २१ ॥
तदा योग्या भविष्यामः कुलीनानां सभातले ।
समागन्तुमिति ज्ञात्वा सोत्सुकाः पितरः परे ॥ २२ ॥
कुलाचारस्य माहात्म्यं किं ब्रूमः परमेश्वरि ।
पञ्चवक्त्रेण देव्या हि सनातन्याः फलानि च ॥ २३ ॥

(यह सोचकर कि) हमारे कुल में कोई कुल ज्ञानी होगा उसके समस्त पितृगण प्रसन्नता से नाचने लगते हैं (तब हम) कुलीनों की सभा में समागम के योग्य हो जायेंगे ऐसा सोचकर अन्य पितृ लोग उत्सुकता से पूर्ण हो जाते हैं । हे परमेश्वरि ! कुलाचार के माहात्म्य का हम क्या वर्णन करे । सनातनी देवी के (इस अर्चन और) फल का वर्णन हम अपने पाँच मुखों से भी नहीं कर सकते ॥ २१-२३ ॥

कौलसाधनावर्णनम्

श्रीदेव्युवाच—

साधनं वद कौलानां साधकानां सुखावहम् ।
दिव्यं रम्यं मनोहारि सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ २४ ॥

कौलसाधना का वर्णन—श्रीदेवी ने कहा—कौल साधकों की सुखदायी, दिव्य, रमणीय, मनोहारी और समस्त अभीष्टफल को देने वाली साधनापद्धति को बतलाइये ॥ २४ ॥

श्रीशिव उवाच—

शृणु कामकले कान्ते साधकस्य सुखावहम् ।
यत्किञ्चित् गदितं पूर्वं विस्तृतं तद् वदाम्यहम् ॥ २५ ॥

श्रीशिव ने कहा—हे कामकले ! हे कान्ते ! साधकों को सुख देने वाला जो कुछ मैंने पहले कहा उसको अब मैं विस्तार के साथ कह रहा हूँ ॥ २५॥

अतिसुललितदिव्यं स्थानमालोक्य भक्त्या
हृदि च परमदेवीं सम्विभाव्यैकचित्तः ।
मधुरकुसुमगन्धैर्व्याप्तमा(वृ)त्य साधु
तदुपरि खलु तिष्ठेत् साधनार्थं कुलज्ञः ॥ २६ ॥

कुल (धर्म का) ज्ञाता अत्यन्त सुललित दिव्य स्थान देखकर भक्ति के साथ एकाग्रचित्त हो परम देवी का ध्यान करे । (उस स्थान को) मधुर फूलों और गन्ध से व्याप्त तत्पश्चात् आवृत कर उसके ऊपर साधना करने के लिये बैठना चाहिए ॥ २६ ॥

जयवति यतमानः शब्दपुष्पं क्षिपेत्तत्
स खलु करकबीजान्यत्र दुर्गे ततो हि ।
चिरभवबकपुष्पं वर्जयित्वार्चयित्वा
यदि जपति विधिज्ञस्तत्क्षणात् सोप्यहञ्च ॥ २७ ॥

जय के लिये प्रयत्नशील वह (= साधक) शब्द पुष्प (= जय) का क्षेप (= उच्चारण) करे । उसके बाद करक बीज (= क्रुं), फिर दुर्गे (का उच्चारण करे अर्थात् जय क्रुं दुर्गे कहे । (इस मन्त्र से) चिरभव और बक (= बकुल = मौलसिरी) पुष्प को छोड़कर (किसी अन्य पुष्प से देवी का) पूजन कर विधिवेत्ता साधक यदि मन्त्र का जप करता है तो तत्क्षण वह और मैं (एक हो जाते हैं अर्थात् वह शिवस्वरूप हो जाता है) ॥ २७ ॥

उपवनपरियुक्ते शुद्धरम्यालये यो
विधिधृतवरलिङ्गं लेपयित्वा सुगन्धैः ।
विविधकुसुमधूपैर्धूपयित्वा लतां सः
प्रतिजपति सुभक्त्या त्वत्सुतो जायते सः ॥ २८ ॥

किसी उपवन में बने हुए सुन्दर गृह में जो (साधक भैरवी के द्वारा) विधिवत् पकड़े गये श्रेष्ठ लिङ्ग को सुगन्ध से उपलिप्त कर तथा अनेक प्रकार के पुष्पों और धूप से लता (= स्त्री, भैरवी) को धूपित कर भक्तिपूर्वक (काली या तारा मन्त्र का) जप करता है वह तुम्हारा (= श्री पार्वती का) पुत्र हो जाता है ॥ २८ ॥

अचलशिखररम्ये शीघ्रमालम्बयित्वा
कनककुसुमसार्धं मधु (सीधु) पुष्पं निवेद्य ।
कृतबहुविधपूजः श्रीगुरुं भावयित्वा,
जपति यदि विलासी विष्णुरेव स्वयं सः ॥ २९ ॥

पर्वत की रमणीय चोटी (अथवा दृढ़ होने के कारण अचल एवं रमणीय लिङ्ग) पर (स्त्री को) शीघ्र ले जाकर कनक (= सुवर्ण से बने अथवा धतूरे) के फूल के साथ मधु (= महुआ) के फूल अथवा मद्य और पुष्प का नैवेद्य देकर अनेक प्रकार से पूजा करने वाला विलासी (साधक) गुरु का ध्यान कर यदि मन्त्र का जप करता है तो वह स्वयं विष्णु हो जाता है ॥ २९ ॥

परिचरति स साधुः सिद्धिवर्गः सशङ्कः
परमतमलतानां वक्रपद्मोपभोगी ।
जयति भुवनमध्ये निर्ज्जरश्चामरोऽपि
व्रजति तमनु नित्यं सार्वभौमो नृणां सः ॥ ३० ॥

अत्यन्त उत्कृष्ट लताओं (= स्त्रियों) के मुख कमल का उपभोग करने वाला वह साधु यदि सशङ्क (= सावधान) होकर सिद्धियों की परिचर्या करता है तो वह जरारहित अमर होकर भुवनों के मध्य विजयी होता है । (समस्त लोग) उसके पीछे-पीछे चलते हैं और वह मनुष्यों में सार्वभौम होता है ॥ ३० ॥

अभिनवशुभनीरं रक्तपद्मप्रकीर्णम्
विविधकमलरम्यं भर्ज्जमीनप्रयुक्तम् ।
अपरविहितवस्तुव्याप्तमीशेश्वरोऽपि
विगतजनसमूहे प्राप्य देवि प्रकोणम् ॥ ३१ ॥

ताजा स्वच्छ जल जिसमें लाल कमल रखे हों तथा अन्य प्रकार के अनेक कमल एवं भुनी हुई मछली से युक्त और अन्य विहित वस्तु से व्याप्त हो उसको हे देवि ! निर्जन स्थान में कोने में ले जाकर—॥ ३१ ॥

धनधनितसुशोभे विद्युदादीप्तिरम्ये
हृदि च परमदेवीं चिन्तयित्वा सभक्त्या ।
विधिविहितविधानैः स्नानपूजां समाप्य
प्रतिजपति निशायां गह्वरे ब्रह्मकः स्यात् ॥ ३२ ॥

हे देवि ! हे धन (= मणि रत्न आदि) से धनित (= युक्त अत एव) सुन्दर शोभा युक्त ! (अथवा 'घनघनित' ऐसा पाठ मानने पर—वर्षाकालीन काले बादलों के समान शोभावाली ! विद्युत की चमक के समान रमणीय स्वच्छ हृदय में भक्तिपूर्वक परम देवी का ध्यान कर (हृदय में ही) अनेक प्रकार के विधान से स्नान और पूजा करने के बाद यदि साधक रात्रि में गह्वर (= योनि) में (लिङ्ग रखकर मन्त्र का) जप करता है तो वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है ॥ ३२ ॥

इह च गुरुवराज्ञां प्राप्य शीर्षे(र्ष) निधाय
प्रतिजपति कुलज्ञो भावभेदात् कुलेशि ।
सुरगुरुरिह को वा कोऽपि चन्द्रो दिनेशो
व्रजति भुवनमध्ये दिक्पतित्वञ्च कोऽपि ॥ ३३ ॥

यदि साधक कुलज्ञ गुरु की आज्ञा प्राप्त कर शीर्ष (= लिङ्ग) को इस (= गह्वर योनि) में रखकर भावना के भेद से (= लिङ्ग और योनि को शिव

और शक्ति समझते हुए कालिका मन्त्र का) जप करता है तो हे कुलेशि ! वह वृहस्पति, चन्द्रमा, सूर्य अथवा दिक्पाल (के समान महान्) होकर भुवन के मध्य में विचरण करता है ॥ ३३ ॥

इति च परमदेव्याः साधनं यन्मयोक्तं
यदि पठति सुभव्यो गन्धापुष्पैर्नमेच्च ।
अभिमतफलसिद्धिः सर्वलोकैर्वरेण्यो
भवति भुवनमध्ये पुत्रदारैर्युतोऽपि ॥ ३४ ॥

परम देवी की यह जो साधना मेरे द्वारा कही गयी यदि कोई सुभव्य साधक उसको पढ़ता है गन्ध पुष्प आदि से (परम देवी की पूजा कर उसे) नमस्कार करता है तो वह अभिमत फल की सिद्धि प्राप्त कर लोक में सभी लोगों का वरेण्य होकर पुत्र स्त्री से युक्त हो जाता है ॥ ३४ ॥

अचलधनसमूहस्तस्य भोगे वसेत्तु
प्रतिदिनमभिपूजा देवताया गृहे च ।
परिजनगणभक्तिः सर्वदा तत्र तिष्ठेत्
सदसि वसति राज्ञः सादरः सोऽपि वन्द्यः॥ ३५ ॥

॥ इति कामाख्यातन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे पञ्चतत्त्व-कुलाचार-माहात्म्यवर्णननामा षष्ठः पटलः ॥ ६ ॥

उसके भोग में अचल धनसमूह स्थित रहता है । देवता के घर में (देवता के साथ उसकी भी) पूजा होती है । उसके परिजन उसमें सदा भक्तिभाव रखते हैं । वह राजाओं की सभा में स्थान प्राप्त करता है और उनके द्वारा आदरणीय तथा वन्दनीय होता है ॥ ३५ ॥

कामाख्यातन्त्र के शिवपार्वतीसंवाद में पञ्चतत्त्व-कुलाचार-माहात्म्य-वर्णननामक छठवें पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदी कृत ज्ञानवती नामक हिन्दी टीका सम्पूर्ण हुई ॥ ६ ॥

सप्तमः पटलः

शत्रुविनाशवर्णनम्

श्रीदेव्युवाच—

श्रुतं रहस्यं देवेश कामाख्याया महेश्वर ।
महाशत्रुविनाशाय साधनं किं वद प्रभो ॥ १ ॥

शत्रुविनाश का वर्णन—श्रीदेवी ने कहा—हे देवेश ! हे महेश्वर ! मैंने कामाख्या का रहस्य सुना । महाशत्रु के विनाश के लिये क्या साधन है (यह) मुझे बतलाइये ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच—

अतिगुह्यतमं देवि तव स्नेहाद्वितन्यते ।
महावीरः साधकेन्द्रः प्रयोगं तु समाचरेत् ॥ २ ॥
पूजयित्वा महादेवीं पञ्चतत्त्वेन साधकः ।
महानन्दमयो भूत्वा साधयेत् साधनं महत् ॥ ३ ॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवि ! (यह साधन) अत्यन्त गुह्य है परन्तु तुम्हारे स्नेह के कारण इसे प्रकट किया जा रहा है । महावीर साधकेन्द्र ही उस प्रयोग को करे (साधारण व्यक्ति नहीं)। साधक पञ्चतत्त्व से महादेवी की पूजा कर महाआनन्दमय होकर महान् साधन की सिद्धि करे ॥ २-३ ॥

स्वमूत्रं तु समादाय कूर्च्चबीजेन शोधयेत् ।
तर्पयेद् भैरवीं घोरां शत्रुनाम्ना पिबेत् स्वयम् ॥ ४ ॥
दशदिक्षु महापीठे प्रक्षिपेदाननेऽपि च ।
नग्नो भूत्वा भ्रमेत्तत्र शत्रुनाशो भवेद् ध्रुवम् ॥ ५ ॥

अपने मूत्र को लेकर कूर्च बीज (= हूँ) से उसे शुद्ध करे । फिर उससे घोरा भैरवी का तर्पण करे । फिर शत्रु का नाम लेकर उसे स्वयं पी जाय । दशो दिशाओं, महापीठ एवं अग्नि में उसका प्रक्षेप करे । फिर नग्न होकर वहाँ भ्रमण (= परिक्रमा) करे । निश्चित रूप से शत्रुनाश हो जायेगा ॥ ४-५॥

शुक्रशोणितमूत्रेषु वीरो यदि घृणी भवेत् ।
भैरवी कुपिता तस्य सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा महेशानि निन्दां यो कुरुते नरः ।
स महानरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ७ ॥
वीराचारं महेशानि न निन्देन्मनसापि च ।
वीरो यः स महादेवः स्वेच्छाचारी सदा शुचिः ॥ ८ ॥

वीराचारी साधक यदि शुक्र, शोणित (= रज) एवं मूत्र के विषय में घृणा करता है उसके प्रति भैरवी कुपित हो जाती है यह मैं सत्य कह रहा हूँ। हे महेशानि ! (उक्त वस्तुओं को) देखकर सुनकर जो आदमी उसकी निन्दा करता है वह तब तक महानरक में रहता है तब तक सूर्य और चन्द्रमा। हे महेशानि ! मन से भी वीराचार की निन्दा नहीं करनी चाहिये । क्योंकि जो वीराचारी होता है वह महादेव (के समान) स्वेच्छाचारी और सदा पवित्र होता है ॥ ६-८ ॥

मृत्पात्रन्तु समादाय साध्यनाम लिखेत् शिवे ।
वायुना पूरितं कृत्वा स्वमूत्रं तत्र निक्षिपेत् ॥ ९ ॥
मायाबीजं महेशानि अष्टोत्तरशतं जपेत् ।
भैरव्यै तर्पयेद् देवि मारणोच्चाटनं भवेत् ॥ १० ॥

हे शिवे ! मिट्टी का पात्र लेकर उसके अन्दर साध्य (= शत्रु) का नाम लिखे । तत्पश्चात् (साध्य के नाम को) वायु बीज (= यं) से सम्पुटित कर उस पात्र में अपना मूत्र डाल दे । हे महेशानि ! उसके बाद माया बीज (= ह्रीं/ह्रीं) का १०८ बार जप करे । हे देवि फिर भैरवी का तर्पण करे । (इससे शत्रु का) मारण तथा उच्चाटन होता है ॥ ९-१० ॥

स्वमूत्रञ्च समादाय वामहस्तेन शङ्करि ।
शोधितं भैरवीमन्त्रे[1] निःक्षिपेत् साधकोत्तमः ॥ ११ ॥
उन्मादो जायते शत्रुर्म्रियते वा महेश्वरि ।
मोहितः क्षोभितश्चापि वश्यो वापि भवेत्(वति)ध्रुवम् ॥ १२ ॥
मूत्रसाधनमात्रेण सहस्राक्षसमं रिपुम् ।

---

१. तृतीयार्थे सप्तमी, मन्त्रेण-इत्यर्थः ।

नाशयेत् साधको वीरो नात्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥

हे शङ्करी ! साधक बायें हाथ में अपना मूत्र लेकर उसे भैरवी-मन्त्र से शोधित करे । (उसको शत्रु के ऊपर) फेंकने से शत्रु निश्चित रूप से या तो पागल हो जाता है या मर जाता है अथवा मूढ क्षुब्ध या वशीकृत हो जाता है । मूत्र की सिद्धि मात्र से वीर साधक सहस्राक्ष (= इन्द्र) के समान भी शत्रु को नष्ट कर देता है । इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ ११-१३ ॥

शुक्रादिशुद्धतावर्णनम्

श्रीदेव्युवाच—

शुक्रशोणितमूत्राणि शुद्धानीह कथं प्रभो ।
तद्वदस्व महेशान सन्देहनाशनं मम ॥ १४ ॥

शुक्र आदि की शुद्धता का वर्णन—श्रीदेवी ने कहा—हे प्रभो ! शुक्र शोणित और मूत्र ये शुद्ध कैसे हैं? हे महेशान ! मेरे सन्देह के नाशक इस तत्त्व को बतलाइये ॥ १४ ॥

श्रीशिव उवाच—

शृणु देवि रहस्यञ्च महाज्ञानं वदाम्यहम् ।
शुक्रोऽहं शोणितस्त्वं हि द्वयोरेवाखिलं जगत् ॥ १५ ॥
शुद्धं सर्वशरीरं तु शुक्रशोणितजं यतः ।
एवंभूतशरीरे तु यद् यद्वस्तु प्रजायते ॥ १६ ॥
अशुद्धं तत् कथं देवि पामरो निन्दति ध्रुवम् ।
ब्रह्मज्ञानमिदं देवि मया ते गदितं किल ॥ १७ ॥
अतः शुद्धं जगत् सर्वं स्वकायस्थे तु का कथा ।

श्रीशिव ने कहा—हे देवि ! सुनो । मैं तुमको महाज्ञान और रहस्य बतला रहा हूँ । शुक्र मैं हूँ, शोणित तुम हो । सम्पूर्ण जगत् इन्हीं दोनों में है । चूँकि यह शरीर शुक्र और शोणित से उत्पन्न होता है इसलिए इस प्रकार के शरीर में (मलमूत्र आदि) जो-जो वस्तु उत्पन्न होती है हे देवि ! वह अशुद्ध कैसे हो सकती है। निश्चित रूप से पामर (= अज्ञानी) ही (इस शुक्र शोणित आदि की) निन्दा करते हैं । हे देवि ! मैंने तुमको यह ब्रह्मज्ञान बतलाया । अतः यह समस्त संसार शुद्ध है फिर अपने शरीर में स्थित (इन पदार्थों) के विषय में क्या कहना (ये तो शुद्ध हैं ही)॥ १५-१८- ॥

ब्रह्मज्ञानं विना देवि न च मोक्षः प्रजायते ॥ १८ ॥

ब्रह्मज्ञानी शिवः साक्षात् विष्णुर्ब्रह्मा च पार्वति ।
स एव दीक्षितः शुद्धो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ १९ ॥
क्रोड़े तस्य वसन्तीह सर्वतीर्थानि निश्चितम् ॥ २० ॥

॥ इति कामाख्यातन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे शत्रुविनाशन-वर्णननामा सप्तम पटलः ॥ ७ ॥

हे देवि ! ब्रह्मज्ञान के बिना मोक्ष नहीं प्राप्त होता । हे पार्वति ! ब्रह्मज्ञानी साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव होता है । वही दीक्षित हो जाने पर शुद्ध ब्राह्मण वेदपारङ्गत होता है । इस लोक में वर्त्तमान समस्त तीर्थ उसकी गोद में रहते हैं ॥ -१८-२० ॥

कामाख्यातन्त्र के शिवपार्वतीसंवाद में शत्रुविनाशवर्णन नामक सातवें पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदी कृत ज्ञानवर्ती नामक हिन्दी टीका सम्पूर्ण हुई ॥ ७ ॥

अष्टमः पटलः

पूर्णाभिषेकवर्णनम्

श्रीदेव्युवाच—

महादेव जगद्वन्द्य करुणासागर प्रभो ।
पूर्णाभिषेकं कौलानां वद मे सुखमोक्षदम् ॥ १ ॥

पूर्ण अभिषेक का वर्णन—श्रीदेवी ने कहा—हे महादेव ! हे जगद्वन्द्य !, हे करुणासागर ! हे प्रभो ! कौलसाधकों के लिए सुखप्रद और मोक्षप्रद पूर्णाभिषेक को बतलाइये ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच—

शृणु देवि मम प्राणवल्लभे परमाद्भुतम् ।
पूर्णाभिषेकं सर्वाशापूरकं शिवताप्रदम् ॥ २ ॥

श्रीशिव ने कहा—हे मेरी प्राणप्यारी देवि ! परम अद्भुत, सर्वाशापूरक और शिवतत्त्वप्रद पूर्णाभिषेक को सुनो ॥ २ ॥

आगत्य सद्गुरुं सिद्धं तन्त्रमन्त्रविशारदम् ।
कौलं सर्वजनश्रेष्ठमभिषेकविधिञ्चरेत् ॥ ३ ॥

(साधक को चाहिये कि वह) तन्त्रमन्त्र में विशारद, सिद्ध, सर्वजनश्रेष्ठ गुरु के पास जाकर अभिषेकविधि करे ॥ ३ ॥

अतिगुप्तालये शुद्धे रम्ये कौलिकसंमते ।
वेश्याङ्गनाः समानीय तत्त्वानि च सुयत्नतः ॥ ४ ॥
विशिष्टान् कौलिकान् भक्त्या तत्रैव सन्निवेशयेत् ।
अर्चयेदभिषेकार्थं गुरुं वस्त्रादिभूषणैः ॥ ५ ॥

प्रणमेद् विधिवद् भक्त्या तोषयेत् स्तुतिवाक्यतः ।
प्रार्थयेत् शुद्धभावेन कुलधर्मं वदेति च ॥ ६ ॥
कृतार्थं कुरु मे नाथ श्रीगुरो करुणानिधे ।
अभिषिक्तैः साधकैश्च सेवार्थं शरणागतः ॥ ७ ॥

शुद्ध, रमणीय, कौलिकों के द्वारा समर्थित अत्यन्त गुप्त गृह में प्रयत्नपूर्वक वेश्या स्त्रियों और तत्त्वों (= मांस मद्य आदि) को लाकर (उस घर में रखे तथा) विशिष्ट कौलों को (उस घर में) भक्ति के साथ प्रविष्ट कराये । तत्पश्चात् अभिषेक के लिये गुरु की वस्त्राभूषण आदि से पूजा करे । तत्पश्चात् भक्ति के साथ प्रणाम करे और अनेक स्तुतिवाक्यों से उन गुरु को सन्तुष्ट करे । बाद में शुद्ध भावना के साथ उनसे प्रार्थना करे कि—हे करुणानिधे ! हे गुरो ! मुझे कुलधर्म बतलाइये; कृतार्थ कीजिये; मैं अभिषिक्त साधकों के साथ आपकी सेवा के लिये आपकी शरण में आया हूँ ॥ ४-७ ॥

ततोऽभिषिच्य तत्त्वानि शोधयेत् शक्तिमान्मुदा ।
स्थापयित्वा पुरः कुम्भं मन्त्रैर्मुद्रादिभिः प्रिये ॥ ८ ॥
वितानैर्धूपदीपैश्च कृत्वा चामोदितं स्थलम् ।
नानागन्धैस्तथा पुष्पैः सर्वोपकरणैर्यजेत् ॥ ९ ॥
समाप्य महतीं पूजां तत्त्वानि संनिवेद्य च ।
आदौ स्त्रीभ्यः समर्प्याथ प्रसादं प्रभजेत्ततः ॥ १० ॥

अभिषेक के बाद शक्तिमान् साधक प्रसन्नतापूर्वक तत्त्वों (= मांस आदि) का शोधन करे । हे प्रिये ! मन्त्र और मुद्रा आदि के द्वारा सामने कलश की स्थापना कर वितान लगा कर धूप दीप आदि से उस स्थान को सुगन्धित कर दे । पश्चात् अनेक प्रकार के गन्ध पुष्प एवं समस्त उपचारों से (कलश का) पूजन करे । महापूजा को समाप्त कर तत्त्वों (= सुरा आदि) का नैवेद्य लगाकर पहले स्त्रियों को दे, बाद में प्रसादस्वरूप उसका स्वयं उपभोग करे ॥ ८-१०॥

शुभचक्रं विनिर्माय आगमोक्तविधानतः ।
अभिषिच्य साधकांश्च पाययेत्तु स्वयं पिबेत् ॥ ११ ॥
भुञ्जीत मत्स्यमांसाद्यैश्चर्व्यचोष्यादिभिश्च तैः ।
रमेच्च परमानन्दैर्वेश्यायाश्च यथा सुखम् ॥ १२ ॥
वदेयुः कर्मकर्तुश्च सिद्धिर्भवतु निश्चला ।
अभिषेचनकर्मास्तु निर्विघ्नञ्चेति निश्चितम् ॥ १३ ॥

साधक आगम में वर्णित विधान के अनुसार शुभ चक्र का निर्माण कर साधकों का अभिषेक करे । फिर उन साधकों को मद्य पिलाये और स्वयं

पीये। मत्स्य मांस चोष्य चर्व्य आदि का उनके साथ भोजन करे और पश्चात् परम आनन्द के साथ वेश्या के साथ यथेच्छ रमण करे । साधक लोग यह वाक्य कहें कि कर्मकर्त्ता को निश्चल सिद्धि मिल जाय तथा यह अभिषेक कर्म निर्विघ्न समाप्त हो जाय ॥ ११-१३ ॥

चक्रालयान्निःसरेन्न जन एकोऽपि शङ्करि ।
प्रातःकृत्यादिकर्माणि कुर्यात्तत्रैव साधकः ॥ १४ ॥
दिनानि त्रीणि संव्याप्य भक्त्या तांस्तु समर्चयेत् ।
शिष्यश्चादौ दिवारात्रमभिषिक्तो भवेत्ततः ॥ १५ ॥

हे शङ्करि ! एक भी आदमी को चक्रगृह से बाहर नहीं निकलना चाहिये । साधक भी प्रातःकृत्य आदि समस्त कर्म वहीं करे । तीन दिन बिताकर (साधक) भक्ति के साथ उन (आहूत कौलों) की पूजा करे । इस प्रकार पहले (तीन) दिन रात्रि तक शिष्य का अभिषेक होता है ॥ १४-१५ ॥

अभिषेकपूर्वानुष्ठानवर्णनम्

अनुष्ठानविधिं वक्ष्ये सादरं शृणु पार्वति ।
न प्रकाण्डं नहि क्षुद्रं प्रमाणं घटमाहरेत् ॥ १६ ॥
ताम्रेण निर्मितं वापि स्वर्णेन निर्मितञ्च वा ।
प्रवालं हीरकं स्वर्णं मुक्तारूप्ये तथैव च ॥ १७ ॥
नानालङ्कारवस्त्राणि नानाद्रव्याणि भूरिशः ।
कस्तूरीकुंकुमादीनि नानागन्धानि चाहरेत् ॥ १८ ॥
नानापुष्पाणि माल्यानि पञ्चतत्त्वानि यत्नतः ।
विहितान् धूपदीपांश्च घृताक्तान् परमेश्वरि ॥ १९ ॥

अभिषेक के पहले करणीय अनुष्ठान का वर्णन—हे पार्वति ! अब अनुष्ठान विधि को बतलाऊँगा । उसे आदरपूर्वक सुनो । न बहुत बड़ा न बहुत छोटा किन्तु मध्यम परिमाण का घट ले आना चाहिये। वह घट ताम्र या स्वर्ण का बना हुआ हो । मूंगा, हीरा, सोना, मोती, चाँदी इसी प्रकार अनेक अलङ्कार, वस्त्र, बहुत सारे द्रव्य, कस्तूरी, कुंकुम तथा अनेक प्रकार के गन्ध आदि को ले आना चाहिये । हे परमेश्वरि ! नाना प्रकार के पुष्पों उनकी मालाओं तथा पञ्च तत्त्व, कौलशास्त्र सम्मत घृतयुक्त धूप दीप का संग्रह करना चाहिये ॥ १६-१९ ॥

ततः शिष्यं समानीय गुरुः शुद्धालये प्रिये ।
वेश्याभिः साधकैः सार्धं पूजनञ्च समाचरेत् ॥ २० ॥
पटलोक्तविधानेन सावधानेन भक्तितः ।

पूजां समाप्य देव्यास्तु स्तवैस्तु प्रणमेन्मुदा ॥ २१ ॥
ततो हि शिवभक्तेभ्यो गन्धमाल्यानि दापयेत् ।
आसनं वस्त्रभूषां च प्रत्येकेन कुलेश्वरि ॥ २२ ॥

हे प्रिये ! इसके बाद गुरु शिष्य को शुद्ध गृह में ले आकर वेश्याओं और साधकों के साथ पूजन का प्रारम्भ करे । इस पटल में वर्णित विधि के अनुसार, सावधान हो भक्तिपूर्वक पूजाकृत्य को समाप्त कर देवी की स्तुति करे और प्रसन्न होकर प्रणाम करे । हे कुलेश्वरि ! इसके बाद प्रत्येक शिव भक्तों के लिए गन्ध माला वस्त्र आभूषण आसन आदि का दान करे ॥ २०-२२ ॥

ततः शङ्खादिवाद्यैश्च मङ्गलाचरणैः परैः ।
घटस्थापनकं कुर्यात् क्रमं तत्र वदामि ते ॥ २३ ॥
कामबीजेन संप्रोक्ष्य वाग्भवेनैव शोधयेत् ।
शक्त्या कलशमारोप्य मायया पूरयेज्जलैः ॥ २४ ॥
प्रवालादि पञ्चरत्नञ्च विन्यसेत्तु जले ततः ।
आवाहयेच्च तीर्थानि मन्त्रेणानेन देशिकः ॥ २५ ॥
ॐ गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च ।
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदा नदाः ॥ २६ ॥
ह्रदाः प्रस्रवणाः पुण्याः स्वर्गपातालभूगताः ।
सर्वतीर्थानि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिम् ॥ २७ ॥

इसके बाद शङ्ख आदि वाद्यों तथा उत्तम मङ्गल गान के साथ कलश स्थापन करना चाहिये । उसमें मैं क्रम को बतला रहा हूँ । घट का संप्रोक्षण कामबीज (= क्लीं) से तथा संशोधन वाग्भव बीज (= ऐं) से करना चाहिये । शक्ति बीज (= सौः/हसौं) के द्वारा कलश को आरोपित कर माया बीज (= ह्रीं/ह्लीं) से उसमें जल भरना चाहिये । प्रवाल आदि पञ्चरत्न डालना चाहिये। इसके बाद आचार्य (उस कलश में)—'ॐ गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च । सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदा नदाः ॥ ह्रदाः प्रस्रवणाः पुण्याः स्वर्गपातालभूगताः । सर्वतीर्थानि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिम् ॥'—मन्त्र से तीर्थों का आवाहन करे ।

गङ्गा आदि समस्त नदियाँ, सारे समुद्र, तालाब, बादल, नद, झील, स्वर्ग, पाताल और पृथ्वी पर रहने वाले समस्त पवित्र जलस्रोत और समस्त पवित्र तीर्थ इस घट में एकत्रित हों ॥ २३-२७ ॥

रमाबीजेन जप्तेन पल्लवान् प्रतिदापयेत् ।
कूर्चेन फलदानं स्यात् गन्धवस्त्रे ह्रदा मुदात्मना ॥ २८ ॥

ललनयैव सिन्दूरं पुष्पं दद्यात्तु कामतः ।
मूलेन दूर्वाः प्रणवैः कुर्यादभ्युक्षणं ततः ॥ २९ ॥
हूँ फट् स्वाहेति मन्त्रेण कुर्याद् दर्भैश्च ताडनम् ।
विचिन्त्य मूलपीठन्तु तत्र संपूज्य पूरयेत् ॥ ३० ॥

रमाबीज (= श्रीं) का जप करते हुए (कलश के ऊपर) पल्लवों को रखे । कूर्च बीज (हुं) से फल और हृद्बीज (= नमः) से गन्ध और वस्त्र दे । (= स्त्रीं) से सिन्दूर, कामबीज (= क्लीं) से पुष्प, मूल बीज (= त्रीं) से दूर्वा तथा प्रणव (= ॐ) से अभ्युक्षण करे । दर्भ लेकर 'हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्र से ताडन करे । (घट में) मूलपीठ का ध्यान कर उसका पूजन कर (घट को जल से) पूरित करे ॥ २८-३० ॥

स्वतन्त्रोक्तविधानेन प्रार्थयेदमुना बुधः ।
तद्घटे हस्तमारोप्य शिष्यं पश्यन् गुरुश्च सः ॥ ३१ ॥
उत्तिष्ठ ब्रह्मकलश देवताभीष्टदायक ।
सर्वतीर्थाम्बुसम्पूर्ण पूरय त्वं मनोरथम् ॥ ३२ ॥
अभिषिञ्चेत गुरुः शिष्यं ततो मन्त्रैश्च पार्वति ।
मण्डलैर्निखिलैः सर्वैः साधकैः शक्तिभिः सह ॥ ३३ ॥
पल्लवैराम्रकैश्चैव लतां संवीक्ष्य एव च ।
आनन्दैः परमेशानि भक्तानां हितकारिणि ॥ ३४ ॥

विद्वान् (आचार्य) अपने तन्त्र (= कौलतन्त्र) में वर्णित विधान से प्रार्थना करे । गुरु शिष्य को देखते हुए उस घट पर हाथ रखकर कहे—हे ब्रह्म स्वरूप कलश ! हे देवताओं के अभीष्टदायक ! हे समस्त तीर्थों के जल से पूरित ! तुम उठो और मनोरथ को पूरा करो । हे पार्वति ! इसके बाद गुरु को मन्त्रो द्वारा शिष्य का अभिषेक करना चाहिए । हे परमेशानि ! हे भक्तों की हितकारिणी ! (यह अभिषेक) समस्त मण्डलों, साधकों, शक्तियों के साथ आम्र पल्लव के द्वारा आनन्द के साथ स्त्री को देखकर शिष्य को नतमस्तक होना चाहिये ॥ ३१-३४ ॥

ॐ अस्याभिषेकमन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिरनुष्टुप् छन्दः ।
शक्तिर्देवता सर्वसङ्कल्पसिद्धये विनियोगः ॥ ३५ ॥

इस अभिषेकमन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्त्ति, छन्द अनुष्टुप् और देवता शक्ति हैं । इसका विनियोजन समस्त सङ्कल्प की सिद्धि के लिये होता है । 'ॐ अस्याभिषेकमन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिरनुष्टुप् छन्दः शक्तिर्देवता सर्वसङ्कल्पसिद्धये विनियोगः'—पढ़कर भूमि पर एक-दो बूँद जल गिराना चाहिये ॥ ३५ ॥

अभिषेककाले पाठवर्णनम्

ॐ राजराजेश्वरी शक्तिर्भैरवी रुद्रभैरवी।
श्मशानभैरवी देवी त्रिपुरानन्दभैरवी ॥ ३६ ॥
त्रिजटा त्रिपुटा देवी तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
त्रिपुरेशी महादेवी तथा त्रिपुरमालिका ॥ ३७ ॥
त्रिपुरानन्दिनी देवी तथैव त्रिपुरातनी।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ ३८ ॥

अभिषेक के समय पाठ का वर्णन—राजराजेश्वरी शक्ति, भैरवी, रुद्र भैरवी, श्मशान भैरवी, त्रिपुर भैरवी, आनन्दभैरवी, त्रिकुटा (त्रिजटा), त्रिपुटा, त्रिपुर-सुन्दरी, त्रिपुरेशी, त्रिपुरमालिका, त्रिपुरानन्दिनी, त्रिपुरातनी—ये सब देवियाँ मन्त्रपूत जल से तुम्हारा अभिषेक करे ॥ ३६-३८ ॥

ॐ छिन्नमस्ता महाविद्या तथैवैकजटेश्वेरी।
परा तारा जयदुर्गा शूलिनी भुवनेश्वरी॥ ३९ ॥
हरिताख्या महादेवी तथैव च त्रिखण्डिका।
नित्यानित्यस्वरूपा च वज्रप्रस्तारणी तथा ॥ ४० ॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा।

छिन्नमस्ता, महाविद्या, एकजटेश्वरी, परा, तारा, जयदुर्गा, शूलिनी, भुवनेश्वरी, हरिता, त्रिखण्डिका, नित्या, अनित्या, वज्रप्रस्तारिणी—ये सब मन्त्रपूत जल से तुम्हारा अभिषेक करे ॥ ३९-४१- ॥

ॐ अश्वारूढ़ा महादेवी तथा महिषमर्दिनी ॥ ४१ ॥
दुर्गा च नवदुर्गा च श्रीदुर्गा भगमालिनी ।
तथा भगन्दरी देवी भगक्लिन्ना तथा परा ॥ ४२ ॥
सर्वचक्रेश्वरी देवी तथा नीलसरस्वती।
सर्वसिद्धिकरी देवी सिद्धगन्धर्वसेविता ॥ ४३ ॥
उग्रतारा महादेवी तथा च भद्रकालिका ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ ४४ ॥

अश्वारूढा, महादेवी, महिषासुरमर्दिनी, दुर्गा, नवदुर्गा, श्रीदुर्गा, भग-मालिनी, भगन्दरी, भगक्लिन्ना, सर्वचक्रेश्वरी, नीलसरस्वती, सिद्धगन्धर्वसेविता, सर्वसिद्धिकरी, उग्रतारा तथा भद्रकाली—ये सब मन्त्रपूत जल से तुम्हारा अभिषेक करे ॥ -४१-४४ ॥

ॐ क्षेमङ्करी महामाया चानिरुद्धसरस्वती ।
मातङ्गी चान्नपूर्णा च राजराजेश्वरी तथा ॥ ४५ ॥

एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

क्षेमङ्करी, महामाया, अनिरुद्धसरस्वती, मातङ्गी, अन्नपूर्णा और राजराजेश्वरी —ये मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ ४५-४६- ॥

ॐ उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ॥ ४६ ॥
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ ४७ ॥

उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा और अतिचण्डा—ये सब मन्त्रपूत जल से तुम्हारा अभिषेक करे ॥ -४६-४७॥

ॐ उग्रदंष्ट्रा सुदंष्ट्रा च महादंष्ट्रा कपालिनी ।
भीमनेत्रा विशालाक्षी मङ्गला विजया जया ॥ ४८ ॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

उग्रदंष्ट्रा, सुदंष्ट्रा, महादंष्ट्रा, कपालिनी, भीमनेत्रा, विशालाक्षी, मङ्गला, विजया तथा जया—ये सब मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ ४८-४९- ॥

ॐ मङ्गला नन्दिनी भद्रा लक्ष्मीः कान्तिर्यशस्विनी ॥ ४९ ॥
पुष्टिर्मेधा शिवा धात्री यशा शोभा जया धृतिः ।
श्रीनन्दा च सुनन्दा च नन्दिनी नन्दपूजिता ॥ ५० ॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

मङ्गला, नन्दिनी, भद्रा, लक्ष्मी, कान्ति, यशस्विनी, पुष्टि, मेधा, शिवा, धात्री, यशस्विनी, शोभावती, जया, धृति, श्रीनन्दा, सुनन्दा, नन्दिनी और नन्दपूजिता—ये सब मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ -४९-५१- ॥

ॐ विजया मङ्गला भद्रा धृतिः शान्तिः शिवा क्षमा ॥ ५१ ॥
सिद्धिस्तुष्टिरुमा पुष्टिः श्रद्धा चैव रतिस्तथा ।
दीप्तिः कान्तिर्यशा लक्ष्मीरीश्वरी बुद्धिरेव च ॥ ५२ ॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

विजया, मङ्गला, भद्रा, धृति, शान्ति, शिवा, क्षमा, सिद्धि, तुष्टि, उमा, पुष्टि, श्रद्धा, रति, दीप्ति, कान्ति, यशा, लक्ष्मी, ईश्वरी और बुद्धि—ये सब मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ -५१-५३- ॥

ॐ चक्री जयावती ब्राह्मी जयन्ती चापराजिता ॥ ५३ ॥
अजिता मानवी श्वेता अदितिश्चादिरेव च ।
माया चैव महामाया क्षोहिनी श्लोभिनी तथा ॥ ५४ ॥

कमला विमला गौरी शरण्यम्बुधिसुन्दरी ।
दुर्गा क्रियाऽरुन्धती(च) घण्टाहस्ता कपालिनी ॥ ५५ ॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

चक्री, जयावती, ब्राह्मी, जयन्ती, अपराजिता, अजिता, मानवी, श्वेता, अदिति, आदि, माया, महामाया, क्षोहिनी, लोभिनी, कमला, विमला, गौरी, शरणी, अम्बुधिसुन्दरी, दुर्गा, क्रिया, अरुन्धती, घण्टाहस्ता और कपालिनी—ये सब मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ -५३-५६- ॥

ॐ रौद्री काली च मायूरी त्रिनेत्राचापराजिता ॥ ५६ ॥
सुरूपा च कुरूपा च तथैव विग्रहात्मिका ।
चर्चिका चापरा ज्ञेया तथैव सुरपूजिता ॥ ५७ ॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

रौद्री, काली, मायूरी, त्रिनेत्रा, अपराजिता, सुरूपा, कुरूपा, विग्रहात्मिका, चर्चिका और सुरपूजिता—ये सब मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ -५६-५८- ॥

ॐ वैवस्वती च कौमारी तथा माहेश्वरी परा ॥ ५८ ॥
वैष्णवी च महालक्ष्मीः कार्त्तिकी कौशिकी तथा ।
शिवदूती च चामुण्डा मुण्डमालाविभूषिता ॥ ५९ ॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

वैवस्वती, कौमारी, माहेश्वरी, वैष्णवी, महालक्ष्मी, कार्त्तिकी, कौशिकी, शिवदूती, मुण्डमाला से विभूषित चामुण्डा—ये सब मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ -५८-६०- ॥

ॐ इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्वरुणस्तथा ॥ ६० ॥
पवनो धनदेशानौ ब्रह्माऽनन्तो दिगीश्वराः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ ६१ ॥

इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, पवन, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा और अनन्त—ये सब दिक्पाल मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ -६०-६१॥

ॐ सम्वत्सरश्चायनश्च मासपक्षौ दिनानि च ।
तिथयश्चाऽभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ ६२ ॥

संवत्सर, अयन, मास, पक्ष, दिन और तिथियाँ—ये सब मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ ६२ ॥

ॐ रविः सोमः कुजः सौम्यो गुरुः शुक्रः शनैश्चरः ।

राहुः केतुश्च सततमभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः ॥ ६३ ॥

रवि, सोम, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु—ये सब ग्रह तुम्हारा निरन्तर अभिषेक करे ॥ ६३ ॥

ॐ नक्षत्रं करणं योगोऽमृतं सिद्धिस्ततः परम् ।
दग्धं पापं तथा भद्रा योगा वाराः क्षणास्तथा ॥ ६४ ॥
वारवेला कालवेला दण्डा राश्यादयस्तथा ।
अभिषिञ्चन्तु सततं मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ ६५ ॥

नक्षत्र, करण, योग, अमृत, सिद्धि, दग्ध पाप, भद्रयोग, वार, क्षण, वार-वेला, कालवेला, दण्ड, राशि आदि—ये सब मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ ६४-६५ ॥

ॐ असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्तसंज्ञकः ।
कपाली भीषणाख्यश्च संहारश्चाष्टभैरवाः ॥ ६६ ॥
अभिषिञ्चन्तु सततं मन्त्रपूतेन वारिणा ।

असिताङ्गभैरव, रुरुभैरव, चण्डभैरव, क्रोधभैरव, उन्मत्तभैरव, कपालीभैरव, भीषणभैरव और संहारभैरव—ये आठ भैरव मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ ६६-६७- ॥

ॐ डाकिनीपुत्रकाश्चैव राकिनीपुत्रकास्तथा ॥ ६७ ॥
लाकिनीपुत्रकाश्चान्ये काकिनीपुत्रका परे ।
शाकिनीपुत्रका भूयो हाकिनीपुत्रकास्तथा ॥ ६८ ॥
ततश्च द(य)क्षिणीपुत्राः देवीपुत्रास्ततः परम् ।
मातृणाञ्च तथा पुत्राः ऊर्द्ध्वमुख्याः सुताश्च ते ॥ ६९ ॥
अधोमुख्याः सुताश्चैव कालमुख्याः सुताः परे ।
अभिषिञ्चन्तु ते सर्वे मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ ७० ॥

डाकिनीपुत्र, राकिनीपुत्र, लाकिनीपुत्र, काकिनीपुत्र, द(य)क्षिणीपुत्र, देवीपुत्र, मातृपुत्र, ऊर्ध्वमुखी के पुत्र, अधोमुखी के पुत्र तथा कालमुखी के पुत्र—ये सब मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ -६७-७० ॥

ॐ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ ७१ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव—ये सब मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ ७१ ॥

ॐ पुरुषः प्रकृतिश्चैव विकाराश्चैव षोडश ।

आत्माऽन्तरात्मा परमज्ञानात्मानः प्रकीर्तिताः ॥ ७२ ॥
आत्मनश्च गुणाश्चैव स्थूलाः सूक्ष्माश्च ये परे ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ ७३ ॥

पुरुष, प्रकृति, सोलह विकार, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा, आत्मा के स्थूल और सूक्ष्म गुण—ये सब मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ ७२-७३ ॥

ॐ वेदादिबीजं श्रीबीजं तथा तन्नीलकेतनम् ।
शक्तिबीजं रमाबीजं मायाबीजं गुणाष्टकम् ॥ ७४ ॥
चिन्तामणिर्महाबीजं नारसिंहं च शाङ्करम् ।
मार्तण्डभैरवं दौर्गं बीजं श्रीपुरुषोत्तमम् ॥ ७५ ॥
गाणपत्यं च वाराहं कालीबीजं भयापहम् ।
एतानि चाभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ ७६ ॥

वेदादि बीज (= ऊँ) श्री बीज (= इ उ) नीलकेतन (= झ) शक्तिबीज (= हसौः) रमा बीज (= श्रीं) माया बीज (= ह्रीं), आठ गुण, चिन्तामणि महाबीज (= कं) नरसिंह बीज (= क्षं) शङ्कर बीज (= शं) मार्तण्ड भैरव (= ह्यौं) दुर्गाबीज (= दुं दुः), पुरुषोत्तम बीज (= क्लीं), गाणपत्य बीज (= गं), बाराह बीज (= औं), कालीबीज (= क्रीं)—ये सब मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ ७४-७६ ॥

ॐ गङ्गा गोदावरी रेवा यमुना च सरस्वती ।
आत्रेयी भारती चैव सरयूर्गण्डकी तथा ॥ ७७ ॥
करतोया चन्द्रभागा श्वेतगङ्गा च कौशिकी ।
भोगवती च पाताले स्वर्गे मन्दाकिनी तथा ॥ ७८ ॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

गङ्गा, गोदावरी, रेवा (= नर्मदा), यमुना, सरस्वती, आत्रेयी, भारती, सरयू, गण्डक, करतोया, चन्द्रभागा, श्वेतगङ्गा, कौशिकी, भोगवती, पाताल और स्वर्ग लोक की गङ्गा—ये सब मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ ७७-७९-॥

ॐ भैरवो भीमरूपश्च शोणो घर्घर एव च॥ ७९ ॥
सिन्धुश्चैव ह्रदश्चैव तथा पातालसंभवाः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ ८० ॥

भैरवताल, भीमताल, शोणभद्र, घाघरा, सिन्धु तथा पाताल से उत्पन्न अन्य ह्रद मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ -७९-८० ॥

ॐ यानि कानि च तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च।
तानि त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रतन्त्रौषधानि च ॥ ८१ ॥

जो कोई तीर्थ और पुण्य के अन्य आयतन हैं तथा मन्त्र-तन्त्र औषधियाँ हैं वे तुम्हारा अभिषेक करे ॥ ८१ ॥

ॐ जम्बुद्वीपादयो द्वीपाः सागरा लवणादयः ।
अनन्ताद्यास्तथा नागाः सर्पाद्याः तक्षकादयः ॥ ८२ ॥
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

जम्बू आदि द्वीप, क्षार आदि सागर, अनन्त आदि नाग, सर्प आदि, तक्षक आदि—ये सब मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करे ॥ ८२-८३- ॥

ॐ रतिश्च वल्लभा वह्नेर्वषट् कूर्चमतः परम् ॥ ८३ ॥
वौषट्कारस्तु फट्कारअभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।

रति, अग्नि की वल्लभा (= स्वाहा), वषट्, कूर्च (= हूम्), वौषट्कार, फट्कार, तुम्हारा सदा अभिषेक करे ॥ -८३-८४- ॥

नश्यन्तु प्रेतकूष्माण्डा दानवा राक्षसाश्च ये ।
पिशाचा गुह्यका भूता अभिषेकेण ताडिताः ॥ ८४ ॥
अलक्ष्मीः कालरात्रिश्च पापानि च महान्ति च।
नश्यन्तु चाभिषेकेण ताराबीजेन ताडिताः॥ ८५ ॥

प्रेत, कूष्माण्ड, दानव, राक्षस, पिशाच, गुह्यक और भूत—ये सब अभिषेक से ताड़ित होकर नष्ट हो जायें । अलक्ष्मी, कालरात्रि (= मृत्यु) और बड़े-बड़े पाप ताराबीज (= त्रां, त्रीं) वाले अभिषेक से ताड़ित होकर नष्ट हो जायें ॥ ८४-८५ ॥

रोगाः शोकाश्च दारिद्र्यं दौर्बल्यं चित्तविक्रिया ।
नश्यन्तु चाभिषेकेण वाग्बीजेनैव ताडिताः ॥ ८६ ॥
लोकानुरागत्यागश्च दौर्भाग्यमपि दुर्यशः ।
नश्यन्तु चाभिषेकेण मन्मथेन च ताडिताः ॥ ८७ ॥

रोग, शोक, दारिद्र्य, दुर्बलता, चित्तविकार ये सब वाग्बीज (= ऐं) वाले अभिषेक से ताड़ित होकर नष्ट हो जाँय । लोकानुराग का त्याग, दुर्भाग्य, दुर्यश मन्मथ बीज (= क्लीं) से ताड़ित होकर अभिषेक के द्वारा नष्ट हो जायें ॥ ८६-८७ ॥

तेजोनाशः बुद्धिनाशः शक्तिनाशस्तथैव च ।
नश्यन्तु चाभिषेकेण कालीबीजेन ताडिताः ॥ ८८ ॥

विषाऽपमृत्युरोगाश्च डाकिन्यादिभयं तथा ।
घोराऽभिचारक्रूराश्च ग्रहा नागास्तथा परे ॥ ८९ ॥
नश्यन्तु विपदः सर्वाः सम्पदः सन्तु सुस्थिराः ।
अभिषेचनमात्रेण पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ॥ ९० ॥

तेजोनाश, बुद्धिनाश, शक्तिनाश काली बीज (= क्रीं) से ताड़ित होकर नष्ट हो जायें । विष, अपमृत्यु, रोग, डाकिनी आदि से भय, घोर अभिचार, क्रूरग्रह, नाग, समस्त विपत्तियाँ नष्ट हो जायें और सारी सम्पत्तियाँ स्थिर हो जायें । अभिषेकमात्र से मनोरथपूर्ण हों ॥ ८८-९० ॥

ततो गुरुः प्राप्तमन्त्रं दीक्षयेत् पुनरेव हि ।
तदा सिद्धिर्भवेत् सत्यं नान्यथा वचनं मम ॥ ९१ ॥
ततः शिष्यो गुरुं देवीं प्रणमेद् बहुधा मुदा ।
दक्षिणां गुरवे दद्यात् कनकाञ्जलिमानतः ॥ ९२ ॥
नानावस्त्रैरलङ्कारैर्गन्धमाल्यादिभिस्तथा ।
तोषयेत् स्तुतिवाक्यैश्च प्रणमेत् पुनरेव हि ॥ ९३ ॥

इसके बाद गुरु मन्त्र को प्राप्त करने वाले शिष्य की पुनः दीक्षा करे । तभी सचमुच सिद्धि होती है । मेरा यह वचन सत्य है अन्यथा (= असत्य) नहीं है । इसके बाद शिष्य प्रसन्न होकर गुरु और देवी को प्रणाम करे तथा गुरु को एक अञ्जली सोना दक्षिणा के रूप में दे । अनेक प्रकार के वस्त्रों, अलङ्कार, गन्ध, माला आदि तथा स्तुतिवाक्यों से गुरु को सन्तुष्ट कर पुनः प्रणाम करे ॥ ९१-९३ ॥

कायेन मनसा वाचा गुरुः कुर्यात् तथाशिषः ।
वचनैर्विविधैः शिष्यं ग्राहयेत् तत्त्वमुत्तमम् ॥ ९४ ॥
गुरुश्च भैरवैः सार्धं शक्तिभिर्विहरेन्मुदा ।
भैरवाः शक्तयश्चापि कुर्युराशीः सुयत्नतः ॥ ९५ ॥

गुरु भी शरीर वाणी और मन से शिष्य को आशीर्वाद दे तथा अनेक वचनों से उसको उत्तम तत्त्व का ज्ञान कराये । गुरु प्रसन्न होकर भैरवों (= आहूत कौलिकों) और शक्तियों (= आहूत वेश्याओं) के साथ विहार करे । भैरव लोग और शक्तियाँ शिष्य को प्रयत्नपूर्वक आशीर्वाद दें ॥ ९४-९५ ॥

तथा त्रिदिवसं व्याप्य भोजयेत् भैरवान् बुधः ।
अष्टमे दिवसे शिष्यं पुनः कुर्यात्तु सेचनम् ॥ ९६ ॥
ताम्रपात्रोदकैर्देवि विद्यारत्नं जपन् सुधीः ।
कुम्भकांश्च तथा सप्त संपूर्त्तिः सिद्धिहेतवे ॥ ९७ ॥

शक्तिभ्यो भैरवेभ्योऽपि ततो वस्त्रादिभूषणम् ।
दद्यात् प्रयत्नतः साधुर्विद्धि देवि समापनम् ॥ ९८ ॥

इस प्रकार तीन दिन तक विद्वान् भैरवों को भोजन कराये । हे देवि ! आठवें दिन (गुरु) पुनः ताम्रपात्र के उदक से शिष्य का अभिषेक करे । उस समय वह बुद्धिमान् विद्यारत्न (= का०तं० ४।५-६ में वर्णित मन्त्र) का जप करे । सिद्धि के लिये सात घड़ों को जल आदि से पूर्ण करे । तत्पश्चात् भैरवों तथा शक्तियों के लिये प्रयत्नपूर्वक वस्त्र आभूषण आदि दान करे । हे देवि ! इस प्रकार (इस अनुष्ठान का) समीचीन समापन समझो ॥ ९६-९८ ॥

अभिषेकाधिकारिवर्णनम्

श्री देव्युवाच—

श्रुतं रहस्यं देवेश चाभिषेचनकर्मणः ।
गुरुः को वाधिकारी स्यादत्र तन्मे वद प्रभो ॥ ९९ ॥

अभिषेक के अधिकारी व्यक्ति का वर्णन—श्रीदेवी ने कहा—हे देवेश ! मैंने अभिषेक कर्म का रहस्य सुना । अब मुझे यह बतलाइये कि इस विषय में कौन गुरु या अधिकारी हो सकता है ॥ ९९ ॥

श्री शिव उवाच—

महाज्ञानी स कौलेन्द्रः शुद्धो गुरुपरायणः ।
निग्रहानुग्रहे शक्तः शिष्यपालनतत्परः ॥ १०० ॥
पुत्रदारादिभिर्युक्तः स्वजनैश्च प्रपूजितः ।
श्रद्धावानागमे नित्यं सोऽधिकर्त्ता च नान्यकः ॥ १०१ ॥

श्रीशिव ने कहा—जो (गुरु या अधिकारी) महाज्ञानी, कौलेन्द्र, शुद्ध, गुरु-परायण, निग्रह और अनुग्रह में समर्थ, शिष्य की रक्षा में लगा हुआ, पुत्र दारा आदि से युक्त, अपने लोगों से पूजित, आगमशास्त्र में नित्य श्रद्धा रखने वाला होता है वही (इस अभिषेक कर्म) का अधिकारी है अन्य नहीं ॥ १००-१०१॥

अन्धं खञ्जं तथा रुग्णं स्वल्पज्ञानयुतं पुनः ।
सामान्यकौलं वरदे वर्जयेन्मतिमान् सदा ॥ १०२ ॥
उदासीनं विशेषेण वर्जयेत् सिद्धिकामुकः ।
उदासीनमुखाद् दीक्षा वन्ध्या नारी यथा तथा ॥ १०३ ॥
अज्ञानाद् यदि वा मोहात् उदासीनात्तु पामरः ।
अभिषिक्तो भवेद् देवि विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥ १०४ ॥

किं तस्य जपपूजाभिः किं ध्यानैः किं च भक्तितः ।
सर्वं हि विफलं तस्य नरकं याति चान्तिमे ॥ १०५ ॥
कल्पकोटिशतं देवि भुंक्ते स नरकं सदा ।
ततो हि बहुजन्मभ्यो देवीमन्त्रमवाप्नुयात् ॥ १०६ ॥
ततो हितं महाशुद्धं गृहस्थं गुरुमालभेत् ।
अभिषेचनकर्माणि पुनः कुर्यात् प्रयत्नतः ॥ १०७ ॥

हे वरदे ! बुद्धिमान् को चाहिये कि वह अन्धे, लङ्गड़े, रोगी, अल्पज्ञ और सामान्य कौल को गुरु न बनाये । सिद्धि को चाहने वाला साधक उदासीन को विशेष रूप से छोड़ दे क्योंकि उदासीन के मुख से प्राप्त दीक्षा उसी प्रकार निष्फल होती है जैसे (सन्तानोत्पत्ति के विषय में) वन्ध्या नारी । हे देवि ! यदि कोई पामर अज्ञान या मोह के कारण उदासीन के द्वारा अभिषिक्त होता है तो पग-पग पर उसको विघ्न का सामना करना पड़ता है । उसके (द्वारा किये गये) जप पूजा ध्यान भक्ति से कोई लाभ नहीं । उसका सब (कृत्य) विफल हो जाता है और अन्त में वह नरक को जाता है । हे देवि ! वह सौ करोड़ कल्प तक नरक का भोग करता है । इसके बाद बहुत जन्म के अनन्तर देवीमन्त्र को प्राप्त करता है । इसलिये हितकारी महाशुद्ध और गृहस्थ व्यक्ति को गुरु बनाना चाहिये । इसके बाद प्रयत्नपूर्वक अभिषेक कर्म करना चाहिये ॥ १०२-१०७ ॥

सफलं हि सदा कर्म सर्वं तस्य भवेद् ध्रुवम् ।
विद्यापि जननीतुल्या पालिता सततं प्रिये ॥ १०८ ॥
यथा पशुं परित्यज्य कौलिकं गुरुमालभेत् ।
उदासीनं परित्यज्य तथाभिषेचनं मतम् ॥ १०९ ॥

उसी का सब कर्म निश्चित रूप से सफल होता है । उसी की विद्या पालित होकर जननी के समान (उसकी रक्षा करती) है । जिस प्रकार पशु गुरु को छोड़कर कौलिक आचार्य को गुरु बनाना चाहिये उसी प्रकार उदासीन को छोड़कर (कौलिक आचार्य से ही) अभिषेक कराना शास्त्रों के द्वारा माना गया है ॥ १०८-१०९ ॥

अभिषिक्तः शिवः साक्षादभिषिक्तो हि दीक्षितः ।
स एव ब्राह्मणो धन्यो देवि देवपरायणः ॥ ११० ॥
तस्यैव सफलं जन्म धरण्यां शृणु पार्वति ।
तस्यैव सफलं कर्म तस्यैव सफलं धनम् ॥ १११ ॥
तस्यैव सफलो धर्मः कामश्च फलदो मतः ।
दीक्षा हि सफला देवि क्रिया च सफला तनुः ॥ ११२ ॥

सर्वं हि सफलं तस्य गिरिजे बहु किं वचः ।

हे देवि ! अभिषिक्त व्यक्ति साक्षात् शिव होता है । वही वस्तुतः दीक्षित है। वही ब्राह्मण और धन्य है । वही देवपरायण है । हे पार्वति ! पृथ्वी पर उसी का जन्म सफल समझो । उसी का कर्म सफल है उसी का धन सफल है उसी का धर्म सफल हैं और उसी का काम फलदायी माना गया है । हे देवि ! उसी की दीक्षा, क्रिया और शरीर सफल है । हे गिरिजे ! उसी का सब सफल है और अधिक क्या कहें ॥ ११०-११३- ॥

यत्र देशे वसेत् साधुः सोऽपि वाराणसीसमः॥ ११३ ॥
तस्य क्रोड़े वसन्तीह सर्वतीर्थानि निश्चितम् ।
सत्यं सत्यं महामाये गुरुतत्त्वं मयोदितम् ॥ ११४ ॥
उक्तानि यानि यानीह सेचनानि च पार्वति ।
सर्वतन्त्रेषु तान्यस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ११५ ॥

जिस स्थान में वह महापुरुष रहता है वह स्थान वाराणसी के तुल्य हो जाता है । उसकी गोद में समस्त तीर्थ निश्चितरूप से निवास करते हैं । हे महामाये ! मैंने इस सत्य गुरुतत्त्व को बतलाया । हे पार्वति ! सब तन्त्रों में जिन अभिषेकों को मैंने कहा है वे सब इस अभिषेक की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं हैं ॥ -११३-११५ ॥

योग्यं गुरुं तथा शिष्यं विनैतद्घटनं नहि ।
जायते देवदेवेशि सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ ११६ ॥
इदन्तु सेचनं देवि त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
गणेशः पात्रमत्रैव कार्त्तिकेयोऽपि पार्वति ॥ ११७ ॥
मम तुल्यो विष्णुतुल्यो ब्रह्मतुल्योऽत्र भाजनम् ।
पञ्चवक्त्रैश्च शक्तो न वर्णितुं परमेश्वरि ॥ ११८ ॥

हे देवेशि ! इस अभिषेक का क्रियान्वयन विना योग्य गुरु और योग्य शिष्य के नहीं होता । मैंने यह सत्य कहा है । हे देवि ! यह अभिषेक तीनों लोकों में दुर्लभ है । हे पार्वति ! इस विषय में गणेश अथवा कार्त्तिकेय ही पात्र हैं । मेरे जैसा तथा ब्रह्मा और विष्णु तुल्य व्यक्ति ही इसका पात्र है। हे परमेश्वरि । मैं अपने पाँच मुखों से भी इस अभिषेक का महत्त्ववर्णन करने में समर्थ नहीं हूँ ॥ ११६-११८ ॥

इति ते कथितं गुह्यं सेचनं परमं महत् ।
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥ ११९ ॥
यथा रतिर्गोपनीया यथा हि स्तनमण्डलम् ।

यथा योनिर्गोपनीया तथाभिषेचनं परम् ॥ १२० ॥
निखाते धनमारोप्य गोपयेत्तु यथा नरः ।
तथैव तु महामाये गोपनीयं ममाज्ञया ॥ १२१ ॥

॥ इति कामाख्यातन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे पूर्णाभिषेकवर्णननामा अष्टम पटलः ॥ ८ ॥

तुमको मैंने यह अत्यन्त गुह्य अभिषेक बतलाया । इसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये । जिस प्रकार रतिकार्य गोपनीय होता है, जिस प्रकार स्तनमण्डल गोपनीय होता है; जिस प्रकार योनि गोपनीय होती है उसी प्रकार यह अभिषेक भी गोपनीय है । जिस प्रकार गड्ढे में धन रखकर आदमी उसकी रक्षा करता है; हे महादेवि ! उसी प्रकार मेरी आज्ञा से इसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ११९-१२१ ॥

कामाख्यातन्त्र के शिवपार्वतीसंवाद में पूर्णाभिषेकवर्णन नामक आठवें पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदी कृत ज्ञानवती नामक हिन्दी टीका सम्पूर्ण हुई ॥ ८ ॥

नवमः पटलः

मुक्तिस्वरूपवर्णनम्

श्रीपार्वत्युवाच—

> मुक्तितत्त्वं महादेव वद मे करुणानिधे ।
> यस्मिन् षड् दर्शनानीह चोपहास्यं गतानि च ॥ १ ॥

मुक्ति के स्वरूप का वर्णन—श्रीपार्वती ने कहा—हे महादेव ! हे करुणानिधे ! जिस विषय में छहों दर्शन उपहास के पात्र होते हैं उस मुक्ति तत्त्व को मुझको बतलाइये ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच—

> शृणु देवि शुभे विज्ञे यत् पृष्टं तत्त्वमुत्तमम् ।
> एतन्मर्म च त्वं वेत्सि अहं वेद्मि तथा हरिः ॥ २ ॥
> मोदकेन यथा लोकः प्रतारयति बालकान् ।
> निगडेन यथा देवि बध्नाति दुर्जनं नृपः ॥ ३ ॥
> तथा मुग्धीकृता लोके दर्शनैश्चाथवा मया ।
> दुर्जने यदि मुक्तिः स्यात् शङ्कयेति शुभानने ॥ ४ ॥
> षड्दर्शनमहाकूपे पतिताः पशवः प्रिये ।
> परमार्थं न जानन्ति तत् सर्वं काकभाषितम् ॥ ५ ॥

हे शुभे ! हे विज्ञे ! हे देवि ! जो तुमने पूछा उसको सुनो । इस रहस्य को तुम जानती हो, मैं जानता हूँ और विष्णु जानते हैं । जिस प्रकार (संसार में) लोग लड्डू देकर बालकों को बहका देते हैं तथा जैसे राजा दुर्जन को बेड़ी से बाँध देता है उसी प्रकार (आगमातिरिक्त) दर्शनों के द्वारा अथवा मेरे

द्वारा लोग मूढ बना दिये गये हैं । हे शुभानने ! यदि (छह दर्शनों के द्वारा) दुर्जन को भी मुक्ति की बात की जाती है तो वहाँ शङ्का (करना व्यर्थ हैं सच बात तो यह है कि उन दर्शनों के अनुयायी) छह दर्शन के महाकूप में पतित हो जाते हैं। वे परमार्थ को नहीं जानते । उनका (षड्दर्शन का ज्ञान) कौवे के वचन के समान (निःसार) है ॥ २-५ ॥

न सारः कदलीवृक्षे एरण्डे तु यथानघे ।
दर्शनेषु तथा मुक्तिर्नास्ति नास्ति कलौ युगे ॥ ६ ॥
यथा मरीचिकायाश्च निवर्तन्ते पुनर्मृगाः ।
दर्शनेभ्यो निवर्तन्ते तथा मुमुक्षवः पुनः ॥ ७ ॥
श्रीगुरोश्च प्रसादेन मुक्तिमादौ समालभेत् ।
विचरेत् सर्वशास्त्रेषु कौतुकाय ततः सुधीः ॥ ८ ॥

हे अनघे ! जैसे केले अथवा रेंड़ के वृक्ष में तत्त्व नहीं होता उसी प्रकार कलियुग में दर्शनों का अनुगमन करने से मुक्ति नहीं मिलती । जिस प्रकार (जल की लालसा से मृगमरीचिका के पीछे-पीछे दौड़ने वाले) मृग पुनः (निरास होकर) मृगमरीचिका से वापस आ जाते हैं उसी प्रकार मुमुक्षु लोग दर्शनों से निवर्तित होते हैं । इसलिये मुक्ति तो गुरु की कृपा से मिलती है । विद्वान् को चाहिये कि वह (मुक्ति तत्त्व को जानकर) अन्य शास्त्रों में कौतुक के लिये विचरण करे ॥ ६-८ ॥

मुक्तितत्त्वं प्रवक्ष्यामि सारं च शृणु पार्वति ।
शरीरं धारणं यत्तु कुर्वन्तीह पुनः पुनः ॥ ९ ॥
आदावनुग्रहो देव्याः श्रीगुरोस्तदनन्तरम् ।
तथा नाना शुभा दीक्षा भक्तिस्तस्य प्रजायते ॥ १० ॥
ततो हि साधनं शुद्धं तस्माज् ज्ञानं सुनिर्मलम् ।
ज्ञानान्मोक्षो भवेत् सत्यमिति शास्त्रस्य निर्णयः ॥ ११ ॥

हे पार्वति ! अब मैं मुक्तितत्त्व को बतलाऊँगा । उसका सार सुनो । (मनुष्य) इस लोक में बार-बार शरीर धारण करते हैं । (किसी एक जन्म में किसी एक शरीर के ऊपर) पहले श्रीदेवी (= शक्ति) का अनुग्रह होता है । उसके बाद गुरु उस पर अनुग्रह करते हैं । परिणामस्वरूप उसकी अनेक प्रकार की शुभ दीक्षायें होती हैं । (दीक्षा के परिणामस्वरूप) उसके अन्दर भक्ति उत्पन्न होती है । भक्ति के कारण वह साधना करता है और फिर (उसके अन्तःकरण में) शुद्ध निर्मल ज्ञान उत्पन्न होता है । तत्पश्चात् ज्ञान से मोक्ष होता है । यह शास्त्र का निर्णय है ॥ ९-११ ॥

मुक्तिश्चतुर्विधा प्रोक्ता सालोक्यन्तु शुभानने ।
सारूप्यं सहयोज्यं च निर्वाणं च परात् परम् ॥ १२ ॥
सालोक्यं वसति लोके सारूप्यं तु स्वरूपता।
सायोज्यं कलया युक्तं निर्वाणं च मनोलयः ॥ १३ ॥

हे शुभानने ! मुक्ति चार प्रकार की कही गयी है—सालोक्य, सारूप्य, सायोज्य और निर्वाण । निर्वाण मुक्ति परात् पर अर्थात् सर्वोत्कृष्ट है । सालोक्य वह है जिसमें जीव (मेरे) लोक में निवास करता है । सारुप्य में वह मेरे रूप वाला हो जाता है । सायोज्य का अर्थ है कि वह मेरी कला (= शक्ति) से युक्त होता है और निर्वाण (इष्ट देव में) मन का लय है ॥ १२-१३ ॥

श्रीदेव्युवाच—

सम्यग् लयो जनस्यैव निर्वाणं यत्तु कथ्यते ।
तत् किम् वद महादेव संशयं लयसात् कुरु ॥ १४ ॥

श्रीदेवी ने कहा—जीव का सम्यक् लय, जिसे निर्वाण कहते हैं, क्या है ? मुझे बतलाइये । हे महादेव ! संशय को दूर कीजिये ॥ १४ ॥

श्रीशिव उवाच—

व्यक्तिर्लयात्मिका मुक्तिरसुराणां दयानिधे ।
दुर्ज्जनत्वाल्लोपयित्वा क्रीड़यामि सुरानहम् ॥ १५ ॥
मनोलयात्मिका मुक्तिरिति जानीहि शङ्करि ।
प्राप्ता मया विष्णुना च ब्रह्मणा नारदादिभिः ॥ १६ ॥

हे कृपामयि ! असुरों की व्यक्ति (= जन्म) फिर उनके दुर्जन होने के कारण (मेरे द्वारा उनका वध होने पर उनका मेरे अन्दर) सम्यक्तया लीन हो जाना (निर्वाण) मुक्ति है । इसी प्रकार देवताओं का भी (पुण्यकाल क्षीण होने पर उनका) लोप कर मैं उनके रूप में क्रीड़ा करता हूँ । यह भी निर्वाण मुक्ति है। हे शङ्करि ! मनोलयात्मिका मुक्ति को जानो । इसे मैंने विष्णु ब्रह्मा और नारद आदि ने प्राप्त किया ॥ १५-१६ ॥

सालोक्यं केवलं तत्तु सारूप्यं युगलद्वयम् ।
त्रिधा सायोज्यवानेति निर्वाणो सर्वमेव हि ॥ १७ ॥

सालोक्य वह है जिसमें जीव केवल अर्थात् इष्ट के लोक में अकेला रहता है । सारूप्य वह है जिसमें जीव शिव या शक्ति दोनों का रूप धारण करता है। सहयुज्य में वह तीन रूप वाला अर्थात् शिव शक्ति और स्वयं अपने रूप

में मुझसे संयुक्त रहता है और निर्वाण उसकी सर्वरूपता है ॥ १७ ॥

नीलोत्पलदलश्यामा मुक्तिर्द्विदलवर्तिनी ।
मुक्तस्यैव सदा स्फीता स्फुरत्यविरतं प्रिये ॥ १८ ॥
सनातनी जगन्माता सच्चिदानन्दरूपिणी ।
परा च जननी सैव सर्वाभीष्टप्रदायिनी ॥ १९ ॥

नीलकमल की पंखुड़ी के समान मुक्ति दो दलों (= आज्ञा चक्र के द्विदल कमल) में रहने वाली है । हे प्रिये ! मुक्त व्यक्ति के समक्ष वह निरन्तर स्फुरित होती रहती है । वह सनातनी, विश्व की माता, सत् चित् आनन्द-रूपिणी, परा, जननी और समस्त अभीष्ट को देने वाली है ॥ १८-१९ ॥

इष्टे निश्चलसम्बन्धः स च निर्वाणमीरितः ।
मुक्तिज्ञानं कुलज्ञानं नान्यज्ज्ञानं महेश्वरि ॥ २० ॥
साधूनां देवदेवेशि सर्वेषां विद्धि निश्चितम् ।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले ये ये मुक्ता भवन्ति हि ॥ २१ ॥
बभूवुश्च भविष्यन्ति सर्वेषां मुक्तिरीदृशी ।
तथा हि साधनं ज्ञेयं पञ्चतत्त्वैश्च मुक्तिदम् ॥ २२ ॥

इष्टदेव के साथ निश्चल सम्बन्ध को निर्वाण कहा गया है । हे महेश्वरि ! कुल (= शक्ति) का ज्ञान ही मुक्ति का ज्ञान है । अन्य का ज्ञान मुक्तिज्ञान नहीं है । हे देवेशि ! यह ज्ञान समस्त साधुओं (= कौल साधकों) को निश्चित रूप से होता है । स्वर्ग मर्त्य और पाताल में जो-जो लोग मुक्त होते हैं; हुए और होंगे उन सबकी मुक्ति ऐसी ही है । पञ्चतत्त्वों के द्वारा साधना को मुक्तिदायक समझना चाहिए ॥ २०-२२ ॥

अनुग्रहश्च देव्याश्च कुलमार्गप्रदर्शकः ।
दीक्षा कुलात्मिका देवि श्रीगुरोर्मुखपङ्कजात् ॥ २३ ॥
कुलद्रव्येषु या भक्तिः सा मोक्षदायिनी मता ।
ज्ञात्वा चैवं प्रयत्नेन कुलज्ञानी भवेद् बुधः ॥ २४ ॥

देवी का अनुग्रह कुलमार्ग का प्रदर्शक होता है । हे देवि ! श्रीगुरु के मुख-कमल से जो दीक्षा मिलती है वह कुलात्मिका होती है । कुलद्रव्यों (= मांस मद्य आदि) के विषय में जो भक्ति है वह भी मोक्षदायिनी कही गयी है । इसलिये इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक यह सब जानकर विद्वान् को कुलज्ञानी होना चाहिए ॥ २३-२४ ॥

यदि भाग्यवशाद् देवि मन्त्रमेतत्तु लभ्यते ।
मुक्तेश्च कारणं तस्याः स्वयं ज्ञातं न चान्यथा ॥ २५ ॥

अश्रुतं मुक्तितत्त्वं हि कथितं ते महेश्वरि ।
आत्मयोनिर्यथा देवि तथा गोप्यं ममाज्ञया ॥ २६ ॥

॥ इति कामाख्यातन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे मुक्तिस्वरूपवर्णननामा नवमः पटलः ॥ ९ ॥

हे देवि ! यदि सौभाग्य से मुक्ति का कारणभूत यह मन्त्र मिल जाय तो उस मुक्ति के कारण का ज्ञान स्वयं हो जाता है । यह कथन अन्यथा नहीं है । हे महेश्वरि ! मैंने तुमको यह अश्रुतपूर्व मुक्तितत्त्व बतलाया । जिस प्रकार अपनी योनि को उसी प्रकार इसको भी मेरी आज्ञा से गुप्त रखना ॥२५-२६॥

कामाख्यातन्त्र के शिवपार्वतीसंवाद में मुक्तिस्वरूपवर्णन नामक नौवें पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदी कृत ज्ञानवती नामक हिन्दी टीका सम्पूर्ण हुई ॥ ९ ॥

दशमः पटलः

कामाख्यास्वरूपवर्णनम्

श्रीदेव्युवाच—

कामाख्या या महादेवी कथिता सर्वरूपिणी ।
सा का वद जगन्नाथ कपटं मा कुरु प्रभो ॥ १ ॥
कुर्यास्तु कपटं नाथ यदि मे शपथस्त्वयि ।
रतौ का कामिनी योनिं सम्यग् न दर्शयेत् पतिम् ॥ २ ॥
श्रुत्वैतत् गिरिजावाक्यं प्रहस्योवाच शङ्करः ।

कामाख्या के स्वरूप का वर्णन—श्रीदेवी ने कहा—हे प्रभो ! जो सर्वरूपिणी महादेवी कामाख्या नाम से कही गयी है, हे जगन्नाथ ! वह कौन है ?—यह बतलाइये । कपट मत कीजिये । हे नाथ ! यदि आप कपट करते हैं तो आपको मेरी सौगन्ध है । रति के समय कौन कामिनी पति को सम्यक् रूप से योनि न दिखाये । (अर्थात् रतिकाल में पुरुष को योनि का स्पष्ट अवलोकन नहीं करना चाहिये) । गिरिजा के इस वाक्य को सुनकर शङ्कर ने हँस कर कहा ॥ १-३- ॥

श्रीशङ्कर उवाच—

शृण देवि मम प्राणवल्लभे कथयामि ते ॥ ३ ॥
या देवी कालिका माता सर्वविद्यास्वरूपिणी ।
कामाख्या सैव विख्याता सत्यं देवि न चान्यथा ॥ ४ ॥
सैव ब्रह्मेति जानीहि संज्ञार्थं दर्शनानि च ।
विचरन्ति चोत्सुकानि यथा चन्द्रे हि वामनः ॥ ५ ॥
अस्या हि जायते सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।

लीयते पुनरस्यां च सन्देहं मा कुरु प्रिये ॥ ६ ॥

श्रीशङ्कर ने कहा—हे मेरी प्राणप्रिया देवि ! सुनो । मैं तुमको बतला रहा हूँ । सर्वविद्यास्वरूपिणी जो माता कालिका देवी हैं वही कामाख्या नाम से प्रसिद्ध हैं । यह कथन सत्य है अन्यथा नहीं । नाम के लिये उसे ब्रह्म जानो। दर्शनशास्त्र भी उसके लिये उत्सुक रहते हैं जैसे कि चन्द्रमा के विषय में चकोर पक्षी (या बौना पुरुष) । इससे यह चराचर जगत् उत्पन्न होता है और लौटकर उसी में लीन हो जाता है । इस विषय में संदेह मत करो ॥ -३-६ ॥

स्थूला सूक्ष्मा परा देवी सच्चिदानन्दरूपिणी ।
अमेयविक्रमाख्या सा करुणासागरा मता ॥ ७ ॥
मुक्तिमयी जगद्धात्री सदानन्दमयी तथा ।
विश्वम्भरी क्रियाशक्तिस्तथा सैव सनातनी ॥ ८ ॥

सच्चिदानन्दरूपिणी यह देवी स्थूला सूक्ष्मा और परा (तीन रूपों वाली) है। वह अमेयविक्रमा नाम वाली और करुणासागर कही गयी है । वह मुक्तिमयी, जगत् का पालन करने वाली तथा सदा आनन्दमयी है । वही (परमेश्वर की) सनातनी विश्वम्भरी क्रिया शक्ति है ॥ ७-८ ॥

यथा कर्मसमाप्तौ च दक्षिणा फलसिद्धिदा ।
तथा मुक्तिरसौ देवि सर्वेषां फलदायिनी ॥ ९ ॥
अतो हि दक्षिणा काली कथ्यते वरवर्णिनि ।

जिस प्रकार अनुष्ठान कर्म की समाप्ति होने पर दक्षिणा फलदायिनी होती है उसी प्रकार यह देवी (साधना के बाद) सब साधकों के लिये मुक्ति रूपी फल को देने वाली है । हे वरवर्णिनि ! इसीलिये इसे दक्षिणा काली कहा जाता है ॥ ९-१०- ॥

कृष्णवर्णा सदा काली आगमेषु च निर्णयः ॥ १० ॥
उक्तानि सर्वतन्त्राणि तथा नान्येति निर्णयः ।

आगमों में यह निर्णय है कि काली सदा कृष्ण वर्ण की है । सब तन्त्रों में यह बात कही गयी है । इस तन्त्र ने भी ऐसा ही निर्णय किया है । (वह अन्य प्रकार की नहीं है यह निर्णय है) ॥ -१०-११- ॥

कामाख्यातन्त्रमाहात्म्यवर्णनम्

कृत्वा सङ्कल्पमित्यस्य काम्येषु पाठयेद् बुधः॥ ११ ॥
पठेद् वा पाठयेद्वापि शृणोति श्रावयेदपि ।
तं तं काममवाप्नोति श्रीमत्कालीप्रसादतः ॥ १२ ॥

कामाख्यातन्त्र के माहात्म्य का वर्णन—विद्वान् काम्य कर्मों (की फलप्राप्ति) के लिये इसका सङ्कल्प कर या तो इस तन्त्र का पाठ स्वयं करे या किसी से कराये; सुने या सुनाये । ऐसा करने पर श्रीकाली की कृपा से तत्तत् कामनाओं की प्राप्ति करता है ॥ -११-१२ ॥

यथा स्पर्शमणिर्देवि तथैतत्तन्त्रमुत्तमम् ।
यथा कल्पतरुर्दाता तथा ज्ञेयं मनीषिभिः ॥ १३ ॥
यथा सर्वाणि रत्नानि सागरे सन्ति निश्चितम् ।
तथात्र सिद्धयः सर्वाः भुक्तिर्मुक्तिर्वरानने ॥ १४ ॥
सर्वदेवाश्रयो मेरुर्यथा सिद्धिस्तथा पुनः ।
सर्वविद्यायुतं तन्त्रं शपथेन वदाम्यहम् ॥ १५ ॥
यस्य गेहे वसेत् देवि तन्त्रमेतद् भयापहम् ।
रोगशोकपातकानां लेशो नास्ति कदाचन ॥ १६ ॥
तत्र दस्युभयं नास्ति ग्रहराजभयं न च ।
न चोत्पातभयं तस्य न च मारीभयं तथा ॥ १७ ॥
न वा पराजयस्तेषां भयं नैव मयोदितम् ।

हे देवि ! जिस प्रकार स्पर्शमणि (= पारस पत्थर) उसी प्रकार यह उत्तम तन्त्र भी है (अर्थात् जैसे पारस पत्थर स्पर्शमात्र से लोहे को सोना बना देता है उसी प्रकार यह तन्त्र श्रवण पठन अनुष्ठान मात्र से सर्वकामप्रद है)। जैसे कल्पवृक्ष दाता है उसी प्रकार विद्वान् लोग इसको भी समझें। जिस प्रकार निश्चित रूप से सारे रत्न समुद्र में रहते हैं । हे वरानने ! उसी प्रकार इस तंन्त्र में सारी सिद्धियाँ और भोग मोक्ष निहित हैं । जिस प्रकार समस्त देवताओं का आवासस्थल सुमेरु पर्वत सिद्धिदाता है उसी प्रकार सर्वविद्यायुक्त यह तन्त्र (सर्वसिद्धिप्रद) है—यह मैं शपथपूर्वक कहता हूँ । हे देवि ! यह भयापनुत् तन्त्र जिसके घर में रहता है उसमें कभी भी रोग शोक पातक का लेश भी नहीं रहता । वहाँ न दस्युभय न ग्रहभय, न राजभय, न उत्पातभय, न महामारीभय, न पराजय और न मेरे द्वारा उक्त भय रहता है ॥ १३-१८- ॥

भूतप्रेतपिशाचानां दानवानां च रक्षसाम् ॥ १८ ॥
न भयं क्वापि सर्वेषां व्याघ्रादीनां तथैव च ।
कूष्माण्डानां नैव यक्षादीनां भयं न च ॥ १९ ॥
विनायकानां सर्वेषां गन्धर्वानां तथा न च ।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले ये ये सन्ति भयानकाः ॥ २० ॥
ये ये विघ्नकराश्चैव न तेषां भयमीश्वरि ।

भूत प्रेत पिशाच दानव राक्षस व्याघ्र आदि सबका कहीं भी भय नहीं

रहता। कूष्माण्ड, यक्ष आदि, समस्त विनायक, समस्त गन्धर्व तथा स्वर्ग मृत्युलोक और पाताल में जो-जो भयानक तथा विघ्नकारी तत्त्व हैं, हे ईश्वरि ! उनका भय नहीं रहता ॥ -१८-२१- ॥

यमदूताः पलायन्ते विमुखा भयविह्वलाः ॥ २१ ॥
सत्यं सत्यं महादेवि शपथेन वदाम्यहम् ।
सम्पत्तिरतुला तत्र तिष्ठति साप्तपौरुषम् ॥ २२ ॥
वाणी तथैव देव्यास्तु प्रसादेन तु ईरिता ।

यमदूत भयविह्वल होकर उसके पास से विपरीत दिशा में भागते हैं—यह सत्य है । मैं शपथपूर्वक कह रहा हूँ अचल और अतुल सम्पत्ति इसके घर में सात पौरुष (= पीढ़ी) तक रहती है । उसी प्रकार देवी की कृपा से वाणी भी (सात पीढ़ी तक) कही गयी है ॥ -२१-२३- ॥

एतत्तु कथितं स्नेहात् न प्रकाश्यं कदाचन ॥ २३ ॥
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं सदा प्रिये ।
पशोरग्रे विशेषेण गोपयेत्तु प्रयत्नतः ॥ २४ ॥
भ्रष्टानां साधकानां च सान्निध्ये न वदेदपि ।
न दद्यात् काणखञ्जेभ्यो विगीतेभ्यस्तथैव च ॥ २५ ॥

हे प्रिये ! मैंने यह वर्णन तुम्हारे स्नेहवश किया । यह सदा गोपनीय है । विशेष रूप से इसे पशु के आगे छिपाना चाहिये । भ्रष्ट साधकों के आगे भी इसका वर्णन नहीं करना चाहिये । काने, लंगड़े, निन्दनीय, अथवा कौलमार्ग की निन्दा करने वालों के समक्ष इसको नहीं कहना चाहिये ॥ -२३-२५ ॥

उदासीनजनस्यैव सान्निध्ये न वदेदपि ।
दाम्भिकाय न दातव्यं नाभक्ताय विशेषतः ॥ २६ ॥
मूर्खाय भावहीनाय दरिद्राय ममाज्ञया ।
दद्यात् शान्ताय शुद्धाय कौलिकाय महेश्वरि ॥ २७ ॥
कालीभक्ताय शैवाय वैष्णवाय शिवाज्ञया ।
अद्वैतभावयुक्ताय महाकालप्रजापिने ॥ २८ ॥
सुरास्त्रीवन्द्यकायापि शिवाबलिप्रदाय च ।

॥ इति कामाख्यातन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे स्वरूपमाहात्म्ययोर्वर्णनं-नामा दशमः पटलः ॥ १० ॥

उदासीन लोगों के सामने इसको नहीं कहना चाहिए । दम्भी, अभक्त, मूर्ख, भावहीन और दरिद्र को नहीं बतलाना चाहिये—यह मेरी आज्ञा है । हे महेश्वरि ! जो शान्त, शुद्ध, कौलिक, कालीभक्त हो, शैव हो या वैष्णव हो, अद्वैतभाव से युक्त हो, महाकाल का उपासक हो, सुरा सुन्दरी की वन्दना करने वाला हो, शिवा (= काली) के लिये बलिप्रदान करने वाला हो, उसे देना चाहिये ॥ २६-२९- ॥

कामाख्यातन्त्र के शिवपार्वतीसंवाद में स्वरूप-माहात्म्यवर्णन नामक दसवें पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदी कृत ज्ञानवती नामक हिन्दी टीका सम्पूर्ण हुई ॥ १० ॥

एकादशः पटलः

कामाख्या-पीठ-स्थान-वर्णनम्

नेपालं च महापीठं, पौगण्डं वर्द्धमानथ ।
पुरस्थिरं महापीठं, चरस्थिरमतः परम् ॥ १ ॥
काश्मीरं च तथा पीठं, कान्यकुब्जमथो भवेत् ।
दारुकेशं महापीठमेकाम्रं च तथा शिवे ! ॥ २ ॥
त्रिस्रोतपीठमुद्दिष्टं, कामकोटमतः परम् ।
कैलासं भृगुनगं च, केदारं पीठमुत्तमम् ॥ ३ ॥
श्रीपीठं च तथोङ्कारं, जालन्धरमतः परम् ।
मालवं च कुलाब्जं च, देवमातृकमेव च ॥ ४ ॥
गोकर्णं च तथा पीठं, मारुतेश्वरमेव च ।
अट्टहासं च वीरजं, राजगृहमतः परम् ॥ ५ ॥
पीठं कोलगिरिश्चैव, एलापुरमतः परम् ।
कालेश्वरं महापीठं, प्रणवं च जयन्तिका ॥ ६ ॥
पीठमुज्जयिनी चैव, क्षीरिकापीठमेव च ।
हस्तिनापूरकं पीठं, पीठमुड्डीशमेव च ॥ ७ ॥
प्रयागं च हि षष्ठीशं, मायापुरं कुलेश्वरि ।
मलयं च महापीठं, श्रीशैलं च तथा प्रिये ! ॥ ८ ॥
मेरुगिरिः महेन्द्रं च, वामनं च महेश्वरि ! ।
हिरण्यपूरकं पीठं, महालक्ष्मीपुरं तथा ॥ ९ ॥
उड्डीयानं च महापीठं, काशीपुरमतः परम् ।
पीठान्येतानि देवेशि ! अनन्तफलदायीनि ॥ १० ॥

हे देवेशि ! अनन्तफल देने वाले महापीठ निम्नलिखित हैं—नेपाल,

पौगण्ड, वर्द्धमान, पुरस्थिर, चरस्थिर, काश्मीर, कान्यकुब्ज, दारुकेश, एकाम्र—ये नव साधारण पीठ है । त्रिस्रोत (= त्रिवेणी सङ्गम), कामकोट, कैलासपर्वत, भृगुपर्वत और केदार—ये पाँच अत्यन्त उत्कृष्ट पीठ हैं । ऊँकारेश्वर, जालन्धर, मालवा, कुलाब्ज, देवमातृका, गोकर्ण, मारुतेश्वर, अट्टहास, वीरज, राजगृह—ये दश अन्य पीठ हैं । कोलगिरि, एलापुर, कालेश्वर, प्रणव और जयन्तिका—ये पाँच महापीठ हैं । उज्जयिनी, क्षारिका, हस्तिनापुर और उड्डीश—ये चार स्थल भी पीठ हैं । प्रयाग, षष्ठीश, मायापुरी, कुलेश्वरी (जनेश्वरी), मलयपर्वत, श्रीशैल, सुमेरुपर्वत, महेन्द्रपर्वत, वामनपर्वत, हिरण्यपुर, महालक्ष्मीपुर और उड्डीयान—ये भी महापीठ हैं । (इस प्रकार ९+५+१०+५+४+१२ = ४५ कामाख्या पीठ हैं) ॥ १-१० ॥

यत्रास्ति कालिका मूर्तिर्निर्जनस्थानकानने ।
बिल्ववनादिकान्तारे, तत्रास्थायाष्टमी दिने ॥ ११ ॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां, शनिभौमदिने तथा ।
महानिशायां देवेशि ! तत्र सिद्धिरनुत्तमा ॥ १२ ॥

हे देवेशि ! निर्जन स्थान में, जङ्गल में, बेल के वन आदि घने जङ्गल में जहाँ काली की मूर्त्ति हो; कृष्णपक्ष की अष्टमी या चतुर्दशी को यदि शनिवार या भौमवार हो वहाँ बैठकर महानिशा में कालिका देवी की साधना करने से सर्वोत्तम सिद्धि मिलती है ॥ ११-१२ ॥

अन्यान्यपि च पीठानि, तत्र सन्ति न संशयः ।
देवदानवगन्धर्वाः, किन्नराः प्रमथादयः ॥ १३ ॥
यक्षाद्या नायिकाः सर्वाः किन्नर्यश्चामराङ्गनाः ।
अर्चयन्त्यत्र देवेशीं, पञ्चतत्त्वादिभिः पराम् ॥ १४ ॥

यहाँ (= भारतवर्ष में) अन्य भी पीठ हैं इसमें सन्देह नहीं । इन पीठों में देवता, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, प्रमथ आदि, यक्ष आदि और उनकी सब नायिकायें, किन्नरियाँ, देवताओं की स्त्रियाँ पञ्चतत्त्व आदि से परा देवी की पूजा करती रहती हैं ॥ १३-१४ ॥

वाराणस्यां सदा पूज्या, शीघ्रं तु फलदायिनी।
ततस्तु द्विगुणा प्रोक्ता, पुरुषोत्तमसन्निधौ ॥ १५ ॥
ततो हि द्विगुणा प्रोक्ता, द्वारावत्यां विशेषतः ।
नास्ति क्षेत्रेषु तीर्थेषु, पूजा द्वारावती समा ॥ १६ ॥

वाराणसी में यह सदा पूजनीय है । वहाँ यह शीघ्र फल प्रदान करती हैं । उससे दो गुना फल पुरुषोत्तम तीर्थ में पूजा करने से मिलता है । द्वारावती

(= द्वारिका) में की गयी पूजा उससे भी ज्यादा दो गुना फल प्रदान करने वाली कही गयी है । अन्य क्षेत्रों और तीर्थों में, द्वारिका में की गयी पूजा के समान पूजा नहीं होती ॥ १५-१६ ॥

विन्ध्येऽपि षड्गुणा प्रोक्ता, गङ्गायामपि तत्समा ।
आर्यावर्ते मध्यदेशे, ब्रह्मावर्ते तथैव च ॥ १७ ॥
विंध्यवत् फलदा प्रोक्ता, प्रयागे पुष्करे तथा ।
एतच्च द्विगुणं प्रोक्तं, करतोयानदीजले ॥ १८ ॥

विन्ध्याचल में की गयी पूजा छह गुना (महत्त्व वाली) कही गयी है । गङ्गा में भी की गयी पूजा वैसी ही है । आर्यावर्त्त, मध्यप्रदेश और ब्रह्मावर्त्त में भी सम्पन्न की गयी पूजा विन्ध्यपूजा के समान फल देती है । प्रयाग और पुष्कर तथा करतोया नदी के जल में की गयी पूजा का फल भी दो गुना बतलाया गया है ॥ १७-१८ ॥

ततश्चतुर्गुणं प्रोक्तं नदीकुण्डे च भैरवे ।
एतच्चतुर्गुणं प्रोक्तं वल्मीकेश्वरसन्निधौ ॥ १९ ॥
यत्र सिद्धेश्वरी योनौ, ततोऽपि द्विगुणा स्मृता ।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता लौहित्यनदपयसि ॥ २० ॥

नन्दीकुण्ड और भैरवकुण्ड में की गयी पूजा का पूर्व पूजा की अपेक्षा चार गुना फल मिलता है। उससे भी चतुर्गुण फल बल्मीकेश्वर में मिलता है । जहाँ योनि में सिद्धेश्वरी देवी स्थित है वहाँ की पूजा पूर्व पूजा से दो गुनी कही गयी है । लोहित (= शोणभद्र) नदी के जल में की गयी पूजा उससे चतुर्गुण फल देने वाली है ॥ १९-२० ॥

तत्समा कामरूपे च सर्वत्रैव जले स्थले ।
देवीपूजा तथा शस्ता, कामरूपे सुरालये ॥ २१ ॥
देवीक्षेत्रे कामरूपं, विद्यते नहि तत्समम् ।
सर्वत्र विद्यते देवी, कामरूपे गृहे गृहे ॥ २२ ॥

कामरूप में जल और स्थल में सर्वत्र कहीं भी की गयी पूजा पूर्व पूजाओं के समान फल देती है । कामरूप में मन्दिर में की गयी पूजा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कही गयी है । देवीक्षेत्र में कामरूप (= इच्छानुसार रूपपरिवर्त्तन) रहता है । इसलिये उसके समान कोई भी क्षेत्र नहीं है । क्योंकि कामरूप में घर-घर में देवी विराजमान रहती है ॥ २१-२२ ॥

ततश्चतुर्गुणं प्रोक्तं, कामाख्या योनिमण्डलम् ।
कामाख्यायां महामाया, सदा तिष्ठति निश्चितम् ॥ २३ ॥

कामरूपक्षेत्र की अपेक्षा कामाख्यायोनिमण्डल चतुर्गुण फल देने वाला है । कामाख्या में महामाया निश्चित रूप से सदा रहती है ॥ २३ ॥

एषु स्थानेषु देवेशि ! यदि दैवात् गतिर्भवेत् ।
जप पूजादिकं कृत्वा, नत्वा गच्छेत् यथा सुखम् ॥ २४ ॥

हे देवेशि ! यदि संयोग वश कोई व्यक्ति इन स्थानों में पहुँच जाय तो वहाँ (देवी मन्त्र का) जप, पूजन और नमस्कार करने के बाद अभीष्ट स्थान को जाना चाहिये ॥ २४ ॥

स्त्रीसमीपे कृता पूजा, जपश्चैव वरानने ! ।
कामरूपाच्छतगुणं, फलं हि समुदीरितम् ॥ २५ ॥
अत एव महेशानि ! संहतिर्योषितां प्रिये ! ।
गृहीत्वा रक्तवसनां, दुष्टां तु वर्जयेत् सुधीः ॥ २६ ॥

हे वरानने ! स्त्री के समीप की गयी पूजा और जप का फल कामरूप (में विहित पूजा और जप) की अपेक्षा सौ गुना फल देता है । इसलिये हे महेशानि ! हे प्रिये ! (यज्ञादि अनुष्ठानों में) स्त्रियों का साथ विहित है । (पूजा के समय रक्तवस्त्र धारण करने वाली स्त्री को साथ में) लेकर (पूजा करनी चाहिये) विद्वान् भक्त दुष्ट स्त्री को साथ में न ले ॥ २५-२६ ॥

एकनित्यादिपीठे वा, श्मशाने वरवर्णिनि ! ।
स्त्रीरूपे हि सदा सन्ति, पीठेऽन्यत्रापि च प्रिये ! ॥ २७ ॥
स्त्र्यङ्गेषु च महामाया, जागर्ति सततं शिवे ! ।
देहपीठं महापीठं प्रत्यक्षं दिव्यरूपिणि ॥ २८ ॥

हे वरवर्णिनि ! एकनित्या आदि पीठ में या श्मशान में, स्त्रीरूप में, अन्यत्र पीठ में भी (देवी) सदा रहती है । हे शिवे ! स्त्रियों के अङ्गों में महामाया सदा जाग्रत रहती है । हे दिव्यरूपिणि ! (स्त्रीरूपी) देह-पीठ प्रत्यक्ष महापीठ है ॥ २७-२८ ॥

भ्रान्त्याऽन्यत्र भ्रमन्ति ये, देशे देशे च मानवाः ।
पशवस्ते (वृषाः सिंहाः शूकराश्च) यथानघे ! ॥ २९ ॥

हे अनघे ! जो मनुष्य (स्त्रीदेहपीठ को छोड़ कर) भ्रमवश अन्य स्थानों में भ्रमण करते हैं वे (बैल सिंह और सूअर के) समान पशु ही हैं ॥ २९ ॥

कालीमूर्तिर्यत्र निर्जने विपिने कान्तारे वापि ।
कृष्णाष्टमीनिशाभागे कालीं सम्पूज्य पञ्च(भिः) ॥ ३० ॥
गुटिकाखड्गसिद्धिं च खेचरीसिद्धिमेव च ।

यक्षगन्धर्वनागानां नायिकानां महेश्वरि ! ॥ ३१ ॥
भूतवेतालदेवानां कन्यानां सिद्धिमेव च ।
जायते परमेशानि ! किं पुनः कथयामि ते ! ॥ ३२ ॥
पञ्चतत्त्वविहीनानां सर्वं निष्फलता व्रजेत् ॥ ३३ ॥

॥ इति कामाख्यातन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे सिद्धपीठस्थानवर्णननामा एकादशः पटलः ॥ ११ ॥

निर्जन स्थान, वन, घने जङ्गल में जहाँ कहीं भी काली की मूर्त्ति हो वहाँ कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को रात्रि में पञ्चतत्त्व से पूजा करने पर गुटिका-सिद्धि, खड्गसिद्धि, खेचरी सिद्धि तथा यक्ष गन्धर्व नाग नायिका भूत वेताल देव कन्या की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥

हे परमेशानि ! तुमसे अधिक क्या कहूँ । पञ्चतत्त्व से रहित लोगों का सब किया कराया निष्फल हो जाता है ॥ ३०-३३ ॥

कामाख्यातन्त्र के शिवपार्वतीसंवाद में सिद्धपीठस्थानवर्णन नामक ग्यारहवें पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदी कृत ज्ञानवती नामक हिन्दी टीका सम्पूर्ण हुई ॥ ११ ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

परिशिष्टम्—१

कालिकापुराणस्य एकपञ्चाशोऽध्यायतः

मुनिरुवाच—

शृणु त्वं कथयाम्यद्य यत्र चाराधितो हरः ।
न चिरादेव भवतोरायास्यति समक्षताम् ॥ १ ॥
नित्यं यत्र महादेवो वसन् भवति तुष्टये ।
युवां तत् संप्रवक्ष्यामि स्थानं गुह्यं प्रकाशितम् ॥ २ ॥

मुनि ने कहा—तुम (= वेताल) सुनो । मैं (तुम्हें वह स्थान बतलाऊँगा) जहाँ पर आराधना करने पर भगवान् शङ्कर शीघ्र ही आप दोनों (वेताल और भैरव) के समक्ष प्रकट हो जायेंगे । जहाँ पर महादेव (लोगों की) तुष्टि के लिये नित्य निवास करते हैं उस गुह्य और प्रकाशित स्थान को तुम दोनों को बतलाऊँगा ॥ १-२ ॥

वाराणसी नाम पुरी गङ्गातीरे मनोहरे ।
वरणायास्तथा चासेर्मध्ये चापाकृतिः सदा ॥ ३ ॥
स्वयं वृषध्वजस्तत्र नित्यं वसति योगिनाम् ।
सदा प्रीतिकरो योगी स्वयं चाप्यात्मचिन्तकः ॥ ४ ॥
वियत्स्था सा पुरी नित्यं भर्गयोगबलाद् धृता ।
दिव्यज्ञानं ददात्येषा तत्र यो म्रियते नरः ॥ ५ ॥
तस्मै स्वयं महादेवः संसारग्रन्थिमुक्तये ।
स भूत्वा परमो योगी मृतस्तत्र भवान्तरे ॥ ६ ॥

सुलभेनैव निर्वाणमाप्नोति हरसम्मतः ।
योगयुक्तो महादेवः पार्वत्या सहितः सदा ॥ ७ ॥

मनोहर गङ्गातीर पर वाराणसी नगरी वरुणा और अस्सी के बीच में धनुष के आकार में स्थित है । उसमें वृषध्वज स्वयं नित्य निवास करते हैं । वे योगियों को आनन्द देने वाले, स्वयं योगी और आत्मचिन्तन करने वाले हैं । यह पुरी आकाश में स्थित है और भर्ग (= शिव) के अपने योग के बल से स्थिर है । वह दिव्य ज्ञान देती है । जो व्यक्ति वहाँ मरता है स्वयं महादेव संसारबन्धन से मुक्ति के लिये उसको (ज्ञान देते हैं) । मरने के बाद वह जन्मान्तर में परम योगी होता है और हरसम्मत होकर सरलता से निर्वाण प्राप्त करता है । यहाँ महादेव पार्वती के साथ नित्य योगयुक्त रहते हैं ॥ ३-७ ॥

देवगन्धर्वयक्षाणां मानुषाणां च नित्यशः ।
ज्ञेयो हरः प्रकाशश्च क्षेत्रं तच्च प्रशासितम् ॥ ८ ॥
न तत्र कामदो देवो नचिराच्च प्रसीदति ।
आराधितश्चिरं प्रीत्या निर्वाणाय प्रसीदति ॥ ९ ॥
गौर्या विवर्जिता सा तु पुरी तत्र न गच्छति ।
योगस्थानं महाक्षेत्रं कदाचिदपि शाङ्करी ॥ १० ॥
आसन्नं युवयोः क्षेत्रमिदं वाराणसी तु यत् ।
कथितं नातिदूरे च वर्तते नरसत्तमौ ॥ ११ ॥

देवता गन्धर्व यक्ष और मनुष्यों के लिये भगवान् शङ्कर नित्य ज्ञेय हैं । वे प्रकाशस्वरूप हैं और (वह वाराणसी) क्षेत्र उनके द्वारा प्रशासित है । वहाँ कामदेव का प्रभाव नहीं है और भगवान् शिव शीघ्र प्रसन्न होते हैं । बहुत दिनों तक प्रेमपूर्वक आराधना किये जाने पर निर्वाण के लिये प्रसन्न होते हैं । वह पुरी गौरी से रहित है । चूँकि वह महाक्षेत्र योगस्थान है इसलिये शाङ्करी वहाँ कभी भी नहीं जाती । जो यह वाराणसी क्षेत्र है वह तुम दोनों के निकट है । हे नरसत्तम ! यह बहुत दूर नहीं कहा गया है ॥ ८-११ ॥

अपरं तु प्रवक्ष्यामि गुह्यं पीठं सदार्चितम् ।
हरगौरीसमायुक्तं परं धर्मार्थकामदम् ॥ १२ ॥
तपसा चातितीव्रेण चिराद् भवति मोक्षदम् ।
नाचिरात् कामदं पुण्यं क्षेत्रं पीठं निगद्यते ॥ १३ ॥
चिरात् तु कामदो देवो न चिराद् यत्र ज्ञानदः ।
तत् क्षेत्रमिति लोकेषु गद्यते पूर्वबन्दिभिः ॥ १४ ॥
कामरूपं महापीठं गुह्याद् गुह्यतमं परम् ।

सदा सन्निहितस्तत्र पार्वत्या सह शङ्करः॥ १५ ॥
नचिरात् पूजितो देवस्तस्मिन् पीठे प्रसीदति ।
पार्वती चानुगृह्णाति भर्गभक्तं तु तत्र वै॥ १६ ॥

अब मैं दूसरा सदा पूजित गुह्य पीठ बतलाऊँगा जो कि हरगौरी से युक्त परम धर्म अर्थ काम को देने वाला कहा गया है । और बहुत काल तक तीव्र तपस्या के द्वारा मोक्ष भी प्रदान करता है । जो शीघ्र ही इच्छाओं को पूरा कर दे किन्तु अतितीव्र तपस्या के द्वारा विलम्ब से ज्ञान दे उसको पीठ कहा जाता है । जहाँ परमेश्वर इच्छा की पूर्त्ति देर से करे और ज्ञान शीघ्र दे दें वह लोक में पूर्व विद्वानों के द्वारा क्षेत्र कहा जाता है । इस प्रकार कामरूप एक महापीठ है। यह गुह्य से भी गुह्यतम है । वहाँ शङ्कर पार्वती के साथ नित्य सन्निहित रहते हैं । वहाँ पूजित होने पर देव शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं और पार्वती भर्ग (= शिव) के भक्त पर अनुग्रह करती हैं ॥ १२-१६ ॥

ददाति नाचिरात् कामं भक्ताय परमेश्वरः ।
तत् तु पीठं प्रवक्ष्यामि शृणुतं साम्प्रतं युवाम्॥ १७ ॥
करतोया नदी पूर्वं यावद् दिक्करवासिनीम् ।
त्रिंशद् योजनविस्तीर्णं योजनैकशतायतम् ॥ १८ ॥
त्रिकोणं कृष्णवर्णं च प्रभूताचलपूरितम् ।
नदीशतसमायुक्तं कामरूपं प्रकीर्तितम् ॥ १९ ॥

मैं अब उस पीठ को बतलाऊँगा जहाँ परमेश्वर भक्त की कामना शीघ्र पूरी करते हैं । तुम दोनों सुनो । वहाँ करतोया नदी पूर्व में दिक्कर (= शिव) तक फैली हुई है । यह क्षेत्र तीस योजन लम्बा और एक सौ योजन चौड़ा है। यह त्रिकोण, काले रङ्ग वाला और पर्वतों से भरा हुआ है । सौ नदियों से युक्त इस पीठ को कामरूप कहा गया है ॥ १७-१९ ॥

शम्भुनेत्राग्निनिर्दग्धः कामः शम्भोरनुग्रहात् ।
तत्र रूपं यतः प्राप कामरूपं ततोऽभवत् ॥ २० ॥
तस्य पीठस्य वायव्यां नैर्ऋत्यां मध्यभागतः ।
ऐशान्यां च तथाग्नेय्यां मध्ये पार्श्वे च शङ्करः॥ २१ ॥
स्वमाश्रमपदं कृत्वा षट्सु स्थानेषु शोभनम् ।
नित्यं वसति तत्रापि पार्वत्या सह नर्मभिः॥ २२ ॥

॥ इति कालिकापुराणस्य एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥

(कालिकापुराण-५१।५९-८०)

शिव की नेत्राग्नि से निर्दग्ध काम पुनः शिव की कृपा से वहाँ अपने रूप को प्राप्त किया इसलिये (वह स्थान) कामरूप हो गया । उस पीठ के वायव्य, नैर्ऋत्य कोण, मध्यभाग, ईशान कोण, अग्नि कोण एवं मध्यपार्श्व इन छह स्थानों में शङ्कर अपना सुन्दर आश्रम बना कर नित्य पार्वती के साथ नर्मक्रीडाओं को करते रहते हैं ॥ २०-२२ ॥

कालिकापुराण के इक्यावनवें अध्याय की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदी कृत ज्ञानवती नामक हिन्दी टीका सम्पूर्ण हुई ॥

परिशिष्टम्—२

कालिकापुराणे द्विषष्टितमेऽध्याये

कामाख्यामाहात्म्यवर्णनम्

भगवानुवाच—

कामार्थमागता यस्मान्मया सार्धं महागिरौ।
कामाख्या प्रोच्यते देवी नीलकूटे रहोगता ॥ १ ॥

कामाख्या की महिमा का वर्णन—भगवान् ने कहा—चूँकि देवी काम के लिये मेरे साथ महान् नीलकूट पर्वत पर आयी और एकान्त में चली गयी इसलिये वह कामाख्या कही जाती है ॥ १ ॥

कामदा कामिनी कामा कान्ता कामाङ्गदायिनी ।
कामाङ्गनाशिनी यस्मात् कामाख्या तेन चोच्यते ॥ २ ॥

चूँकि वह कामदा, कामिनी, कामा, कान्ता, कामाङ्गदायिनी, कामाङ्गनाशिनी है इसलिये उसे कामाख्या कहा गया है ॥ २ ॥

एतस्याः शृणु माहात्म्यं कामाख्याया विशेषतः ।
या सा प्रकृतिरूपेण जगत्सर्वं नियोजयेत् ॥ ३ ॥
मधुकैटभनाशाय महामायाविमोहितः ।
यदा संयुयुधे विष्णुस्तदैषामोहयद्धरिम् ॥ ४ ॥

अब इस कामाख्या का विशेष माहात्म्य सुनो । यह प्रकृति के रूप में समस्त संसार का नियोजन करती है । मधु और कैटभ के नाश के लिये महामाया के द्वारा विमोहित विष्णु जब (उनके साथ) युद्ध किये तब इसने हरि को मोहित किया ॥ ३-४ ॥

दैनन्दिने तु प्रलये प्रसुप्ते गरुडध्वजे ।
तस्य श्रवणविड्जातावसुरौ मधुकैटभौ ॥ ५ ॥
कूर्मपृष्ठे स्थिता पृथ्वी विशीर्णेवाभवज्जलैः ।
तां विशीर्णां योगनिद्रा महामाया व्यलोकयत् ॥ ६ ॥
तां वै दृढतरां पृथ्वीं कर्तुं प्रति तदेश्वरी ।
उपायं चिन्तयामास कथं पृथ्वी भवेद् दृढा ॥ ७ ॥
इदानीमाज्यवत् पृथ्वी प्रवृत्ता कोमला जलैः ।
सृष्टिकाले जनान् सोढुं कथं शक्ता भविष्यति ॥ ८ ॥
इति संचिन्त्य सा माया जगतां सृष्टिरूपिणी ।
उपागम्य तदा विष्णुमाससाद सुनिद्रितम् ॥ ९ ॥
तं तु सुप्तं समासाद्य जगन्नाथं जगत्पतिम् ।
वामहस्तकनिष्ठाग्रं तस्य कर्णे न्यवेशयत् ॥ १० ॥

गरुडध्वज के सुप्त होने पर जब (विष्णु का) दैनन्दिन प्रलय उपस्थित हुआ तब उनके कर्णमल से मधु और कैटभ नामक दो असुर उत्पन्न हुए । उस समय पृथिवी कूर्म की पीठ पर स्थित थी और जल (के थपेड़ों) से विशीर्ण जैसी हो चली थी । योगनिद्रा महामाया ने जब उसको विशीर्ण देखा तो उसको दृढतर करने के लिये उस समय ईश्वरी ने उपाय सोचा कि यह पृथ्वी कैसे दृढ़ हो । इस समय जल के द्वारा यह पृथिवी घी के समान कोमल हो गयी है तो सृष्टि के समय लोगों का वहन करने के लिये वह कैसे कठोर बनेगी । ऐसा सोचकर जगत् की सृष्टिरूपिणी वह माया सुनिद्रित विष्णु के पास आयी । वहाँ जगत्पति जगन्नाथ को सोया हुआ पाकर उनके कान में अपने बायें हाथ की कनिष्ठा का अग्रभाग प्रविष्ट करा दिया ॥ ५-१० ॥

निवेश्य नखराग्रेण प्रोद्धृत्य श्रावणं मलम् ।
चूर्णीचकार सा देवी योगनिद्रा जगत्प्रसूः ॥ ११ ॥
तत्कर्णमलचूर्णेभ्यो मधुर्नामासुरोऽभवत् ।
ततो दक्षिणहस्तस्य कनिष्ठाग्रं तु दक्षिणे ॥ १२ ॥
कर्णे न्यवेशयद् देवी तस्मादप्युद्धृतं मलम् ।
तच्चापि क्षोदयामास करशाखाद्वयेन तु ॥ १३ ॥
ततोऽभवत् कैटभो नाम बलवान् सोऽसुरो महान् ।
उत्पन्नः स च पानार्थं यस्मान्मृगितवान् मधु ॥ १४ ॥
ततस्तस्य महादेवी मधुनामाकरोत्तदा ।
उत्पन्नः कीटवद् भाति महामायाकरे यतः ॥ १५ ॥
ततोऽस्य कैटभं नाम महामाया तदाकरोत् ।

(अंगुली को) प्रविष्ट कराकर जगत्प्रसू: वह योगनिद्रा अपने नख के अग्रभाग के द्वारा विष्णु के कान की मैल को निकाल कर उसको चूर्णित कर दिया । उस कर्णमल के चूर्ण से मधु नामक राक्षस पैदा हुआ । इसके बाद दायें हाथ की कनिष्ठा के अग्रभाग को विष्णु के दायें कर्ण में निविष्ट कराया । उससे भी मल निकाला गया । देवी ने उसको भी हाथ की दो अंगुलियों से मसल कर चूर्ण कर दिया। इससे कैटभ नामक महाबलवान् असुर उत्पन्न हुआ । चूँकि (पहला राक्षस) उत्पन्न होते ही पीने के लिये मधु की खोज करने लगा इसलिये महादेवी ने उसका नाम मधु रखा । दूसरा उत्पन्न होकर महामाया के हाथ में कीट के समान प्रतीत होने लगा इसलिये महामाया ने उसका नाम कैटभ (कीटाभ से कैटभ) रखा ॥ ११-१६- ॥

तावुवाच महामाया युध्यतां हरिणा सह ॥ १६ ॥
युवां नो श्रद्धयेवात्र भवन्तौ निहनिष्यति ।
युवां यदा प्रभाषेथे आवां विष्णो वधान भो ॥ १७ ॥
तदैवायं युवां हन्ता नान्यथा हरिरप्यथ ।
महामायामोहितौ तौ विष्णुगात्रं तदा गतौ ॥ १८ ॥

महामाया ने उन दोनों से कहा—'तुम दोनों भगवान् के साथ युद्ध करो । (भगवान् विष्णु) तुम दोनों को अपनी श्रद्धा (= इच्छा) से नहीं मारेंगे । तुम दोनों जब कहोगे कि हे विष्णो ! हम दोनों का वध करो तभी यह भगवान् विष्णु तुम दोनों के घातक होंगे अन्यथा नहीं । तब वे दोनों महामाया के द्वारा विमोहित होकर विष्णु के शरीर के पास गये ॥ -१६-१८ ॥

भ्रममाणौ ददृशतुर्नाभिपद्मोत्थितं विधिम् ।
तमूचतुस्तौ धातारं हनिष्यावोऽद्य त्वामिह ॥ १९ ॥
तं जागरय वैकुण्ठं यदि जीवितुमिच्छसि ।
ततो ब्रह्मा महामायां योगनिद्रां जगत्प्रसूम् ॥ २० ॥
प्रसादयामास तदा स्तुतिभिर्बहुभिर्भयात् ।
चिरं स्तुताथ सा देवी ब्रह्मणा जगदात्मना ॥ २१ ॥
प्रसन्ना तरसा व्यग्रमुवाच च यथाविधि ।
किमर्थं संस्तुता चाहं किं करिष्याम्यहं तव ॥ २२ ॥
तद् वद त्वं महाभाग करिष्याम्यहमद्य ते ।

घूमते हुये उन दोनों ने (विष्णु की) नाभि से निकले हुए कमल पर बैठे ब्रह्मा को देखा । उन दोनों ने ब्रह्मा से कहा—हम दोनों आज तुम्हारा वध कर देंगे। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो उस विष्णु को जगाओ । इसके बाद ब्रह्मा ने भय के कारण जगत्प्रसविनी महामाया योगनिद्रा को अनेक

स्तुतियों से प्रसन्न किया । जगदात्मा ब्रह्मा के द्वारा विधिवत् स्तुति की गयी वह देवी प्रसन्न हुई और व्यग्र होकर बोली—(आपने) मेरी स्तुति क्यों की ? मैं आपके लिये क्या कर सकती हूँ ? हे महाभाग ! आप मुझे वह बताइये जो मैं आपके लिये आज करूँगी ॥ १९-२३- ॥

ततस्तेन महामाया प्रोक्ता धात्रा महात्मना ॥ २३ ॥
प्रबोधय जगन्नाथं यावत्तौ मां हनिष्यतः ।
सम्मोहय दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥ २४ ॥
इत्युक्ता सा तदा देवी ब्रह्मणा जगदात्मना ।
बोधयामास वैकुण्ठं मोहयामास तौ तदा ॥ २५ ॥
ततः प्रबुद्धः कृष्णस्तु ददर्श भयशालिनम् ।
ब्रह्माणं तौ तदा घोरावसुरौ मधुकैटभौ ॥ २६ ॥
ततस्ताभ्यां स युयुधे ह्यसुराभ्यां जनार्दनः ।
नाशकद्धारितुं वीरावसुरौ मधुकैटभौ ॥ २७ ॥
अनन्तोऽपि फणाग्रेण तान्नो धर्तुं क्षमोऽभवत् ।

इसके बाद महात्मा ब्रह्मा ने महामाया से कहा—वे दोनों मेरा वध करें इसके पहले आप भगवान् विष्णु को जगाइये । दुराधर्ष इन दोनों मधु कैटभ को सम्मोहित कीजिये । जगदात्मा ब्रह्मा के द्वारा ऐसा कही गयी उस देवी ने वैकुण्ठ को जगाया और उन दोनों को मोहित कर लिया । इसके बाद जागे हुए कृष्ण (= विष्णु) ने ब्रह्मा को भयभीत देखा और साथ ही मधु कैटभ को भी देखा । इसके बाद उन जनार्दन ने असुरों के साथ युद्ध किया । (विष्णु) उन वीर राक्षसों मधु कैटभ को न हरा सके और अनन्त (= शेषनाग) भी अपने फणों के अग्र भाग से उन दोनों (= राक्षसों) को धारण करने में सक्षम नहीं हुए ॥ -२३-२८- ॥

युध्यमानान् महावीरान् वैकुण्ठं मधुकैटभान् ॥ २८ ॥
अथ ब्रह्मा शिलारूपां स्थितिशक्तिं तदाकरोत् ।
अर्धयोजनविस्तीर्णामर्धयोजनमायताम् ॥ २९ ॥
तस्यां शिलायां गोविन्दो युयुधे नृपसत्तम ।
सह ताभ्यां शिला सा तु प्रविवेश जलान्तरम् ॥ ३० ॥
तस्यां तु शक्त्यां मग्नायां तोये स युयुधे हरिः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धैर्निरन्तरम् ॥ ३१ ॥
यदा वै नाशकद्धन्तुं तौ विष्णुर्जगतां पतिः ।
परां चिन्तां तदावाप विधातापि भयात् ततः ॥ ३२ ॥

जब महावीर वैकुण्ठ उन मधु कैटभ से युद्ध कर रहे थे तब ब्रह्मा ने

स्थिति शक्ति को शिलारूपा बना दिया । यह शिला आधा योजन लम्बी और आधा योजन चौड़ी थी । हे राजन् ! उस शिला के ऊपर गोविन्द उनसे युद्ध करते रहे । वह शिला उन दोनों के साथ पानी के भीतर प्रवेश कर गयी । उस शक्ति के जल में डूब जाने के उपरान्त भगवान् ने (जल में ही) पाँच हजार वर्षों तक बाहुयुद्ध किया । जगत् के पति विष्णु जब उन दोनों को नहीं मार सके तब विष्णु चिन्तित हो गये और भय के कारण विधाता भी अत्यन्त चिन्तित हुए ॥ -२८-३२ ॥

ततस्तावेव तं विष्णुमूचतुर्बलदर्पितौ ।
पुनः पुनर्जगन्मातृमहामायाविमोहितौ ॥ ३३ ॥
तुष्टौ स्वस्त्वन्नियुद्धेन वरं वरय माधव ।
तवेष्टं सम्प्रदास्यावः सत्यमेतद् ब्रुवावहे ॥ ३४ ॥
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा माधवो जगतां पतिः ।
उवाच तौ युवां वध्यौ भवतां मे महाबलौ ॥ ३५ ॥
इति देहि वरं मह्यं दातव्यं यदि विद्यते ।
तौ तदा प्राहतुर्नाशस्त्वत्तो नौ शोभनोऽधुना ॥ ३६ ॥
तत्रावां जहि नो यत्र तोयं सम्प्रति विद्यते ।
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा माधवो जगतां पतिः ॥ ३७ ॥
ब्रह्माणं मां च शीघ्रेण प्राहेदं चात्मसंज्ञया ।
ब्रह्मशक्तिशिलां शीघ्रमुद्धृत्य ध्रियतां यथा ॥ ३८ ॥
तत्र स्थित्वा महाघोरौ हनिष्यामि महाबलौ ।
ततो ब्रह्मा ह्यहं चैव उद्दधार शिलां तु ताम् ॥ ३९ ॥

इसके बाद जगन्माता महामाया से विमोहित तथा बल के कारण दर्पयुक्त वे स्वयं विष्णु से बोले—हे माधव ! तुम्हारे युद्ध से हम दोनों सन्तुष्ट हैं । वर माँगो । हम दोनों तुम्हारा अभिलषित तुम्हें देंगे । इस समय हम सत्य कह रहे हैं । उन दोनों का वह वचन सुन कर जगत्पति माधव ने उन दोनों से कहा कि तुम दोनों महाबली मेरे वध्य हो जाओ । यदि वर देना है तो यह वर मुझे दो । तब उन दोनों ने कहा कि आपके द्वारा हमारी मृत्यु होनी सुन्दर है । हम दोनों को तुम वहाँ मारो जहाँ इस समय जल नहीं है । उन दोनों के उस वचन को सुनकर जगत्पति माधव ने अपने इशारे से मुझे और ब्रह्मा को कहा कि ब्रह्मा की शक्तिशिला को उठाकर पकड़े रहो । उस पर बैठ कर मैं महाघोर और महाबली इन दोनों का वध करूँगा । इसके बाद ब्रह्मा और मैंने उस शिला का उद्धार किया ॥ ३३-३९ ॥

तस्यां मध्ये पूर्वभागे ह्यहं पर्वतरूपधृक् ।

ऊर्ध्वे स्थित्वा शिलां भित्त्वा प्रविवेश रसातलम्॥ ४० ॥
ऐशान्यामभवत् कूर्मः पर्वतश्चाग्रहीच्छिलाम् ।
वायव्यां च तथानन्तो नैर्ऋत्यां च सुरेश्वरी ॥ ४१ ॥
महामाया जगद्धात्री शैलरूपप्रधारिणी ।
आग्नेय्यां च तथा विष्णुरेकरूपेण संस्थितः ॥ ४२ ॥
ब्रह्मशक्तिशिलां गृह्णन् भगवान् परमेश्वरः ।
मध्ये ब्रह्मा त्वहं चैव वराहश्च तथापरः ॥ ४३ ॥

उसके मध्य में पूर्व भाग मे मैं पर्वत का रूप धारण कर ऊपर स्थित होकर शिला को छेद कर रसातल में चला गया । ईशान दिशा में कूर्म था और पर्वत ने शिला को पकड़े रखा । वायव्य कोण में अनन्त और नैर्ऋत कोण में सुरेश्वरी जो कि महामाया जगद्धात्री और शैलरूपधारिणी है, ने पकड़ रखा था । आग्नेयी दिशा में भगवान् परमेश्वर विष्णु अपने एक रूप से स्थित होकर ब्रह्मशक्ति शिला को पकड़े हुए थे । मध्य में ब्रह्मा मैं और वराह पकड़े थे ॥ ४०-४३ ॥

ततो वराहपृष्ठस्य चरमे जगतां पतिः ।
स्थित्वा शिलामवष्टभ्य ब्रह्मशक्तिमधोगताम् ॥ ४४ ॥
वामोरुजघने यत्नादारोप्य शिरसी तयोः ।
जगदाधारभूतः स सर्वयत्नेन संयुतः ॥ ४५ ॥
सर्वैर्बलैः समाक्रम्य चिच्छेद च पृथक् पृथक् ।
मधुकैटभयोः सम्यग् ग्रीवयोः पृथिवीमृते ॥ ४६ ॥

इसके बाद जगत्पति जगदाधारभूत उन भगवान् विष्णु ने वराहपृष्ठ के किनारे बैठकर नीचे गयी हुयी ब्रह्मशक्तिरूपी शिला को पकड़कर बाँयी जाँघ के ऊपर प्रयत्नपूर्वक दोनों के शिरों को रख कर अपना पूरा बल लगा कर मधु कैटभ की ग्रीवायें अलग-अलग भलीभाँति काट डाली किन्तु पृथिवी को बचा लिया ॥ ४४-४६ ॥

तस्य चाक्रमतः स्थेम्ना ब्रह्मशक्तिरधोगता ।
ध्रियमाणापि देवौघैर्यत्नादपि मुहुर्मुहुः ॥ ४७ ॥
ततस्तयोस्तु मृतयोः शरीरे जगतां पतिः ।
ब्रह्मशक्तिं समुद्धृत्य न्यधात् तस्यां प्रयत्नतः॥ ४८ ॥
उद्धृतायां पृथिव्यां तु तयोर्मेदोविलेपनैः ।
सुदृढामकरोत् पृथ्वीं क्लेदितां तोयराशिभिः ॥ ४९ ॥
मेदोविलेपनाद् यस्माद् गीयते मेदिनी च सा ।
अद्यापि पृथिवी देवी देवराक्षसमानुषैः॥ ५० ॥

ब्रह्मशक्ति को यद्यपि देवताओं ने प्रयत्नपूर्वक बार-बार पकड़े रखा था तथापि आक्रमण करने वाले उन विष्णु की स्थिरता के कारण वह नीचे चली गयी । फिर भगवान् ने ब्रह्मशक्ति को प्रयत्नपूर्वक उठाकर मृत उन दोनों के शरीर के ऊपर रख दिया । पृथ्वी का उद्धार करने के बाद जलराशि से कोमल पृथिवी को उन दोनों राक्षसों के मेदा के विलेपन के द्वारा दृढ़ कर दिया । चूँकि मेदा के विलेपन के द्वारा (वह दृढ़ की गयी) इसलिये आज भी देवता मनुष्य और राक्षस इसे मेदिनी कहते हैं ॥ ४७-५० ॥

अथ काले बहुतिथे व्यतीते प्राणिसर्जने ।
अगृह्णां दक्षतनयां भार्यार्थेऽहं वधूं वराम् ॥ ५१ ॥
सा मेऽभूत् प्रेयसी भार्या प्रादाय समयं पितुः ।
अनिष्टकारी त्वं चेत् स्याः प्राणांस्त्यक्ष्ये तदा त्वहम् ॥ ५२ ॥
ततो यज्ञे समस्तांस्तु स च वव्रे चराचरम् ।
न मां नापि सतीं वव्रे तदानिष्टान्मृता तु सा ॥ ५३ ॥

इसके बाद अनेक संवत्सरात्मक काल बीत जाने पर मैंने प्राणियों की सृष्टि के लिये दक्ष की कन्या, जो कि एक उत्तम वधू थी, को पत्नी के रूप में स्वीकार किया । उसने (दक्ष कन्या) पिता से यह वचन लिया कि यदि आप मेरे अनिष्टकारी (= मनोभिलषित के विरुद्ध कार्य करने वाला) होंगे तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी । इसके पश्चात् उस दक्ष ने यज्ञ में समस्त चराचर को बुलाया किन्तु न मुझको और न सती को पूछा । इस अनिष्ट के कारण वह मृत्यु को प्राप्त हो गयी ॥ ५१-५३ ॥

ततो मोहं समाक्रान्तस्तामादाय मृतामहम् ।
प्राप्तः पीठवरं तं तु भ्रममाण इतस्ततः ॥ ५४ ॥
तस्यास्त्वङ्गानि पर्यायात् पतितानि यतो यतः ।
तत् तत् पुण्यतमं जातं योगनिद्राप्रभावतः ॥ ५५ ॥
तस्मिंस्तु कुब्जिकापीठे सत्यास्तद्योनिमण्डलम् ।
पतितं तत्र सा देवी महामाया व्यलीयत ॥ ५६ ॥
लीनायां योगनिद्रायां मयि पर्वतरूपिणि ।
स नीलवर्णः शैलोऽभूत्पतिते योनिमण्डले ॥ ५७ ॥
स तु शैलो महातुङ्गः पातालतलमाविशत् ।
तस्या आक्रमणाद् गाढं ह्यन्तस्थं द्रुहिणो ह्यधात् ॥ ५८ ॥

इसके बाद मोह को प्राप्त हुआ मैं उस मृत (सती की देह) को लेकर इधर-उधर घूमता हुआ इस श्रेष्ठपीठ को प्राप्त हुआ । जहाँ-जहाँ क्रम से उसके अङ्ग गिरते गये योगनिद्रा के प्रभाव से वह-वह स्थान पवित्रतम हो गया । इस

कुब्जिका पीठ में उस सती का योनिमण्डल गिरा और वहीं महामाया देवी लीन हो गयी । पर्वतरूपी मेरे अन्दर योगनिद्रा के लीन होने पर वह पर्वत नीलवर्ण का हो गया । वह अत्यन्त ऊँचा पर्वत योनिमण्डल के गिरने पर पाताल तल में भीतर घुस गया । उस योगनिद्रा के आक्रमण से वह ब्रह्मा के अन्तस्थ में चला गया ॥ ५४-५८ ॥

स तु पूर्वं ब्रह्मशक्तिं शिलां धर्तुं चतुर्मुखः ।
शैलरूपोऽभवत् तेन शैलरूपेण मामधात् ॥ ५९ ॥
ब्रह्मा पर्वतरूपी स मयि पर्वतरूपिणि ।
स शक्त्याऽधोऽगमद् गाढमाक्रान्तो मामया विधेः ॥ ६० ॥
ततो वराहः संसक्तो मयि मां स तु माधवः ।
शैलरूपः शैलरूपं धर्तुं समुपचक्रमे ॥ ६१ ॥

वे चतुर्मुख ब्रह्मा पहले ब्रह्मशक्तिरूपी शिला को धारण करने के लिये शैलरूपी हो गये । उस शैलरूप से उन्होंने मुझको धारण किया । पर्वतरूपी ब्रह्मा पर्वतरूपी मुझमें, मेरी शक्ति से गाढतया आक्रान्त होकर नीचे चले गये । इसके बाद वराह भी मेरे अन्दर संसक्त हो गया । फिर शैलरूपी माधव शैलरूपी मुझको धारण करने का उपक्रम किये ॥ ५९-६१ ॥

सोऽप्यधोऽयान्मया सार्धं तदा पर्वतरूपिणीम् ।
आक्रम्य देवीं पृथिवीं स्थितो भुवि निखानितः ॥ ६२ ॥
शतं शतं योजनानां तुङ्गमासीद् गिरित्रयम् ।
तदाक्रान्तं महादेव्या सर्वमेव ह्यधोगतम् ॥ ६३ ॥
क्रोशमात्रस्थितं तुङ्गशेषं तत्त्रितयस्य तु ।
एका समस्तजगतां प्रकृतिः सा यतस्ततः ॥ ६४ ॥

फिर वे भी मेरे साथ नीचे चले गये । फिर पर्वतरूपिणी पृथिवी को आक्रान्त कर पृथ्वी मे खन कर पर्वत स्थित हो गया । इस प्रकार सौ-सौ योजन के तीन पर्वत शृङ्ग हुए । इसके बाद महादेवी से आक्रान्त होने पर सबके सब नीचे चले गये तीनों का केवल एक कोश का श्रृङ्ग बाहर स्थित रहा । क्योंकि समस्त जगत् की प्रकृति वह एक ही है ॥ ६२-६४ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवैर्देवैर्धृता स जगतां प्रसूः ।
तत्र पूर्वो ब्रह्मशैलः श्वेत इत्युच्यते सुरैः ॥ ६५ ॥
तद्रूपधारी शैलस्तु नील इत्युच्यते तथा ।
स तु मध्यगतः पीठस्त्रिकोणोलूखलाकृतिः ॥ ६६ ॥
विभ्राजमानः सततं मध्ये ब्रह्मवराहयोः ।

वराहः शैलरूपो यः स चित्र इति कथ्यते ॥ ६७ ॥
सर्वेषां संस्थितः पश्चाद् दीर्घः सर्वेभ्य एव तु ।
ऐशान्यां योऽभवत् कूर्मः शैलरूपो महाद्युतिः ॥ ६८ ॥
मणिकर्णः स नाम्ना तु ख्यातो देवौघसेवितः ।

वह जगज्जननी ब्रह्मा विष्णु और शिव देवों के द्वारा धारण की गयी । उनमें से पूर्व में वर्त्तमान श्वेत पर्वत देवताओं के द्वारा ब्रह्मशैल कहा जाता है । उसी प्रकार मेरे (विष्णु के) रूप को धारण करने वाला शैल नीलगिरि कहा जाता है जो कि त्रिकोण और ओखली की आकृति का है वह मध्यगत पीठ है। ब्रह्मा और वराह (= विष्णु) पर्वतों के बीच जो शैलरूप वराह है उसे चित्र कहते हैं । पश्चिम में सबसे बड़ा पर्वत है, ईशान दिशा में महाद्युति शैलरूप कूर्म है वह मणिकर्ण के नाम से विख्यात है । उसमें देवता लोग रहते हैं ॥ ६५-६९- ॥

योऽनन्तरूपः शैलस्तु वायव्यां समवस्थितः ॥ ६९ ॥
मणिपर्वतसंज्ञोऽसौ पर्वतो माधवप्रियः ।
महामाया गिरिर्यस्तु नैर्ऋत्यां समवस्थितः ॥ ७० ॥
स गन्धमादनो नाम्ना सर्वदा शङ्करप्रियः ।
वराहपृष्ठचरमे यतश्छिन्नौ महासुरौ ॥ ७१ ॥
हरिणा तत्र संयातः पाण्डुनाथ इति स्मृतः ।
ब्रह्मशक्तिशिलायास्तु पूर्वभागे तु मध्यतः ॥ ७२ ॥
यस्तु पर्वतरूपोऽहं स तु भस्माचलाह्वयः ।

वायव्य कोण में जो अनन्तरूप शैल स्थित है उसका नाम मणिपर्वत है । वह माधव का प्रिय है । नैर्ऋत दिशा में जो महामाया पर्वत है वह गन्धमादन नाम वाला है और सदा शङ्कर का प्रिय है । चूँकि वराह के पृष्ठ के अन्तिम भाग में वे दोनों महा असुर भगवान् के द्वारा काटे गये थे तो वहाँ उत्पन्न हुआ पर्वत पाण्डुनाथ कहा गया । ब्रह्मशक्ति शिला के पूर्वभाग में बीच में जो मैं पर्वत के रूप में हूँ वह भस्माचल नाम वाला है ॥ -६९-७३- ॥

एवं पुण्यतमे पीठे कुब्जिकापीठसंज्ञके ॥ ७३ ॥
नीलकूटे मया सार्धं देवी रहसि संस्थिता ।
सत्यास्तु पतितं तत्र विशीर्णं योनिमण्डलम् ॥ ७४ ॥
शिलात्वमगमच्छैले कामाख्या तत्र संस्थिता ।
संस्पृश्य तां शिलां मर्त्यो ह्यमरत्वमवाप्नुयात् ॥ ७५ ॥
अमर्त्यो ब्रह्मसदनं तत्स्थो मोक्षमवाप्नुयात् ।
तस्याः शिलाया माहात्म्यं यत्र कामेश्वरी स्थिता ॥ ७६ ॥

अद्भुतं यस्य गुह्ये तु लोहं भस्म भवेद् गतम् ।
सा चापि प्रत्यहं तत्र पञ्चमूर्तिधराभवत् ॥ ७७ ॥
मोहार्थं सर्वलोकानां ममापि प्रीतये शिवा ।
अहं पञ्चमुखेनाशु पञ्चभागे व्यवस्थितः ॥ ७८ ॥

इस प्रकार कुब्जिकापीठ नामक पवित्रतम पीठ नीलकूट में एकान्त में देवी ने मेरे साथ वास किया और सती का जो विशीर्णयोनिमण्डल वहाँ गिरा वह उस पर्वत पर शिला बन गया । वहाँ कामाख्या रहती हैं । उस शिला का स्पर्श कर मनुष्य अमर हो जाता है । अमर होकर उसमें निवास करने वाला मोक्ष को प्राप्त करता है क्योंकि वह ब्रह्मसदन है । जहाँ कामेश्वरी स्थित है उस शिला का माहात्म्य अद्भुत है । जिस ब्रह्मसदन के गुह्य में स्थित भस्म (जैसी तुच्छ वस्तु) भी सोना हो जाता है (अथवा उसके तेज से सोना भी भस्म हो जाता है)। वह कामाख्या भी लोगों को मोहित और मुझको प्रसन्न करने के लिये वहाँ प्रतिदिन पाँच रूप धारण करती है । और मैं पाँचो भागों में पाँच मुख से स्थित रहता हूँ ॥ -७३-७८ ॥

ईशानः पूर्वभागस्थः कामेश्वर्याः प्रधानतः ।
ऐशान्यां वै तत्पुरुषो ह्यघोरस्तस्य सन्निधौ॥ ७९ ॥
सद्योजातोऽथ वायव्यां वामदेवस्तु सङ्गतः ।
देव्याश्चापि नरश्रेष्ठ पञ्चरूपाणि भैरव ॥ ८० ॥
शृणु वेताल गुह्यानि देवैरपि सदैव हि ।
कामाख्या त्रिपुरा चैव तथा कामेश्वरी शिवा॥ ८१ ॥
शारदाथ महालोका कामरूपगुणैर्युता ।

कामेश्वरी के पूर्वभाग में मैं ईशान के नाम से रहता हूँ । ईशान दिशा में तत्पुरुष, उसके पास उत्तर में अघोर नाम से, वायव्य दिशा में सद्योजात और (पश्चिम में) वामदेव के रूप में रहता हूँ । हे नरश्रेष्ठ ! हे भैरव ! देवी के भी पाँच रूप है । उनको सुनो । वेताल गुह्य और देवताओं ने (भी उसे माना है)। वे हैं—कामाख्या, त्रिपुरा, कामेश्वरी, शारदा और महालोका—ये सब कामरूप के गुणों से युक्त हैं ॥ ७९-८२- ॥

मयि लिङ्गत्वमापन्ने शिलायां योनिमण्डले ॥ ८२ ॥
सर्वे शिलात्वमगमञ्छैलरूपाश्च निर्जराः ।
यथाहं निजरूपेण रेमे तैः सह कामया ॥ ८३ ॥
शिलारूपप्रतिच्छन्नास्तथा सर्वास्तु देवताः ।
शिलारूपप्रतिच्छन्नाः शैले शैले व्यवस्थिताः ॥ ८४ ॥
रमन्ते च स्वरूपेण नित्यं रहसि सङ्गताः ।

ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चात्र दिक्पालाः सर्व एव ते ॥ ८५ ॥
अन्येऽप्यत्र स्थिता देवाः सानुकूलाः सदा मयि ।
उपासितुं तदा देवीं कामाख्यां कामरूपिणीम् ॥ ८६ ॥

मैंने जब शिला योनिमण्डल में लिङ्ग का रूप धारण किया तो सभी देवता शैलरूप होकर शिला बन गये । जिस प्रकार मैं अपने रूप (= लिङ्ग रूप) से कामेश्वरी के साथ रमण करता रहा उसी प्रकार वे सभी देवतायें शिलारूप में प्रतिच्छन्न होकर एक-एक पर्वत पर स्थित होकर नित्य एकान्त में अपने समान रूप वाले देवों के साथ रमण करती हैं । ब्रह्मा विष्णु शङ्कर समस्त दिक्पाल और अन्य देवगण यहाँ स्थित होकर सदा मेरे ऊपर अनुकूल रहते है । ये कामरूपिणी कामाख्या की उपासना करते रहते हैं ॥ -८२-८६ ॥

नीलशैलस्त्रिकोणस्तु मध्यनिम्नः सदाशिवः ।
तन्मध्ये मण्डलं चारु त्रिंशच्छक्तिसमन्वितम् ॥ ८७ ॥
गुहा मनोभवा तत्र मनोभवविनिर्मिता ।
योनिस्तस्यां शिलायां तु शिलारूपा मनोहरा ।
वितस्तिमात्रविस्तीर्णा एकविंशाङ्गुलीयुता ॥ ८८ ॥
क्रमसूक्ष्मविनम्रा सा भस्मशैलानुगामिनी ।
महामाया जगद्धात्री मूलभूता सनातनी ॥ ८९ ॥
सिन्दूरकुङ्कुमारक्ता सर्वकामप्रदायिनी ।
तस्यां योनौ पञ्चरूपा नित्यं क्रीडति कामिनी ॥ ९० ॥
तत्राष्टौ योगिनीर्नित्या मूलभूताः सनातनीः ।
पूर्वोक्ताः शैलपुत्र्याद्याः स्थिता देव्याः समन्ततः ॥ ९१ ॥
तासां तु पीठनामानि शृणु चैकत्र भैरव ।

नीलपर्वत त्रिकोण है, बीच में गहरा है । वह सदाशिव है । उसके बीच में तीस शक्तियों से युक्त सुन्दर मण्डल है । वहाँ एक गुफा है जिसका नाम मनोभवा है । वह मनोभव (= कामदेव) द्वारा निर्मित है । उस शिला में शिलारूप एक मनोहर योनि है जो एक वितस्ति (बीता = १२ अंगुल) चौड़ी और इक्कीस अंगुल लम्बी है । वह योनि क्रमशः सूक्ष्म और ढलती हुई भस्मपर्वत की ओर जाती है । उस योनि में जगद्धात्री मूलभूता सनातनी सर्वकामप्रदायिनी महामाया सिन्दूर और कुङ्कुम से आरक्त कामिनी होकर पाँच रूपों में नित्य क्रीड़ा करती रहती है । वहीं पर देवी के चारों ओर मूलभूत सनातनी शैलपुत्री आदि पूर्वोक्त आठ योगिनियाँ स्थित हैं । हे भैरव ! उनके पीठनामों को एकत्र सुनो ॥ ८७-९२- ॥

गुप्तकामा च श्रीकामा तथान्या विन्ध्यवासिनी ॥ ९२ ॥

कोटीश्वरी वनस्था तु पाददुर्गा तथापरा ।
दीर्घेश्वरी क्रमादेव प्रकटा भुवनेश्वरी ॥ ९३ ॥
स्वयोगिन्यः पीठनाम्ना ख्याता अष्टौ च देवताः ।
सर्वतीर्थानि चैकत्र जलरूपाणि भैरव ॥ ९४ ॥
स्थितानि नाम्ना सौभाग्यसरस्यल्पापि पुण्यदा ।
विष्णुस्तु तीरे तस्यास्तु नाम्ना कमल इत्युत ॥ ९५ ॥
कामुकाख्यस्तु बटुकः कामाख्याभ्यर्णसंस्थितः ।
लक्ष्मीःसरस्वती देव्यौ देव्याः सङ्गे व्यवस्थिते ॥ ९६ ॥
ललिताख्याभवल्लक्ष्मीर्मातङ्गी तु सरस्वती ।
गणाध्यक्षः पूर्वभागे तस्य शैलस्य संस्थितः ॥ ९७ ॥
सिद्धः स नाम्ना विख्यातो द्वारे देव्याः प्रियः सुतः ।
कल्पवृक्षः कल्पवल्ली तिन्तिडी चापराजिता ॥ ९८ ॥

वे गुप्तकामा, श्रीकामा, विन्ध्यवासिनी, कोटीश्वरी, वनस्था, पाददुर्गा, दीर्घेश्वरी और भुवनेश्वरी हैं । हे भैरव ! ये योगिनियाँ पीठ नाम से प्रख्यात है (जैसे तुप्तकामापीठ श्रीकामापीठ आदि)। यहाँ आठ देवतायें और समस्त तीर्थ जलरूप में स्थित रहते हैं । उस जलाशय का नाम सौभाग्यसरसी है । वह सरसी छोटी होती हुई भी पुण्यदा है । उसके तट पर भगवान् विष्णु 'कमल' नाम से रहते हैं । वटुक भैरव कामुक नाम से कामाख्या के पास रहते हैं । लक्ष्मी और सरस्वती ये दोनों देवियाँ देवी कामाख्या के साथ व्यवस्थित हैं । लक्ष्मी ललिता और सरस्वती मातङ्गी बन गयी । उस पर्वत के पूर्वभाग में गणेश रहते हैं । वह सिद्ध नाम से विख्यात हैं । देवी के प्रियपुत्र वे द्वार पर स्थित हैं । कल्पवृक्ष कल्पवल्ली और अपराजिता तिन्तिडी होकर उस महाशैल पर स्थित हैं ॥ -९२-९८ ॥

भूत्वा तस्मिन् महाशैले स्थितौ देव्या धृतः प्रिये ।
वराहः पाण्डुनाथाख्यः स्थितस्तत्र हरिर्यतः ॥ ९९ ॥
जघने शिरसी कृत्वा जघान मधुकैटभौ ।
तस्यासन्ने ब्रह्मकुण्डं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥ १०० ॥
ईशानाख्यः शिवो यत्र तत् सिद्धेश्वरसंज्ञकम् ।
शिलारूपं सिद्धकुण्डं मध्यस्थं विद्धि भैरव ॥ १०१ ॥
तस्यासन्ने गयाक्षेत्रं क्षेत्रं वाराणसी तथा ।
योनिमण्डलसङ्काशं कुण्डं भूत्वा व्यवस्थितम् ॥ १०२ ॥

देवी के द्वारा पकड़ा गया वराह पाण्डुनाथ के नाम से वहाँ स्थित हैं जहाँ पर भगवान् ने अपनी जाँघ पर शिरों को रखकर मधु कैटभ का वध

किया था । उसके पास प्राचीन काल में ब्रह्मा के द्वारा निर्मित ब्रह्मकुण्ड है । जहाँ ईशान नामक शिव रहते हैं वहीं सिद्धेश्वर नामक कुण्ड है । हे भैरव ! उसके बीच में स्थित शिलारूप सिद्धकुण्ड जानो । उसके पास गया क्षेत्र और वाराणसी क्षेत्र स्थित है । ये दोनों क्षेत्र योनिमण्डल के समान कुण्ड हो कर (= के रूप में) स्थित हैं ॥ ९९-१०२ ॥

तत्रैवामृतकुण्डं तु सुधासङ्घप्रपूरितम् ।
मम प्रियार्थमिन्द्रेण स्थापितं सह निर्जरैः ॥ १०३ ॥
वामदेवाह्वयं शीर्षं श्रीकामेश्वरसंज्ञकम् ।
कामकुण्डं महापुण्यं तस्यासन्ने व्यवस्थितम् ॥ १०४ ॥
केदारसंज्ञकं क्षेत्रं मध्यस्थं सिद्धकामयोः ।
दीर्घं चतुर्दशव्यामच्छायाच्छत्राह्वयं तु तत् ॥ १०५ ॥
तस्यासन्ने शैलपुत्री गुप्तकामाह्वया तु सा ।
गुप्तकुण्डस्य मध्यस्था कामेशग्राव्णि सङ्गता ॥ १०६ ॥
कामेश्वरशिलासक्ता कामाख्यासंज्ञिता सदा ।
पूर्वभागेण संसक्ता योनेस्तु परमार्गतः ॥ १०७ ॥

वहीं पर सुधासमूह से भरा हुआ अमृत कुण्ड है जिसे इन्द्र ने देवताओं के साथ मेरे सुख के लिये स्थापित किया था । उसके पास महापवित्र कामकुण्ड है । उस शिला का नाम श्रीकामेश्वर है उसकी चोटी का नाम वामदेव है । सिद्धकुण्ड और कामकुण्ड के बीच केदार नामक क्षेत्र है । वह चार योजन लम्बा और दश योजन चौड़ा है । उसका नाम छायाछत्र है । उसके पास शैलपुत्री स्थित हैं । वहाँ उसका नाम गुप्तकामा है । वह गुप्तकुण्ड के मध्य में स्थित है और कामेश्वर शिला से जुड़ी है । कामेश्वर शिला से जुड़ी कामाख्या नामक शिला है जो योनि के पूर्वभाग से जुड़ी है ॥ १०३-१०७ ॥

कामकामाख्ययोर्मध्ये कालरात्रिर्व्यवस्थिता ।
पीठे दीर्घेश्वरी नाम्ना सीमाभागे ह्यवस्थिता ॥ १०८ ॥
कामाख्याप्रस्तरप्रान्ते कूष्माण्डी नाम योगिनी।
पीठे कोटीश्वरी नाम्ना योनिरूपेण संस्थिता ॥ १०९ ॥
यच्चाघोराह्वयं शीर्षं तत्कामायास्तु दक्षिणे ।
पीठे भैरवनामा तु गदिते परमार्थिभिः ॥ ११० ॥
चामुण्डा भैरवी नाम्ना भैरवासन्नसंस्थिता ।
नायिका कामदा भक्तेश्चण्डमुण्डविनाशिनी ॥ १११ ॥
कामाभैरवयोर्मध्ये स्वयं देवी सुरापगा ।
हिताय सर्वजगतां देव्यास्तु प्रीतये सदा ॥ ११२ ॥

कामेश्वर और कामाख्या के बीच में पीठ में कालरात्रि स्थित हैं । सीमा भाग में दीर्घेश्वरी स्थित है । कामाख्या शिला के प्रान्त में कूष्माण्डी नामक योगिनी है । पीठ में कोटीश्वरी है जो योनिरूप में स्थित है । जो अघोर नामक चोटी या शिर है वह कामाख्या के दक्षिण में है । पीठ में परमार्थ के ज्ञाताओं ने भैरव की स्थिति मानी है । चामुण्डा भैरवी के नाम से भैरव के पास स्थित हैं । चण्डमुण्डविनाशिनी वह भक्तों की इच्छा पूरी करती है । कामा और भैरव के मध्य देवी सुरापगा (= गङ्गा) संसार के हित एवं देवी की प्रसन्नता के लिये स्वयं स्थित है ॥ १०८-११२ ॥

सद्योजाताह्वयं शीर्षं पीठे त्वाम्रातकेश्वरम् ।
भैरवाख्ये गह्वरे तु स्थितं देवर्षिसेवितम् ॥ ११३ ॥
विद्धि तत्रैव दुर्गाख्यां नायिकां योगरूपिणीम्।
सिद्धकामेश्वरीनाम्ना ख्याता देवेषु नित्यशः ॥ ११४ ॥
अजीर्णपत्रः सुच्छायो वृक्षस्तत्र सुसंस्थितः ।
आम्रातकः कल्पवृक्षः कल्पवल्लीसमन्वितः॥ ११५ ॥
पीठे तु सिद्धगङ्गाख्या स्वयं गङ्गा समुत्थिता ।
आम्रातकस्य निकटे मम प्रीतिविवृद्धये ॥ ११६ ॥

पीठ में सद्योजात नामक चोटी या (मेरा) शिर है । वहाँ भैरव नामक गुफा में आम्रातकेश्वर पीठ स्थित है जो देवताओं और ऋषियों के द्वारा सेवित है । वहाँ योगरूपिणी नायिका दुर्गा को स्थित जानो जो देवताओं के बीच सदा सिद्धकामेश्वरी के नाम से विख्यात हैं । वहाँ आम्रातक नामक कल्पवृक्ष कल्पवल्ली के साथ स्थित है । उसके पत्ते कभी जीर्ण नहीं होते और छाया प्रभूत रहती है। उसी पीठ में गङ्गा स्वयं सिद्धगङ्गा के नाम से विख्यात हैं । वह मेरी प्रसन्नता की वृद्धि के लिये आम्रातक के निकट बहती है ॥ ११३-११६॥

पुष्कराख्यं तु तत्क्षेत्रं पीठे त्वाम्रातकाह्वयम् ।
ऐशान्यां तत्पुरुषाख्यं मम शीर्षं व्यवस्थितम् ॥ ११७ ॥
भुवनेश्वरनाम्ना तु पीठे ख्यातं च भैरव ।
गह्वरं भुवनेशस्य भुवनानन्दसंज्ञकम् ॥ ११८ ॥
तस्यासन्ने तु सुरभिः शिलारूपेण संस्थिता ।
कामधेनुरिति ख्याता पीठे कामप्रदायिनी ॥ ११९ ॥

इसी पीठ में पुष्कर नामक क्षेत्र है जिसे आम्रातक कहा जाता है । पीठ की ईशान दिशा में तत्पुरुष नामक मेरा शिर स्थित है । हे भैरव ! पीठ में यह शिखर भुवनेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है । भुवनेश्वर की गुफा का नाम भुवनानन्द है । उसके पास सुरभि गाय शिवारूप में स्थित है । कामदायिनी वह

उस पीठ पर कामधेनु के नाम से प्रसिद्ध है ॥ ११७-११९ ॥

योऽसौ शरभमूर्तिर्मे मध्यखण्डप्रचण्डकः ।
महाभैरवनामाभूत् कोटिलिङ्गाह्वयस्तु सः ॥ १२० ॥
मूर्तिभिः पञ्चभिः पञ्चभागेषु समवस्थितः ।
अहं पश्चादतिप्रीत्या भैरवाख्यः स्थितो धरे॥ १२१ ॥
महागौरी तु या देवी योगिनी सिद्धरूपिणी।
सा ब्रह्मपर्वते चास्ते शिलारूपेण चोर्ध्वतः॥ १२२ ॥
अतीव रूपसम्पन्ना नाम्ना सा भुवनेश्वरी ।
यत्र ब्रह्मा तु संसक्तो मयि पर्वतरूपिणि ॥ १२३ ॥
कल्पवल्ली तु तत्रास्ते नाम्ना सा त्वपराजिता ।
कामधेनुरदूरस्था पूर्वभागे महेश्वरी ॥ १२४ ॥

मध्य खण्ड में प्रचण्ड जो यह मेरी शरभमूर्त्ति है यह महाभैरव के नाम से विख्यात है । इसका पूर्वनाम कोटिलिङ्ग है । मैं इस पर्वत के पाँच भागों में पाँच मूर्त्तियों के द्वारा स्थित हूँ । हे पृथिवि ! बाद में अत्यन्त प्रसन्नता के कारण इस पर्वत पर भैरव के नाम से स्थित हुआ हूँ । जो सिद्धरूपिणी योगिनीदेवी महागौरी है वह ब्रह्मपर्वत पर ऊपर शिला के रूप में विराजमान है। अत्यन्त रूप-सम्पन्न वह भुवनेश्वरी के नाम से जानी जाती है । जहाँ पर्वतरूपी मुझमें ब्रह्मा संसक्त हैं वहीं अपराजिता नामक कल्पलता भी है । पास में ही पूर्वभाग में महेश्वरी नामक कामधेनु है (अथवा हे महेश्वरि ! पास में ही पूर्वभाग में कामधेनु स्थित है ।) ॥ १२०-१२४ ॥

श्रीकामाख्या योनिरूपा चण्डिका सा तु योगिनी ।
आग्नेय्यां विद्धि तां संस्थां सर्वकामप्रदां शुभाम् ॥ १२५ ॥
योगिनी चन्द्रघण्टाख्या पीठेऽभूद् विन्ध्यवासिनी ।
योगिनी स्कन्दमाता तत्पीठेऽभूद् वनवासिनी ॥ १२६ ॥
कात्यायनी पीठनाम्ना पाददुर्गेति गद्यते ।
नैर्ऋत्यां नीलशैलस्य प्रान्ते सा संस्थिता शिवा ॥ १२७ ॥
योऽसौ नन्दी मम तनुः स तु पाषाणरूपधृक् ।
संस्थितः पश्चिमद्वारि हनुमान्पीठनामतः ॥ १२८ ॥

श्रीकामाख्या देवी योनिरूपा है । वह चण्डिका योगिनी है । सर्वकामप्रदा शुभा उस देवी को आग्नेयी दिशा में स्थित जानना चाहिये । पीठ पर चन्द्रघण्टा विन्ध्यवासिनी बन गयी । स्कन्दमाता उस पीठ पर वनवासिनी हो गयी । कात्यायनी का पीठनाम पाददुर्गा कहा जाता है । वह शिवा नीलपर्वत के एक देश में नैर्ऋत्य दिशा में स्थित है । जो यह नन्दी मेरी शरीर का ही

रूप है, वह पत्थर का रूप धारण कर पश्चिम द्वार पर हनुमान्पीठ नाम से स्थित है ॥ १२५-१२८ ॥

औौर्व उवाच—

इति तस्य वचः श्रुत्वा शम्भोरमिततेजसः ।
भैरवस्तं तु पप्रच्छ वेतालोऽपि समुत्सुकः ॥ १२९ ॥

राजा औौर्व ने कहा—अमित तेजस्वी शिव के इस वचन को सुनकर भैरव और वेताल ने समुत्सुक होकर पूछा ॥ १२९ ॥

वेतालभैरवावूचतुः—

श्रुतः पीठक्रमस्तात देव्याः पूजाक्रमस्तथा ।
श्रोतुमिच्छामि मूर्तीनां पञ्चानामपि शङ्कर ॥ १३० ॥
रूपाणि पञ्चमूर्तीनां मन्त्राणि च समन्ततः ।
तत्र मन्त्राणि तन्त्राणि वद नौ वृषभध्वज ॥ १३१ ॥

वेताल और भैरव ने कहा—हे तात ! मैंने पीठक्रम और कामाख्या देवी के पूजाक्रम को सुना । हे शङ्कर ! अब हम पाँच मूर्त्तियों के विषय में सुनना चाहते हैं । हे वृषभध्वज ! उनकी पाँच मूर्त्तियों के रूप उनके सम्पूर्ण मन्त्र और तन्त्रों को हमें बतलाइये ॥ १३०-१३१ ॥

ईश्वर उवाच—

शृणु वक्ष्यामि वेताल मन्त्रं तन्त्रं पृथक् पृथक् ।
कामाख्यापञ्चमूर्तीनां रूपं कल्पं च भैरव ॥ १३२ ॥

ईश्वर ने कहा—हे वेताल ! हे भैरव ! सुनो । मैं कामाख्या देवी की पाँच मूर्त्तियों के मन्त्र तन्त्र रूप और कल्प को पृथक्-पृथक् बतलाऊँगा ॥ १३२ ॥

कामस्थं काममध्यस्थं कामदेवपुटीकृतम् ।
कामेन कामयेत् कामी कामं कामे नियोजयेत् ॥ १३३ ॥
ज्येष्ठं तु व्यञ्जनं ब्रह्मन् परः शान्तं तदुच्यते ।
प्रथमं क्रमतः कुर्यात्तत्संसक्तं सुधामयम् ॥ १३४ ॥
प्रजापतिस्तथा शक्रबीजं संस्थादिसंयुतम् ।
चन्द्रार्धसहितं बीजं कामाख्यायाः प्रचक्ष्यते ॥ १३५ ॥

(वह मन्त्र) काम में स्थित, काम के मध्य में स्थित और कामदेव से सम्पुटित है । कामी काम के द्वारा कामना करे और काम को काम में

नियोजित करे । ज्येष्ठ व्यञ्जन (= क) उसके पर (= बाद में) शान्त (= श् के अन्तवाला = ष्, इस प्रकार क+ष = क्ष, उसमें संसक्त सुधा (= अमृत) = औ, इस प्रकार क्षौं बना । प्रजापति = ऊ, दोनों को अर्धचन्द्र से युक्त करने पर क्षौं ऊँ बनता है । यह कामाख्या बीज कहा जाता है । (इसके आगे वषट् और ठः ठ· जोड़ने पर कामाख्या के जपमन्त्र और हवन मन्त्र का स्वरूप बनता है) ॥ १३३-१३५ ॥

इदं धर्मप्रदं काममोक्षार्थानां प्रदायकम् ।
इदं रहस्यं परममन्यत्र तु सुदुर्लभम् ॥ १३६ ॥
श्रोत्रेणोद्यम्य शृणुयाद् गुरुवक्त्रान्नरोत्तमः ।
स कामानखिलान् प्राप्य शिवलोके महीयते ॥ १३७ ॥

यह बीज मन्त्र धर्म अर्थ काम और मोक्ष को देने वाला है । यह परम रहस्य है और अन्यत्र दुर्लभ है । जो भी नरोत्तम उद्यम कर गुरु के मुख से इसे सुन लेता है वह समस्त इच्छाओं की पूर्त्ति प्राप्त कर शिवलोक में पूजित होता है ॥ १३६-१३७ ॥

श्रुतिसकलितसारं देवकण्ठौघहारं
सकलकलुषहारि श्रीधरानन्दकारि ।
सुनयशुभगगोभिर्भ्राजयेद्यद्यशोभि-
स्तदिह शिवसमस्तं विघ्नहर्त्रीङ्गितार्थम् ॥ १३८ ॥

जो समस्त श्रुति का सार है, देवताओं के कण्ठसमूह का हार है, समस्त पापों को दूर करने वाला है, श्रीधर अर्थात् विष्णु को आनन्द देने वाला है, जो सुन्दर नीति युक्त शुभ शब्दों एवं यशों के द्वारा शोभायमान होता है, शिव का समस्त अर्थात् सार है तथा विघ्नहर्त्री कामाख्या का संकेतार्थ है वह सब इस मन्त्र में विद्यमान है ॥ १३८ ॥

नयनकरभकारि ध्यानिनां चोपकारि
प्रणयिसुनयसंस्थं देवसत्याह्निकस्थम् ।
परमपदविशीर्णं सर्वदौर्भाग्यजीर्णं
शृणु शिवपदरूपं कामदेव्याः स्वरूपम् ॥ १३९ ॥

(हे वेताल !) नेत्रों के लिये करभ (= सुन्दर द्रव्यों से निर्मित अञ्जन) का काम करने वाले, ध्यानी जनों के उपकारक, प्रेमी जनों (= भक्तों) की सुनीति में स्थित, देवता एवं सती के आह्निक (= नित्य कृत्यों) में स्थित, परमपद को भी तिरस्कृत करने वाले, समस्त दुर्भाग्य के नाशक और शिवपदरूप कामाख्या देवी के स्वरूप को सुनो ॥ १३९ ॥

श्रवणगगनमात्रा चार्दितं यस्य नाम
प्रभवति बहुभूत्यै गीतमार्गैकधाम ।
सुरगणगणनायां कुण्डली यस्य शक्ति-
स्तदिह परमरूपं चिन्तनीयं हताशैः ॥ १४० ॥

जिसका नाम श्रोत्रेन्द्रिय में रहने वाली माता (= करणेश्वरी) के द्वारा सदा वाञ्छित है; अत्यधिक ऐश्वर्य देने में समर्थ है; गीत अर्थात् नादविद्या के मार्ग (= सप्त स्वरों) का एक मात्र उद्भव स्थान है; सुरगण (= चक्रसमूह) की गणना में जिसकी शक्ति कुण्डली अर्थात् चैतन्य का काम करती है, इस संसार में हताश (= सांसारिक आशाओं का दमन करने वाले अथवा निराश) लोगों के द्वारा उस परमरूप का ध्यान करना चाहिये ॥ १४० ॥

रविशशियुतकर्णा कुंकुमापीतवर्णा
मणिकनकविचित्रा लोलकर्णा त्रिनेत्रा ।
अभयवरदहस्ता साक्षसूत्रप्रशस्ता
प्रणतसुरनरेशा सिद्धकामेश्वरी सा ॥ १४१ ॥

चन्द्रमा और सूर्य जिसके कानो में लगे हैं, जो स्वयं कुङ्कुम के समान कुछ पीतवर्ण की है, मणिजटित स्वर्णाभूषण से विचित्र एवं चञ्चल कानों वाली, तीन नेत्रों वाली, हाथों में अभय एवं वरद मुद्रा धारण की हुई, अक्षमाला वाली है तथा देवता मनुष्य एवं राजा जिसके सामने नतमस्तक हैं वह सिद्ध कामेश्वरी है ॥ १४१ ॥

अरुणकमलसंस्था रक्तपद्मासनस्था
नवतरुणशरीरा मुक्तकेशी सुहारा ।
शवहृदि पृथुतुङ्गस्तन्ययुग्मा मनोज्ञा
शिशुरविसमवक्त्रा सर्वकामेश्वरी सा ॥ १४२ ॥

जो, लाल कमल के ऊपर रक्तपद्मासन लगा कर बैठी हुई, नयी युवाशरीर वाली, खुले केशों वाली, सुन्दर हार पहनी हुई, अपनी गोद में रखे हुए शव के हृदय के ऊपर अपने बड़े एवं ऊँचे स्तनों को रखी हुई तथा प्रातःकालीन सूर्य के समान रक्त मुखों वाली है, वह सर्वकामेश्वरी है ॥ १४२ ॥

विपुलविभवदात्री स्मेरवक्त्रा सुकेशी
ललितनखरदन्ता सामिचन्द्रावनम्रा ।
मनसिजदृषदिस्था योनिमुद्रालसन्ती
पवनगगनशक्ता संश्रुतस्थानभागा ॥ १४३ ॥

वह अत्यधिक वैभव देने वाली, मन्दमुस्कान के सहित मुख वाली, सुन्दर

बालों वाली, सुन्दर नखों और दाँतो वाली, सामि (= अर्ध) चन्द्र के समान नम्र (= झुकी, हुई), मनसिज (= काम) दृषत् (= पर्वत) अर्थात् कामगिरि पर बैठी हुई, योनिमुद्रा से शोभायमान, वायु के समान गमन करने में समर्थ और प्रसिद्ध स्थानों पर निवास करती है ॥ १४३ ॥

चिन्त्या चैवं विद्युदग्निप्रकाशा
धर्मार्थाद्यं साधकैर्वाच्छितार्थैः ।
कल्प्यन्ते (त्रीण्यर्प्यतः) सम्यगर्धं
वेताल त्वं भैरव श्रीप्रतिष्ठम् ॥ १४४ ॥

धर्म अर्थ आदि चाहने वाले साधकों के द्वारा विद्युत और अग्नि के समान प्रकाशमान (उस देवी) का ध्यान करना चाहिये । मण्डल के अर्धभाग को सम्यक् अर्पित करने वाले व्यक्ति को धर्म अर्थ आदि तीन (पुरुषार्थ) प्राप्त होते है । हे वेताल ! हे भैरव । तुम भी श्रीप्रतिष्ठावाले पूर्वोक्त मण्डल के पूर्वार्द्ध को अर्पित करो ॥ १४४ ॥

तस्मिन्नर्धं मण्डलं यद्धि पश्चात्
कार्यं चैतच्चन्दनैः पुष्पयुक्तैः ।
पर्यायो यो लेखने पूर्वमुक्तो
देवीतन्त्रे सोऽत्र पूर्वं विधेयः ॥ १४५ ॥

॥ इति कालिकापुराणस्य कामाख्या-माहात्म्य
नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥

और जो उस मण्डल में अपरार्द्ध है उसकी भी चन्दन पुष्प आदि से पूजा करनी चाहिये । साथ ही इस देवीतन्त्र मे लेखन में जो पहले कहा गया पर्याय है उसे यहाँ पहले करना चाहिये ॥ १४५ ॥

कालिकापुराण के कामाख्यामाहात्म्य नामक
बाँसठवें अध्याय की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदी कृत
ज्ञानवती नामक हिन्दी टीका सम्पूर्ण हुई ॥
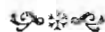
काश्यां ज्ञानाश्रमे सम्यग् गायत्री सेवया मुदा ।
कामाख्यातन्त्रमेतद्व्याकरोन्मुरलीधरात्मजः ॥ १ ॥

खरसगगननेत्रे शारदीये नवाह्ने
भृगुसुतयुततिथ्यामष्टमी संज्ञितायाम् ।
गुरुचरणकृपातः सिद्धकामाख्यतन्त्रं
परिगतामिह पूर्त्तिं शंकरः शं करोतु ॥ २ ॥

शास्त्राण्यभ्यसितानि नित्यविधयः सौख्येन संसाधिताः
काशीहिन्दुसरस्वतीसदनसच्छायापनीतः श्रमः ।
सम्प्रत्यग्निमुखी जगत्प्रसविनी काश्यां मयाऽन्विष्यते
सर्वांचित्रवदाशु याति सततं वृद्धिं गतेनायुषा ॥ ३ ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥
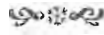
कामाख्यास्तोत्रम्

जय कामेशि चामुण्डे जय भूतापहारिणि ।
जय सर्वगते देवि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

विश्वमूर्ते शुभे शुद्धे विरूपाक्षि त्रिलोचने ।
भीमरूपे शिवे विद्ये कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

मालाजये जये जम्भे भूताक्षि क्षुभितेऽक्षये ।
महामाये महेशानि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

भीमाक्षि भीषणे देवि सर्व्वभूतक्षयङ्करि ।
कालि विकरालि च कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

कालि करालविक्रान्ते कामेश्वरि हरप्रिये ।
सर्व्वशास्त्रसारभूते कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

कामरूपप्रदीपे च नीलकूटनिवासिनि ।
निशुम्भशुम्भमथनि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

कामाख्ये कामरूपस्थे कामेश्वरि हरिप्रिये ।
कामनां देहि मे नित्यं कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

वपानाढ्य(महा)वक्त्रे (तथा)त्रिभुवनेश्वरि ।
महिषासुरवधे देवि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

छागतुष्टे महाभीमे कामाख्ये सुरवन्दिते ।
जय कामप्रदे तुष्टे कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

भ्रष्टराज्यो यदा राजा नवम्यां नियतः शुचिः ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यामुपवासी नरोत्तमः ॥

संवत्सरेण लभते राज्यं निष्कण्टकं पुनः ।
य इदं शृणुयाद् भक्त्या तव देवि समुद्भवम् ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छति ।

श्रीकामरूपेश्वरि भास्करप्रभे प्रकाशिताम्भोजनिभायताननने ।
सुरारिरक्षःस्तुतिपातनोत्सुके त्रयीमये देवनुते नमामि ॥

सितासिते रक्तपिशङ्गविग्रहे रूपाणि यस्याः प्रतिभान्ति तानि ।
विकाररूपा च विकल्पितानि, शुभाशुभानामपि तां नमामि ॥

कामरूपसमुद्भूते कामपीठावतंसके ।
विश्वाधारे महामाये कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

अव्यक्तविग्रहे शान्ते सन्तते कामरूपिणि ।
कालगम्ये परे शान्ते कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

या सुषुम्नान्तरालस्था चिन्त्यते ज्योतिरूपिणी ।
प्रणतोऽस्मि परां वीरां कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

दंष्ट्राकरालवदने मुण्डमालोपशोभिते ।
सर्व्वतः सर्वगे देवि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

चामुण्डे च महाकालि कालि कपालहारिणि ।
पाशहस्ते दण्डहस्ते कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

चामुण्डे कुलमालास्ये तीक्ष्णदंष्ट्रे महाबले ।
शवयानस्थिते देवि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

(योगिनीतन्त्र)

कामाख्याकवचम्

ॐ कामाख्याकवचस्य मुनिर्बृहस्पतिः स्मृतः ।
देवी कामेश्वरी तस्य अनुष्टुप्छन्द इष्यते ॥
विनियोगः सर्व्वसिद्धौ तञ्च शृण्वन्तु देवताः ।
शिरः कामेश्वरी देवी कामाख्या चक्षुषी मम ॥
शारदा कर्णयुगलं त्रिपुरा वदनं तथा ।
कण्ठे पातु महामाया हृदि कामेश्वरी पुनः ॥
कामाख्या जठरे पातु शारदा पातु नाभितः ।
त्रिपुरा पार्श्वयोः पातु महामाया तु मेहने ॥
गुदे कामेश्वरी पातु कामाख्योरुद्वये तु माम् ।
जानुनोः शारदा पातु त्रिपुरा पातु जङ्घयोः ॥
महामाया पादयुगे नित्यं रक्षतु कामदा ।
केशे कोटेश्वरी पातु नासायां पातु दीर्घिका ॥
(शुभगा)दन्तसङ्घाते मातङ्ग्यवतु चाङ्गयोः ।
बाह्वोर्म्मां ललिता पातु पाण्योस्तु वनवासिनी ॥
विन्ध्यवासिन्यङ्गुलीषु श्रीकामा नखकोटिषु ।
रोमकूपेषु सर्व्वेषु गुप्तकामा सदावतु ॥
पादाङ्गुलिपार्ष्णिभागे पातु मां भुवनेश्वरी ।
जिह्वायां पातु मां सेतुः कः कण्ठाभ्यन्तरेऽवतु ॥
पातु नश्चान्तरे वक्षः ईः पातु जठरान्तरे ।
सामिन्दुः पातु मां वस्तौ विन्दुर्व्विद्वन्तरेऽवतु ॥
ककारस्त्वचि मां पातु रकारोऽस्थिषु सर्व्वदा ।
लकारः सर्व्वनाडिषु ईकारः सर्व्वसन्धिषु ॥
चन्द्रःस्नायुषु मां पातु विन्दुर्मज्जासु सन्ततम् ।
पूर्व्वस्यां दिशि चाग्नेय्यां दक्षिणे नैर्ऋते तथा ॥
वारुणे चैव वायव्यां कौवेरे हरमन्दिरे ।
अकाराद्यास्तु वैष्णवा अष्टौ वर्णास्तु मन्त्रगाः ॥

पान्तु तिष्ठन्तु सततं समुद्भवविवृद्धये ।
ऊर्ध्वाधः पातु सततं मान्तु सेतुद्वयं सदा ॥

नवाक्षराणि मन्त्रेषु शारदा मन्त्रगोचरे ।
नवस्वरास्तु मां नित्यं नासादिषु समन्ततः ॥

वातपित्तकफेभ्यस्तु त्रिपुरायास्तु त्र्यक्षरम् ।
नित्यं रक्षतु भूतेभ्यः पिशाचेभ्यस्तथैव च ॥

तत् सेतु सततं पाता क्रव्याद्भ्यो मान्निवारकौ ।
नमः कामेश्वरी देवीं महामायां जगन्मयीम् ।
या भूत्वा प्रकृतिर्नित्यं तनोति जगदायतम् ॥

कामाख्यामक्षमालाभयवरदकरां सिद्धसूत्रैकहस्तां
श्वेतप्रेतोपरिस्थां मणिकनकयुतां कुङ्कमापीतवर्णाम् ।
ज्ञानध्यानप्रतिष्ठामतिशयविनयां ब्रह्मशक्रादिवन्द्या
मग्नौ विन्द्वन्तमन्त्रप्रियतमविषयां नौमि विन्ध्यैरतिस्थाम् ॥

मध्ये मध्यस्य भागे सततविनमिता भावहारावली या
लीला लोकस्य कोष्ठे सकलगुणयुता व्यक्तरूपैकनम्रा ।
विद्या विद्यैकशान्ता शमनशमकरी क्षेमकर्त्री वरास्या
नित्यं पायात् पवित्रप्रणववरकरा कामपूर्व्वेश्वरी नः ॥

इति ह(रेः)कवचं तनुकेस्थितं शमयति व्यतिक्रम्य शिवे यदि ।
इह गृहाण यतस्व विमोक्षणे सहित एष विधिः सह चामरैः ॥

इतीदं कवचं यस्तु कामाख्यायाः पठेद् बुधः ।
सुकृत् तं तु महादेवी तनु व्रजति नित्यदा ॥

नाधिव्याधिभयं तस्य न क्रव्याद्भ्यो भयं तथा ।
नाग्नितो नापि तोयेभ्यो न रिपुभ्यो न राजतः ॥

दीर्घायुर्बहुभोगी च पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
आवर्त्तयन् शतं देवी मन्दिरे मोदते परे ॥

यथा तथा भवेद् बद्धः संग्रामेऽन्यत्र वा बुधः ।
तत्क्षणादेव मुक्तः स्यात् स्मरणात् कवचस्य तु ॥

(कालिकापुराण)

—※—

श्लोकानुक्रमणिका

ग्रन्थ समाप्त